माननीय डी० एन० पटेल, न्यायमूर्ति

निस्तर मिन्ज

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

WP(S) No. 5705 of 2009. Decided on 31st March, 2010.

झारखंड पेंशन नियमावली, 2000—नियम 43(b)–निगरानी जाँच के लंबित रहने के आधार पर उपदान एवं पेंशन का 10% रोका जाना–याची को निगरानी से अनापत्ति प्रमाण पत्र दिया गया था और तत्पश्चात् उसे प्रोन्नति दी गयी थी–पेंशन एवं उपदान का 10% भुगतान न करने से पहले याची को नोटिस, सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था–नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन हुआ है–याची ने आश्वासन दिया कि वह झारखंड राज्य से नहीं जाएगा और प्रत्यर्थी प्राधिकारी द्वारा जैसे और जब बुलाया जाएगा, उपस्थित होगा–राज्य सरकार केवल तभी पेंशन रोक सकती है अथवा वापस ले सकती है जब किसी विभागीय अथवा न्यायिक कार्यवाही में याची को गंभीर अवचार का दोषी पाया जाता है–न्यायिक कार्यवाही अथवा विभागीय कार्यवाहियों द्वारा याची को कभी दोषी नहीं पाया गया–कोरे अभिकथनों के आधार पर, पेंशन राशि अथवा उपदान सरकार द्वारा रोका नहीं जा सकता है–सैंकड़ों संभावनाओं को एक सत्य के समतुल्य नहीं माना जा सकता है और कोरे अभिकथनों को एक साक्ष्य के समतुल्य नहीं माना जा सकता है–पेंशन एवं उपदान को वापस लेने के लिए नियम 43(b) को तब तक प्रवृत्त नहीं किया जा सकता है जबतक याची को विभागीय कार्यवाही अथवा न्यायिक कार्यवाही में दोषी नहीं पाया जाता है–आक्षेपित आदेश अपास्त–तथापि, यदि याची को दोषी पाया जाता है, विधि के अनुसार उससे पैसा वसूला जा सकता है। (पैरा 4 एवं 5)

निर्णयज विधि.–1995(2) PLJR (SC) 51; 1999(3) PLJR 949; (2007)6 SCC 704; 2008(1) JCR 5(Jhr.) (FB)—Referred to.

अधिवक्तागण.–M/s Rajiv Sinha, Ajit Kumar, B.K. Prasad, For the Petitioner; J.C. to G.P.-III, For the Respondents.

आदेश

यह याचिका प्रत्यर्थी सं० 2, प्रधान सचिव, कृषि एवं गन्ना विकास विभाग, झारखंड, राँची द्वारा पारित दिनांक 21.11.2009 के उस आदेश (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-3) के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा वर्तमान याची के पेंशन एवं उपदान का 10% सरकार द्वारा इस आधार पर रोक दिया गया है कि वर्तमान याची के विरुद्ध निगरानी जाँच जारी है।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि वस्तुतः जाँच जारी है और किसी सक्षम न्यायालय द्वारा वर्तमान याची के विरुद्ध दांडिक मामले में कुछ भी निष्कर्षित अथवा विनिश्चित नहीं किया गया है। याची को कोई आरोपपत्र जारी नहीं किया गया है। राशि के किसी दुर्विनियोग के लिए वर्तमान याची के विरुद्ध कोई जाँच संचालित नहीं की गयी है और कोई रिपोर्ट नहीं दी गयी है। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे यह निवेदन किया गया है कि झारखंड पेंशन नियमावली, 2000 की धारा 43(b) के अधीन जबतक याची को विभागीय कार्यवाही में अथवा न्यायिक कार्यवाही में दोषी

नहीं पाया जाता है, प्रत्यर्थी-प्राधिकारी द्वारा उसका पेंशन रोका नहीं जा सकता। याची के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों, 2008 (1) JCR 5 (Jhr.) (FB) में प्रकाशित साथ ही माननीय पटना उच्च न्यायालय की खंड पीठ के निर्णय, 1999 (3) PLJR 949 में प्रकाशित, एवं माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों, 1995 (2) PLJR (SC)51 एवं (2007)6 SCC 704 में प्रकाशित निर्णयों पर विश्वास किया है और आगे निवेदन किया है कि पूर्वोक्त निर्णयों को भी देखते हुए केवल इसलिए कि कोई जाँच चल रही है पेंशन एवं उपदान राशि के 10% को रोकने की शक्ति सरकार में निहित नहीं है और जबतक वर्तमान याची के विरुद्ध जाँच निष्कर्षित नहीं की जाती है, प्रत्यर्थीगण द्वारा पेंशन एवं उपदान की राशि रोकी नहीं जा सकती है। इसके अतिरिक्त, परिशिष्ट-3 पर दिनांक 21.11.2009 का आक्षेपित आदेश पारित करने के पहले याची को कोई नोटिस नहीं दिया गया था और याची को सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था अन्यथा इन सारे तथ्यों और विधि की सही प्रतिपादनाओं को याची द्वारा सम्बद्ध प्राधिकारीगण को इंगित किया गया होता। इस प्रकार, आक्षेपित आदेश नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन करता है। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि याची निदेशक, कृषि, राँची, झारखंड के तौर पर दिनांक 28.2.2009 को सेवानिवृत्त हुआ और सम्बद्ध कमिटी द्वारा दिए गए दिनांक 9.1.2009 के विस्तृत रिपोर्ट, जो याचिका के मेमो का परिशिष्ट-4 है, द्वारा याची को प्रोन्नति दी गयी थी और उक्त रिपोर्ट के पैराग्राफ-7 में यह कथन किया गया है कि वर्तमान याची के विरुद्ध कुछ भी नहीं है और इसलिए जनवरी, 2009 के महीना में याची को प्रोन्नति दी गयी थी। इस प्रकार, निगरानी अनापत्ति प्रमाण पत्र भी जनवरी, 2009 में दिया गया था और तत्पश्चात् दिनांक 28.2.2009 को याची ने अधिवर्षिता की आयु प्राप्त की और दिनांक 21.11.2009 के आक्षेपित अकारण आदेश द्वारा पेंशन एवं उपदान राशि का 10% प्रत्यर्थीगण ने रोक लिया है और इस कारण उक्त आदेश अभिखंडित एवं अपास्त करने योग्य है।

3. मैंने प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को सुना है जिन्होंने निवेदन किया है कि वर्तमान याची के विरुद्ध निगरानी जाँच मामला चल रहा है जो उसकी सेवानिवृत्ति से पहले संस्थापित किया गया था और इसलिए, झारखंड पेंशन नियमावली, 2000 के नियम 43(b) के प्रावधानों की दृष्टि में पेंशन एवं उपदान राशि का 10% प्रत्यर्थीगण द्वारा रोक ली गयी है और इस प्रकार परिशिष्ट-3 पर प्रत्यर्थीगण द्वारा दिनांक 21.11.2009 को पारित किया गया आक्षेपित आदेश पूर्णत: विधि के तथ्यों के अनुकूल है और इसलिए याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

4. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखते हुए मैं याचिका के मेमो के परिशिष्ट-3 पर दिनांक 21.11.2009 को प्रत्यर्थीगण द्वारा पारित आदेश को एतद् द्वारा निम्नलिखित तथ्यों और कारणों से अभिखंडित और अपास्त करता हूँ:-

(i) यह प्रतीत होता है कि वर्तमान याची ने दिनांक 28.2.2009 को अधिवर्षिता की आयु प्राप्त की और निदेशक, कृषि, राँची, झारखंड के तौर पर सेवानिवृत्त हुआ था। परिशिष्ट-4 और विशेषत: उसके पैराग्राफ-7 को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि दिनांक 9.1.2009 को याची को निगरानी अनापत्ति प्रमाण पत्र दिया गया था और तत्पश्चात् जनवरी, 2009 के माह में इस आधार पर कि वर्तमान याची के विरुद्ध कुछ नहीं है, उसे प्रोन्नति दी गयी थी।

(ii) पेंशन और उपदान के 10% का भुगतान नहीं करने अथवा इसे रोकने के पहले याची को नोटिस, सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था। अतः नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन हुआ है।

(iii) यह प्रतीत होता है कि याची को पेंशन, उपदान एवं अन्य सेवानिवृत्ति लाभों का 90% पहले ही भुगतान किया जा चुका है। याची ने इस न्यायालय को आश्वासन दिया है कि वह झारखंड राज्य से नहीं जाएगा और प्रत्यर्थी प्राधिकारी द्वारा जैसे और जब बुलाया जाएगा, उपस्थित होगा। केवल इस कारण से कि निगरानी जाँच जारी है और अभी तक इसे निष्कर्षित नहीं किया गया है, झारखंड पेंशन नियमावली के नियम 43(b) के मुताबिक पेंशन एवं उपदान का 10% सरकार द्वारा रोक लिया गया है। झारखंड पेंशन नियमावली, 2000 के नियम 43 का पठन निम्नलिखित है:–

"43(a). भावी सदाचरण, प्रत्येक पेंशन मंजूरी की मानी हुई शर्त्त है। राज्य सरकार को पेंशन या उसके किसी अंश को रोके रखने या वापस ले लेने का अधिकार होगा, यदि पेंशन-भोगी गंभीर अपराध के लिए दोषी ठहराया जाए या घोर कदाचार का दोषी हो। इस नियम के अधीन समूची पेंशन या उसका कोई अंश रोके रखने या वापस ले लेने के सम्बन्ध में राज्य-सरकार का निर्णय अन्तिम और निर्णायक होगा।

(b) राज्य सरकार को पेंशन या उसके किसी अंश को रोके रखने या वापस लेने का भी अधिकार है चाहे वह स्थायी रूप में या विशिष्ट अवधि के लिए हो। यदि न्यायिक या विभागीय कार्यवाही से पता चले कि किसी सरकारी सेवक के सेवाकाल या पुनर्नियुक्ति की अवधि में उसकी अपेक्षा या अवचार से राज्य सरकार को आर्थिक हानि पहुँची है, तो राज्य सरकार उस सरकारी सेवक के पेंशन से उस हानि की पूरी या आंशिक क्षति की राशि वसूल कर सकती है;

परन्तु□ यह कि-

(a) ऐसी विभागीय कार्यवाही, यदि उस समय न चलायी गई हो जबकि सरकारी सेवक निवृत्तिपूर्व या पुनर्नियुक्ति की अवधि में ड्यूटी पर था□;

(i) राज्य सरकार की मंजूरी के बिना संस्थित न की जायेगी;

(ii) उस घटना के सम्बन्ध में चलायी जायेगी जो विभागीय कार्यवाही चलाये जाने को तिथि से चार वर्ष से अधिक पहले घटित नहीं हुआ हो; एवं

(iii) राज्य सरकार द्वारा निर्देशित प्राधिकार द्वारा एवं निर्धारित स्थान पर ऐसी सभी विभागीय कार्यवाहियाँ, जिनमें सेवा से बर्खास्तगी का आदेश भी दिया जा सकता है, लागू होने वाली प्रक्रिया के अनुसार चलाई जाएगी;

(b) ऐसी न्यायिक कार्यवाहियाँ, यदि सरकारी सेवक पर निवृत्तिपूर्व या पुनर्नियुक्ति के अवधि में कर्त्तव्यस्थ रहने पर नहीं चलाई गई हो तो खण्ड (a) के उप-खण्ड (ii) के अनुसार चलाई जायेगी।

(c) अन्तिम आदेश पारित करने के पूर्व बिहार लोक सेवा आयोग से परामर्श ली जायेगी।

स्पष्टीकरण.*-इस नियम के प्रयोजन हेतु-*

(a) विभागीय कार्यवाही उस समय चलाई गई समझी जायेगी जब पेंशनभोगी सेवक के विरुद्ध विरचित आरोपों की प्रति उसे निर्गत कर दी गई हो या उसे पूर्व की तिथि से उस तिथि को निलंबित कर दिया गया हो; और

(b) न्यायिक कार्यवाही उस समय चलायी गई समझी जायेगी जबः–

(i) आपराधिक कार्यवाहियों में उस तिथि को जब परिवाद पत्र दाखिल किया गया या आरोप पत्र फौजदारी न्यायालय में प्रस्तुत किया गया; और

(ii) सिविल कार्यवाही में, उस तिथि को जब परिवाद प्रस्तुत किया गया या जैसा भी मामला हो, सिविल न्यायालय में आवेदन दाखिल किया गया है।

(iv) पूर्वोक्त नियम की दृष्टि में, यह प्रतीत होता है कि राज्य सरकार स्थायी रूप से अथवा विनिर्दिष्ट अवधि के लिए पेंशन अथवा इसका कोई अंश रोक सकती है अथवा वापस ले सकती है और सरकार, को कारित किसी धनीय क्षति को पेंशन से सरकार वसूल भी कर सकती है यदि विभागीय अथवा न्यायिक कार्यवाही में याची को गंभीर अवचार का दोषी पाया जाता है। वर्तमान मामले के तथ्यों में, किसी भी न्यायिक कार्यवाही अथवा किसी विभागीय कार्यवाही द्वारा याची को कभी भी दोषी नहीं पाया गया है। यहाँ तक कि प्रत्यर्थीगण के मुताबिक भी यह एक स्वीकृत तथ्य है कि याची के विरुद्ध कुछ भी सिद्ध नहीं किया गया है। कोरे अभिकथन के आधार पर, पेंशन राशि, उपदान, सरकार द्वारा रोका नहीं जा सकता है। सैंकड़ों संभावनाओं को एक सत्य का समतुल्य नहीं माना जा सकता है और कोरे अभिकथनों को एक साक्ष्य का समतुल्य नहीं माना जा सकता है।

(v) **''झारखंड राज्य एवं अन्य बनाम पद्मलोचन कालिंदी एवं एक अन्य, 2008 (1) JCR 5(Jhr.) (FB)** में प्रकाशित मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा पैराग्राफ 32 और 33 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया हैः–

''32. श्रीमती गिरीश कुमारी प्रसाद (ऊपर) में इस न्यायालय की खंड पीठ (माननीय पी० के० बालासुब्रमणियम, सी० जे० एवं माननीय तपन सेन, न्यायाधीश) ने अभिनिर्धारित किया है कि जो कुछ देय नहीं है जो उपेक्षा मिलीभगत अथवा कपट के कारण दिया गया था, महालेखाकार, विभाग में किसी के द्वारा लोप द्वारा अथवा कमीशन द्वारा की गयी गलती सुधार सकता है। किसी अयोग्य व्यक्ति को किए गए अप्राधिकृत भुगतान की वसूली इप्सित करने के लिए कोई विवंध नहीं हो सकता है। यह तथ्य कि रिट याची को कालबद्ध प्रोन्नति, जब यह देय नहीं था, देने में किसी ने गलती की थी, उसे कोई विशेष अधिकार प्रदान नहीं करता है। किन्तु यह अभिनिर्धारित नहीं किया गया है कि पेंशन नियमावली के नियम 43(b) के अधीन प्रावधानित प्रक्रिया का अनुसरण किए बिना अथवा उपेक्षा, मिलीभगत अथवा कपट का दोषी अभिनिर्धारित करने के लिए अथवा ऐसी गलती, उपेक्षा अथवा कपट के लिए किसी व्यक्ति को जिम्मेदार और दायी अभिनिर्धारित किए बिना विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का अनुसरण किए बिना सेवानिवृत्त कर्मचारी के पेंशन लाभ से ऐसी राशि वसूल की जाएगी। श्रीमती गिरीश कुमारी प्रसाद (ऊपर) के मामले में निर्णय, झारखंड राज्य एवं अन्य बनाम बालेश्वर सिंह एवं एक अन्य, 2006(4) JCR (660) (Jhr.) (माननीय एस० जे० मुखोपाध्याय एवं प्रमोद कोहली, न्यायमूर्तिगण) में खंड पीठ के निर्णय अथवा ऊपर निर्दिष्ट इस न्यायालय का कोई अन्य निर्णय के साथ विवाद में नहीं है। वर्तमान मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश ने आक्षेपित आदेश विनिश्चित किया है और अभिनिर्धारित किया है कि बिहार पेंशन नियमावली, 1950 के नियम 43(b) के अधीन पारित आदेश द्वारा ही पेंशन से कोई राशि वसूल नहीं की जा

सकती है क्योंकि वर्तमान मामले में न तो राज्य सरकार ने और न ही सक्षम प्राधिकारी ने उक्त नियमावली के नियम 43(b) के अधीन, जब तक याची सेवा में था बल्कि उसकी सेवानिवृत्ति के 16 वर्षों बाद भी कोई कार्यवाही आरम्भ नहीं किया है और उक्त नियमावली के नियम 43(b) के अधीन कार्यवाही भी परिसीमा द्वारा वर्जित है और अब इसे आरम्भ नहीं किया जा सकता है। उन्होंने आगे अभिनिर्धारित किया कि अनंतिम/अंतिम पेंशन सहित याची के पेंशन से अथवा उपदान से वसूली नहीं की जा सकती है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने ध्यान में लिया है कि वाद और प्रमाणपत्र कार्यवाही के जरिए वसूली भी याची की सेवानिवृत्ति के 16 वर्ष बीत जाने पर समय वर्जित है। बसूली की ईप्सा करते हुए महालेखाकार द्वारा जारी दिनांक 2.9.1997 (परिशिष्ट-2) का आक्षेपित आदेश के साथ-साथ प्रखंड विकास पदाधिकारी, चन्दनक्यारी द्वारा जारी दिनांक 3.1.2005 का पत्र (परिशिष्ट-3) अभिखंडित किया गया था और याचीगण से पहले ही वसूल की गयी राशि को वापस लौटाने का निर्देश भी प्रत्यर्थीगण को दिया गया था। विहित समय के भीतर रिट याची के पेंशन को अंतिम रूप देने और तब व्यय के साथ 5% की दर से ब्याज के साथ स्वीकृत बकाया का भुगतान करने का निर्देश भी प्रत्यर्थीगण को दिया गया था। प्रासंगिक प्रावधानों को विचार में लेने के बाद विद्वान एकल न्यायाधीश ने उक्त आदेश पारित किया है और यह सर्वोच्च न्यायालय के अन्य निर्णयों के साथ-साथ इस न्यायालय के निर्णयों के अनुकूल है जैसा ऊपर ध्यान में लिया गया है। हम विद्वान एकल न्यायाधीश के आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता अथवा दुर्बलता नहीं पाते हैं। इस प्रकार, इस लेटर्स पेटेन्ट अपील में कोई गुणागुण नहीं है जिसे अपीलार्थीगण द्वारा प्रथम प्रत्यर्थी को भुगतान किए जाने वाले 10,000/- रुपये के व्यय के साथ तद्नुसार खारिज किया जाता है।

33. यह सूचित किया गया है कि इस अपील के लंबित रहने के दौरान याची का अंतिम पेंशन नियत किया गया था। इस आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से दो माह के भीतर ब्याज के साथ पेंशन और उपदान का बकाया याची को भुगतान करने, यदि इसका भुगतान पहले नहीं किया गया है, का निर्देश अपीलार्थीगण को दिया जाता है। प्रत्यर्थीगण को पेंशन की उस राशि को उक्त अवधि के भीतर वापस लौटाना होगा जिसे रोक लिया गया था और अभिकथित देयों के विरुद्ध समायोजित करना इप्सित किया गया था। यदि उक्त अवधि के भीतर पूर्वोक्त बकाया/राशि का भुगतान प्रथम प्रत्यर्थी को नहीं किया जाता है, वह अपनी सेवानिवृत्ति की तिथि से अंतिम भुगतान तक बकाया की राशि पर 10% वार्षिक दर से ब्याज पाने का हकदार होगा।''

(vi) इस निर्णय की दृष्टि में, पेंशन एवं उपदान वापस लेने के लिए झारखंड पेंशन नियमावली के नियम 43(b) को तब तक प्रवृत्त नहीं किया जा सकता है जबतक याची को विभागीय कार्यवाही अथवा न्यायिक कार्यवाही में दोषी नहीं पाया जाता है।

(vii) **बजरंग देव नारायण सिन्हा बनाम बिहार राज्य एवं अन्य,** 1993 (3) PLJR 949 में प्रकाशित मामले में माननीय पटना उच्च न्यायालय द्वारा पैराग्राफ 4 और 7 पर निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:–

"4. उसने AIR 1990 SC 1923 में प्रकाशित (डी० वी० कपूर बनाम भारत संघ एवं अन्य) मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर इस सिद्धान्त के लिए विश्वास किया था कि जब तक विभागीय कार्यवाही में अथवा न्यायिक कार्यवाही में याची को अवचार का दोषी नहीं पाया जाता है, उसके पेंशन का कोई अंश रोका नहीं जा सकता है। उस मामले में सर्वोच्च न्यायालय सिविल सेवा पेंशन नियमावली, 1972 के नियम 9 जो बिहार पेंशन नियमावली के नियम 43(b) के समविषयक है। सी० डब्ल्यू० जे० सी० सं० 7315 वर्ष 1995 में दिनांक 4.9.1996 को विनिश्चित और

बिहार राज्य एवं अन्य बनाम इदरीस अंसारी (1995 AIR SCW 2886) में दिए गए निर्णयों सहित अनेक निर्णयों में इस न्यायालय ने यही दृष्टिकोण अपनाया है। निर्णयों के अतिरिक्त, नियम बिल्कुल स्पष्ट है और केवल सिद्ध अवचार के मामले में पूरी पेंशन अथवा इसका अंश रोका जा सकता है।

7. मामले के इस दृष्टिकोण में, यह अपील अनुज्ञात की जाती है और आज के दिन से तीन माह की अवधि के भीतर उपदान और लीव इनकैशमेंट देयों के साथ नियमावली के अनुरूप उसको भुगतान योग्य पूरे पेंशन का भुगतान अपीलार्थी को करने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को दिया जाता है। यह नियमावली के अनुरूप कोई कार्रवाई करने की राज्य के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना है।''

(जोर दिया हुआ)

(viii) झारखंड पेंशन नियमावली विशेषत: 43(b) और बिहार पेंशन नियमावली, 1950 के नियम 43 समविषयक है और, इस प्रकार, पूर्वोक्त निर्णय की दृष्टि में भी जब तक विभागीय अथवा न्यायिक कार्यवाही में याची को दोषी नहीं पाया जाता है, पेंशन और उपदान रोकने का प्राधिकार प्रत्यर्थीगण को नहीं है।

(ix) **बिहार राज्य एवं अन्य बनाम मो॰ इदरीस अन्सारी,** 1995 (2) PLJR (SC) 51 में प्रकाशित मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पैराग्राफ 8 और 9 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:–

"8. जहाँ तक नियम का संबंध है, यह राज्य प्राधिकारीगण को यह प्रश्न विनिश्चित करने हेतु सक्षम करता है कि क्या नियमावली द्वारा अनुध्यात परिस्थितियों में सेवानिवृत्त सरकारी सेवक को पूर्ण पेंशन अनुज्ञात किया जाए या नहीं। पहली परिस्थिति यह है कि यदि सरकारी सेवक की सेवा पूर्णतः संतोषजनक नहीं पायी जाती है, मंजूरी देने वाले प्राधिकारी द्वारा पेंशन को समुचित रूप से घटाने का आदेश दिया जा सकता है। दूसरी परिस्थिति यह है कि यदि यह पाया जाता है कि पेंशनधारी की सेवा पूर्णतः संतोषजनक नहीं है अथवा सेवा के दौरान संबंधित सरकारी सेवक पर गंभीर अवचार का प्रमाण है, राज्य सरकार अपनी पुनरीक्षण शक्ति के प्रयोग में अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा पेंशन के नियतिकरण के साथ हस्तक्षेप कर सकती है। किन्तु पूर्वोक्त परिस्थितियों के अधीन नियम 139 से प्रवाहित ऐसी शक्ति दो शर्तों द्वारा सीमित है। पहली शर्त यह है कि नैसर्गिक नयाय के सिद्धान्तों के अनुसार पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग करना होगा और द्वितीयतः ऐसी पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग पहली बार पेंशन की मंजूरी की तिथि से तीन वर्ष के भीतर किया जा सकता है। नियम 43(b) और नियम 139 का सह-पठन निम्नलिखित दर्शाता है:

I. एक सेवानिवृत्त सरकारी सेवक के विरुद्ध नियम 139 के अधीन कार्यवाही की जा सकती है और उसका पेंशन समुचित रूप से घटया जा सकता है यदि मंजूरी देने वाला प्राधिकारी संतुष्ट है कि प्रत्यर्थी की सेवा अभिलेख पूरे समय तक संतोषजनक नहीं रहा है।

II. यदि मंजूरी देने वाले प्राधिकारी द्वारा संबंधित अधिकारी का सेवा अभिलेख पूर्णतः संतोषजनक पाया जाता है और यदि राज्य सरकार पाती है कि यह पूर्णतः संतोषजनक नहीं है अथवा उसकी सेवाकाल के दौरान संबंधित अधिकारी के विरुद्ध गंभीर अवचार का प्रमाण है, राज्य सरकार पेंशन घटाने के लिए पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग कर सकती है किन्तु पुनरीक्षण इस शर्त के अधीन है कि इसका प्रयोग उस तिथि से तीन वर्षों के अंदर किया जाना चाहिए जबसे मंजूरी देने वाले प्राधिकारी द्वारा उसके पक्ष में पेंशन की मंजूरी देने वाला आदेश पहली बार पारित किया गया था और न कि उस अवधि के परे।

9. जहाँ तक दूसरे प्रकार के मामलों का संबंध है उसकी सेवाकाल के दौरान संबंधित सरकारी सेवक की ओर से किए गए गंभीर अवचार के प्रमाण को विभागीय कार्यवाही अथवा न्यायिक कार्यवाही जो उसकी सेवाकाल के दौरान की गयी थी अथवा विभागीय कार्यवाही जो इस प्रकार के मामलों में उसकी सेवानिवृत्ति के बाद भी आरम्भ की जा सकती है, से पुनरीक्षण प्राधिकारी को प्राप्त करना होगा। किन्तु ऐसी विभागीय कार्यवाही को नियम 43(b) की अपेक्षाओं का अनुपालन करना होगा। परिणामस्वरुप, सेवानिवृत्त सरकारी सेवक अपनी सेवानिवृत्ति के बाद भी अपने विरुद्ध संचालित विभागीय कार्यवाही के अनुसरण में सेवा कैरियर के दौरान गंभीर अवचार का दोषी पाया जा सकता है, किन्तु ऐसी कार्यवाही केवल ऐसे अवचार के संबंध में आरम्भ की जा सकती है जो उसके विरुद्ध आरम्भ की गयी ऐसी विभागीय कार्यवाही चार वर्षों के अंदर किया गया हो। वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी दिनांक 31.1.1993 को सेवानिवृत्त हुआ और दिनांक 27.9.1973 को गंभीर अवचार के आधार पर कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था न कि इस आधार पर कि पेंशनधारी का सेवा अभिलेख पूर्णतः संतोषजनक नहीं था। इसे राज्य सरकार द्वारा मंजूरी देने वाले प्राधिकार के रूप में जारी किया गया था। अतः इसे नियम 43(b) के साथ पढ़ा जाना था। अतः ऐसा नोटिस किसी अवचार को आच्छादित कर सकता था यदि इसे दिनांक 27.9.1993 के पहले चार वर्ष के भीतर किया गया था जिसका अर्थ तद्द्वारा यह है कि इसे दिनांक 26.9.1989 से दिनांक 31.1.1993, जब प्रत्यर्थी सेवानिवृत्त हुआ, तक की अवधि के दौरान किया जाना चाहिए था। अवचार के केवल ऐसे मामले में, नियम 43(b) के अधीन प्रत्यर्थी के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही आरम्भ की जा सकती थी। ऐसी कार्यवाही में, यदि उसे अवचार का दोषी पाया गया था, नियम 139(a) और (b) के अधीन उसके विरुद्ध समुचित कार्यवाही की जा सकती थी। वर्तमान मामले के तथ्यों में उच्च न्यायालय से सहमत होते हुए यह अभिनिर्धारित करना होगा कि नियम 139(a) और (b) के अधीन शक्तियों का अवलम्ब लेते हुए दिनांक 27.9.1993 की नोटिस केवल अभिकथित भूतपूर्व अवचार के आधार पर ही जारी की गयी थी और यह इस आधार पर आधारित नहीं थी कि प्रत्यर्थी का सेवा अभिलेख पूर्णतः संतोषजनक नहीं था। जहाँ तक आधार का संबंध है, नियम 43(b) और नियम 139(a) के सह-पठन पर इस निष्कर्ष से बचा नहीं जा सकता है कि चूँकि अभिकथित अवचार उस तिथि, जिसपर दिनांक 27.9.1993 का कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, से 4 वर्ष के पहले प्रत्यर्थी द्वारा किया गया था, अतः सिद्ध अवचार के आधार पर प्रत्यर्थी के विरुद्ध नियम 139(a) और (b) का अवलम्ब लेने की शक्ति अपीलीय प्राधिकारी को नहीं थी। परिणामस्वरूप, यह अभिनिर्धारित करना ही था कि नियम 139 के अधीन कार्यवाही पूर्णतः अक्षम थी। दिनांक 13.12.1993 के अंतिम आदेश को अभिखंडित करने में उच्च न्यायालय समान रूप से न्यायोचित था क्योंकि ऐसे अवचार का प्रमाण नहीं था। नियम 139(a) और (b) के अधीन कार्यवाही वापस भेजने का प्रश्न उत्पन्न ही नहीं होगा क्योंकि वर्ष 1986-87 से चार वर्ष के अवसान के बाद किसी विभागीय कार्यवाही में अभिकथित गंभीर अवचार स्थापित नहीं किया जा सका था और इस प्रकार नियम 43(b) परन्तुक (a)(ii) द्वारा कार्यवाही स्पष्टतः वर्जित होगी। परिणामस्वरूप दिनांक 27.9.1993 के कारण बताओ नोटिस को शुरू से ही दृढ़ और प्रभावहीन मानना होगा। मामला वापस करने के जरिए किसी नयी कार्यवाही का समर्थन करने के लिए ऐसी नोटिस का सहारा नहीं लिया जा सकता है। इन सारे कारणों के चलते इस अपील में हमारे हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता है। परिणामस्वरुप, यह याचिका विफल होती है और इसे खारिज किया जाता है। व्यय का कोई आदेश नहीं है।''

(x) पूर्वोक्त निर्णयों की दृष्टि में भी, पेंशन के किसी अंश को रोकने अथवा वापस लेने की शक्ति प्रत्यर्थीगण को तब तक नहीं है जब तक किसी विभागीय अथवा न्यायिक कार्यवाही में याची को दोषी नहीं पाया जाता है।

5. पूर्वोक्त तथ्यों और कारणों के मिले जुले प्रभाव से, मैं एतद् द्वारा याचिका के मेमो परिशिष्ट-3 पर प्रत्यर्थीगण द्वारा पारित दिनांक 21.11.2009 के आदेश को अभिखंडित और अपास्त करता हूँ। यह कहना अनावश्यक है कि नियमावली, 2000 के अधीन सरकार के पास पर्याप्त शक्ति है कि यदि याची दोषी पाया जाता है, तब विधि के अनुरुप, उससे पैसा वसूला जा सकता है।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

अर्जुन प्रसाद बर्णवाल एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. Appeal No. 293 of 2002. Decided on 1st April, 2010.

G.R. केस सं॰ 248 वर्ष 1990 से उद्‌भूत सत्र विचारण सं॰ 218 वर्ष 1993 में, श्री भोला प्रसाद, अपर सत्र न्यायाधीश, त्वरित न्यायालय सं॰ IV, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 30 मई, 2002 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरूद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 304B सह-पठित दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3/4—दहेज मृत्यु–10 वर्षों का सश्रम कारावास अधिरोपित–अपने विवाह के दो वर्षों के भीतर मृतका की मृत्यु हो गयी–घटना के पहले दहेज की मांग एवं प्रहार–मृतका ने स्वयं कथन किया कि उसे उसके ससुराल वालों द्वारा जलाया गया था–अपीलार्थीगण द्वारा मांगे गए 20,000/- रुपयों का भुगतान नहीं किए जाने के कारण घटना हुई–चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा अभियोजन का मामला सम्पुष्ट किया गया–अतिरिक्त दहेज की मांग पर्याप्त साक्ष्यों द्वारा सिद्ध की गयी–किन्तु कुछ अपीलार्थीगण के विरुद्ध दहेज की मांग और यातना और मृतका को जलाने में उनकी भागीदारी के बारे में प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है–ऐसे अभियुक्तों को संदेह का लाभ देते हुए आरोप मुक्त किया गया–अन्य अपीलार्थीगण, जिनके विरुद्ध पर्याप्त साक्ष्य है की अपीलें खारिज कर दी गयी। (पैरा 10, 11, 18 से 23)

अधिवक्तागण.–Mr. S.K. Srivastava, *Amicus Curiae,* For the Appellants; Miss Anita Sinha, For the State.

प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति.–बार-बार बुलाए जाने पर भी अपीलार्थीगण की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ। तब, न्यायालय के आग्रह पर, श्री एस॰ के॰ श्रीवास्तव, अधिवक्ता ने अपीलार्थीगण की ओर से न्यायमित्र के रूप में मामले पर तर्क किया साथ ही सूचक की ओर से भी कोई उपस्थित नहीं हुआ यद्यपि शुरू में वकालतनामा दाखिल किया गया था। तब, राज्य अधिवक्ता, सुश्री अनीता सिन्हा, ए॰ पी॰ पी॰ ने राज्य की ओर मामले पर तर्क किया।

2. अपील जी॰ आर॰ केस सं॰ 248 वर्ष 1990 से उद्‌भूत सत्र विचारण सं॰ 218 वर्ष 1993 में श्री भोला प्रसाद सिंह, अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक न्यायालय सं॰ IV, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 30.5.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध की गयी है जिस निर्णय के द्वारा उन्होंने

समस्त अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धारा 304B के अधीन दोषी पाया और उन्हें 10 वर्षों का सश्रम कारावास भुगतने का दंड दिया। यद्यपि, उन्होंने अपीलार्थीगण को दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन भी दोषी पाया, परन्तु कोई पृथक दण्डादेश पारित नहीं किया गया था।

3. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि अपीलार्थी सं॰ 2 से 6 तक के विरुद्ध यातना और प्रहार का प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है और इस कारण मुख्य अभियुक्त, अर्जुन प्रसाद बर्णवाल के साथ साथ अपीलार्थी सं॰ 2 से 6 तक की दोषसिद्धि विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है और अपास्त करने योग्य है।

4. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना का विरोध किया और निवेदन किया कि अभियोजन ने युक्तियुक्त संदेह के परे मामला सिद्ध किया है कि समस्त अपीलार्थीगण द्वारा यातना दी जा रही थी और इस कारण उनको सही दोषसिद्ध किया गया है और इस न्यायालय के हस्तक्षेप की गुंजाइश नहीं है।

5. दोनों पक्षों को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के बाद यह प्रतीत होता है कि अभियोजन मामला मृतका, रेणु देवी के पिता गोविन्दलाल बर्णवाल द्वारा दिनांक 19.3.1990 को 7.45 बजे कतरास पुलिस थाना के समक्ष दर्ज फर्दबयान के आधार पर शुरू किया गया था जिसमें कथन किया गया था कि उसकी मृत पुत्री रेणु देवी का विवाह अपीलार्थी सं॰ 1 अर्जुन प्रसाद वर्णवाल पुत्र विशेश्वर बर्णवाल के साथ दो वर्ष पहले वर्ष 1988 के 'जेठ' माह में हिन्दु रीति के अनुसार हुआ था। विवाह के समय वह निर्धन व्यक्ति था किन्तु इसके बावजूद उसने 20,000/- रुपया नगद और अन्य सामान दिया था। उसने आगे निवेदन किया कि 'अगहन' माह में 'गौना' के समय अभियुक्त-अपीलार्थी सं॰ 1 अर्जुन प्रसाद बर्णवाल और उसके परिवार के सदस्यों ने मोटर साईकिल खरीदने के लिए पुनः 20,000/- रुपया मांगा था, जो वह नहीं दे सका था और कहा था कि वह भविष्य में उनकी मांग पूरी करेगा। कुछ समय बाद, रेणु देवी अपने 'मायके' आयी और बताया कि उसका पति अर्जुन प्रसाद बर्णवाल, ससुर विशेश्वर बर्णवाल, सास सावित्री देवी, ननदें मीना देवी और मालती देवी और अन्य छोटी-मोटी बातों के लिए उसे यातना देते हैं और फटकारते हैं और 20,000/- रुपया नहीं लाने के लिए प्रहार भी करते हैं। तब वह उनके घर आया और उन्हें यातना देने से मना किया किन्तु यातना जारी रही। तब उसने चंदोर पंचायत के 'मुखिया' से शिकायत की। तब मुखिया ने मृतका के ससुर विशेश्वर बर्णवाल से बात भी किया, किन्तु उसने कहा कि जब तक वह 20,000/- रुपया नहीं देता है, वे उसकी पुत्री का यातना देना बन्द नहीं करेंगे। उसे कल यानि पिछले दिन अर्थात् दिनांक 18.3.90 को सायं 6 बजे सूचना मिली कि उसके पति, अर्जुन प्रसाद बर्णवाल और उसके ससुराल वालों ने उसकी पुत्री रेणु देवी की जलाकर हत्या कर दी है। तब वह उसके 'ससुराल' भागा-भागा गया जहाँ उसने अपनी पुत्री को गंभीर रूप से जला हुआ पाया और उसने उससे कहा कि उन सबों ने उसपर उपहति कारित की है। तब उसने पड़ोसियों को बुलाया, जिन्होंने पुलिस को सूचना दी। तब पुलिस आयी और उसने अपना बयान दिया। बाद में उसकी पुत्री की मृत्यु सदर अस्पताल, धनबाद में हो गयी।

6. उक्त फर्दबयान के आधार पर और सूचक की पत्नी सुशीला देवी द्वारा प्रभारी-अधिकारी, तेतुलमारी पुलिस थाना को दिए गए फर्दबयान के आधार पर भी भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 304(B) और 498(A) के अधीन मामला दर्ज किया गया और अन्वेषण के बाद पुलिस ने भारतीय दंड संहिता की धारा 304(B) और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन आरोप-पत्र दाखिल किया।

7. चूँकि मामला अनन्यत: सत्र न्यायालय द्वारा विचारण योग्य था, विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने संज्ञान लेने के बाद मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया और बाद में मामला अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट-ट्रैक न्यायालय सं॰ IV, धनबाद के न्यायालय को अंतरित किया गया जिन्होंने मामले का विचारण किया और पूर्वोक्त निर्णय पारित किया।

8. अ॰ सा॰ 4, सुशीला देवी, सूचक की पत्नी, पीड़ित युवती की माता जिसने पुलिस के समक्ष फर्दबयान भी दिया है और न्यायालय में कथन किया है कि उसकी पुत्री रेणु देवी का विवाह अभियुक्त-अपीलार्थी सं॰ 1 अर्जुन प्रसाद वर्णवाल, पुत्र विशेश्वर बर्णवाल के साथ लगभग दो वर्ष पहले वर्ष 1988 के 'जेठ' माह में हिन्दु रीति रिवाज के अनुसार हुआ था। विवाह के बाद अभियुक्त-अपीलार्थी सं॰ 1 अर्जुन प्रसाद वर्णवाल मोटरसाइकिल खरीदने के लिए उससे 20,000/- रुपये मांगता था। उसने कथन किया कि कुछ समय बाद वह रुपया देगी। जब गौना के बाद रेणु देवी के ससुराल जाने के छह माह बाद उसने इसका प्रबंध कर लिया उसके सास-ससुर, ननद और उसके पति ने उसे मारना और यातना देना शुरू किया। उसे घर से भी भगा दिया गया। तब पंचायत के मुखिया को शिकायत की गयी लेकिन उन्होंने कहा कि जब तक वह उन्हें 20,000/- रुपया नहीं देगा, वे उसकी पुत्री को यातना देना बन्द नहीं करेंगे। उसने आगे कथन किया कि दिनांक 18.3.90 को सायं 6 बजे उसे सूचना मिली कि उसकी पुत्री रेणु देवी को जला दिया गया है और वह चौधरी नर्सिंग होम, पंचगंधा बाजार में भर्ती है। तब वह वहाँ गयी और अपनी पुत्री रेणु देवी से बात की और उसने बताया कि 20,000/- रुपया नहीं देने के कारण उसके सास-ससुर, ननद और पति ने उसके शरीर पर किरासन तेल डाला और उसके पति अर्जुन प्रसाद वर्णवाल ने माचिस से उसको आग लगा दिया जिससे वह गंभीर रूप से जल गयी और तत्पश्चात् उसे अस्पताल लाया गया और उसे टेम्पो चालक ने सूचित किया था। तब वे रेणु देवी को चौधरी नर्सिंग होम से सदर अस्पताल, धनबाद ले गए जहाँ रात लगभग 8.30 बजे उसकी मृत्यु हो गयी। उसने अभियुक्त-अपीलार्थी सं॰ 1 अर्जुन प्रसाद वर्णवाल को न्यायालय में पहचाना और अन्यों को भी पहचानने का दावा किया। उसने आगे कथन किया परमेश्वर बर्णवाल ने उससे कहा था कि उसकी पुत्री रेणु देवी जला दी गयी है। तब वह टेम्पो में उसके घर गयी।

9. यह प्रतीत होता है कि विचारण के क्रम में अभियोजन ने 12 गवाहों का परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 1 प्रेमलाल बर्णवाल, अ॰ सा॰ 2 मनोज कुमार साह, अ॰ सा॰ 3 नागेश्वर प्रसाद केसरी, अ॰ सा॰ 4 सुशीला देवी, सूचक की पत्नी, अ॰ सा॰ 5 गोविन्द बर्णवाल, अ॰ सा॰ 6 डॉ॰ विनोद कुमार जिन्होंने शव परीक्षण रिपोर्ट प्रमाणित किया, अ॰ सा॰ 7 मोहन प्रसाद स्वर्णकार, अ॰ सा॰ 8, चूड़ामणि देवी, अ॰ सा॰ 9 राम प्रसाद सिंह, अ॰ सा॰ 10 परमेश्वर लाल बर्णवाल, अ॰ सा॰ 11 राम जीवन प्रसाद सिंह मामले का आइ॰ ओ॰ और अ॰ सा॰ 12 विनोद कुमार वर्मा हैं।

अपने प्रति-परीक्षण में, उसने कथन किया कि दिनांक 18.3.90 को रात्रि लगभग 7 बजे वह सदर अस्पताल में अपने पति से मिली और वहाँ रुकी रही। बाद में उसके पति ने भी पुलिस को बयान दिया। उसने आगे कथन किया कि वह शव परीक्षण के समय अस्पताल में दारोगा से मिली। पैरा 10 में उसने आगे कथन किया कि स्वयं अभियुक्त अर्जुन प्रसाद वर्णवाल ने उसके घर पर उससे 20,000/- रुपया मोटर साइकिल खरीदने के लिए मांगा था। उसने आगे कथन किया कि मुखिया अर्थात् राम दयाल सिंह ने पंचायती की थी और उनसे पैसा नहीं मांगने को कहा था।

10. अ॰ सा॰ 5 गोविन्द बर्णवाल, मृतक का पिता ने भी न्यायालय में कथन किया कि घटना के दो वर्ष पहले वर्ष 1988 में पीड़िता रेणु देवी का विवाह हिन्दू रीति के अनुसार हुआ था और उसने

20,000/- रुपया व्यय किया था और विवाह के दौरान 20,000/- रुपये मूल्य का घर का सामान भी दिया था और छह: माह बाद गौना के बाद उसकी पुत्री ससुराल गयी और ससुराल में रह रही थी। जब वह अपने पिता के घर आती थी वह बताया करती थी कि उसके ससुराल वाले उससे 20,000/- रुपया मोटर साइकिल खरीदने के लिए मांग रहे हैं और उस पर प्रहार भी कर रहे हैं। उसने अपीलार्थीगण अर्थात् अपने पति अर्जुन प्रसाद बर्णवाल, ससुर विशेश्वर बर्णवाल, सास सावित्री देवी, ननदें मीना देवी और मालती देवी को नामित किया था। बाद में मुखिया रामदयाल सिंह द्वारा पंचायती भी की गयी जहाँ मुखिया ने उन्हें रेणु देवी को अच्छे से रखने का और दहेज नहीं मांगने को कहा। किन्तु, दिनांक 18.3.90 को उसे सूचना मिली कि अभियुक्तगण ने किरासन छिड़ककर उसकी पुत्री को जला दिया है। अभियुक्त अपीलार्थी सं० 1 अर्जुन प्रसाद बर्णवाल द्वारा आग लगायी गयी थी। यह सुनकर वह धनबाद अस्पताल गया जहाँ उसने अपनी पुत्री को बुरी तरह जला पाया और रात्रि लगभग 8/8.30 बजे अस्पताल में ही उसकी मृत्यु हो गयी। तत्पश्चात, पुलिस आयी और उसने अपना फर्दबयान दिया। उसने फर्दबयान पर अपना हस्ताक्षर प्रमाणित किया जिसे प्रदर्श-2 के रूप में चिन्हित किया गया है। उसने अभियुक्तगण को न्यायालय में पहचाना। उसने आगे कथन किया कि वह अपनी पत्नी से सदर अस्पताल में रात्रि लगभग 8 बजे मिला। उसने आगे कथन किया कि किसी अन्य गवाहों की उपस्थिति में उसकी पुत्री ने उसे यातना के बारे में नहीं बताया था।

अपने प्रति-परीक्षण के पैरा-17 पर उसने कथन किया कि उसकी पुत्री पर हो रहे प्रहार, यातना और जलाने के बारे में बताया गया था। उसे मुहल्लावासियों, अर्थात् मोहन साह, दुलारचंद साव और संजय वर्मा ने यह बताया था।

11. अन्य गवाह अर्थात् अ० सा० 1 प्रेमलाल बर्णवाल ने कथन किया कि वह यह सुनने के बाद कि दहेज के कारण प्रहार के बाद रेणु देवी को जला दिया गया है, अभियुक्त के घर गया। तब उसने उसे जली हुई अवस्था में देखा और रेणु देवी के ससुराल वाले उसे अस्पताल ले जा रहे थे। तब रेणु देवी ने कहा कि उसके ससुराल वालों ने उसे जलाया है।

अपने प्रति-परीक्षण में उसने कथन किया कि वह पीड़िता का मौसा है और वह उसी मुहल्ले में रहता है जिसमें अभियुक्तगण रहते हैं। उसे टेम्पो पर अस्पताल ले जाया गया था। रात्रि में सदर अस्पताल में उसकी मृत्यु हो गयी।

12. अ० सा० 2, मनोज कुमार साह ने कथन किया कि दिनांक 18.3.90 को उसने सुना कि रेणु देवी को जला दिया गया है, तब वह वहाँ गया और देखा कि उसके ससुराल वालों द्वारा टेम्पो पर उसे अस्पताल ले जाया जा रहा था और वह रो रही थी और कह रही थी कि उसके ससुराल वालों ने उसे जलाया है। वह टेम्पो पर उसके साथ गया। तब रेणु देवी ने उसे बताया कि उसके पति, सास, ससुर और ननदों ने उसे जलाया है। बाद में, उसके माता-पिता उसे सदर अस्पताल ले गए जहाँ उसकी मृत्यु हो गयी।

अपने प्रति परीक्षण में, उसने कथन किया कि पुलिस द्वारा उसका परीक्षण किया गया था और कहा कि उसने रेणु देवी को जली हुई अवस्था में देखा था और टेम्पो पर अस्पताल ले जाते देखा था। रेणु देवी ने अभियुक्तगण का नाम बताया था। उसने यह कथन भी किया कि टेम्पो में उसके और रेणु देवी के अलावा कोई और नहीं था। उसने यह कथन भी किया कि सदर अस्पताल ले जाने से पहले रेणु देवी होश में थी।

13. अ० सा० 3, नागेश्वर प्रसाद केसरी ने भी कथन किया कि यह सुनने पर कि दिनांक 18.3.90 को रेणु देवी को जला दिया गया है, वह उनके घर गया और उसे जली हुई अवस्था में पाया और नर्सिंग होम में पड़ा देखा। पूछताछ करने पर उसने कथन किया कि उसके पति, सास-ससुर और

ननदों ने मोटर साईकिल खरीदने के लिए 20,000/- रुपया उसके पिता द्वारा न दिए जाने के चलते उसे जला दिया है।

14. अ॰ सा॰ 6, डॉ॰ विनोद कुमार, जिन्होंने दिनांक 19.3.90 को मृत शरीर का परीक्षण किया और मृत्यु-पूर्व उपहतियाँ पायी: आंशिक रूप से पूर्ण मोटाई तक, त्वचा तक गहरी जलन पूरे शरीर पर देखी गयी थी और डॉक्टर के मत में पूर्वोल्लिखित जलने से हुई व्यापक उपहतियों के फलस्वरूप आघात के कारण उसकी मृत्यु हो गयी और उसके सिर के बालों से किरासन तेल की गंध आ रही थी; यह आत्मघाती अथवा मानवघाती हो सकता है। उसने शव परीक्षण रिपोर्ट प्रमाणित किया जो प्रदर्श-3 के तौर पर चिन्हित किया गया है।

अपने प्रति-परीक्षण में उसने कथन किया कि जलन 60% थी।

15. अ॰ सा॰ 7, मोहन प्रसाद स्वर्णकार ने कथन किया कि हल्ला सुनने पर वह अर्जुन प्रसाद बर्णवाल के घर गया और छत से धुआँ आते देखा और जब वह घर में घुसा तो उसने देखा कि अर्जुन प्रसाद वर्णवाल की पत्नी जल रही थी। तत्पश्चात्, उसे नर्सिंग होम ले जाया गया था।

16. अ॰ सा॰ 9, राम प्रसाद सिंह चंदोर पंचायत का मुखिया है और उसने कथन किया कि उसने कोई पंचायती नहीं की थी।

17. अ॰ सा॰ 10, परमेश्वर लाल बर्णवाल ने कथन किया कि इस बात का हल्ला सुनने पर कि रेणु देवी को जला दिया गया है, वह उसके घर गया। और वहाँ किसी को उपस्थित नहीं पाया। तब पूछताछ करने पर उसे पता चला कि रेणु देवी को नर्सिंग होम ले जाया गया है। तब वह अस्पताल की ओर गया। बाद में अस्पताल में उसकी मृत्यु हो गयी।

18. अ॰ सा॰ 11, राम जीवन प्रसाद सिंह मामले के आइ॰ ओ॰ ने कथन किया कि वह तेतुलमारी पुलिस थाना का प्रभारी अधिकारी था। उसने सूचना प्राप्त की कि किसी व्यक्ति को जला दिया गया है, तब वह अस्पताल गया और सुशीला देवी का बयान दर्ज किया। उसने उसका फर्दबयान प्रमाणित किया और इसे प्राथमिकी के तौर पर दर्ज करने के लिए भेजा। तत्पश्चात् उसने गवाहों जो वहाँ उपस्थित थे, का बयान दर्ज किया। उसने घटना स्थल का भी परीक्षण किया। बाद में उसने धनबाद पुलिस थाना पर भी फर्दबयान दर्ज प्राप्त किया। तब अन्वेषण पूरा करने के बाद और दहेज प्रतिषेध अधिनियम के अधीन उप-कमिश्नर से मंजूरी लेने के बाद और शव परीक्षण रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद मामले में आरोप पत्र दाखिल किया। उसने मामले में आरोप-पत्र दाखिल किया।

19. अ॰ सा॰ 12, विनोद कुमार वर्मा एक औपचारिक गवाह है जिसने उप-कमिश्नर द्वारा दी गयी मंजूरी को प्रमाणित किया है।

20. इस प्रकार, जैसी चर्चा ऊपर की गयी है, साक्ष्यों और अभियोजन गवाहों अर्थात् अ॰ सा॰ 4 और 5 और अ॰ सा॰ 6 डॉक्टर और अन्वेषण अधिकारी के बयान से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि 20,000/- रुपया जिसे अपीलार्थी सं॰ 1 अर्जुन प्रसाद बर्णवाल द्वारा मोटर साइकिल खरीदने के लिए मांगा जा रहा था, नहीं लाने के लिए पीड़ित युवती को अपीलार्थीगण द्वारा यातना दी जाती थी। सूचक की पत्नी सुशीला देवी ने अपने बयान में स्पष्टत: कथन किया है कि उसके दामाद अर्जुन प्रसाद बर्णवाल द्वारा 20,000/- रुपया मांगा जाता था और उसने इसे उसके घर पर भी मांगा था। उसने यह भी कथन किया कि समस्त अपीलार्थीगण द्वारा उसे यातना दी जाती थी। जहाँ तक जलाने के लिए जिम्मेदार व्यक्तियों का संबंध है, पड़ोस के गवाहों अर्थात् अ॰ सा॰ 1 और 2 खासकर अ॰ सा॰ 2 ने दावा किया कि वह उसके साथ टेम्पो पर गया था और उसने कहा था कि उसके पति, सास-ससुर ने उसे जलाया है। उसने स्पष्टत: कथन किया था कि उसके पति अर्जुन प्रसाद वर्णवाल ने माचिस से आग लगायी थी।

21. इस प्रकार, यह सिद्ध करने हेतु पर्याप्त साक्ष्य है कि अपीलार्थी सं॰ 1 अर्जुन प्रसाद बर्णवाल मोटर साइकिल खरीदने के लिए 20,000/- रुपया अतिरिक्त दहेज मांग रहा था और वह अपने माता-पिता के साथ उसे यातना देता था यद्यपि सूचक और अन्य गवाहों ने सामान्य अभिकथन करने का प्रयास किया है और उसकी ननदों अर्थात् मीना देवी और मालती देवी और देवर केदार बर्णवाल को भी नामित किया कि वे भी यातना देते थे। किन्तु उनलोगों के विरुद्ध प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है।

22. परिणामस्वरुप, अपीलार्थी सं॰ 1, 2 और 4 अर्थात् अर्जुन प्रसाद बर्णवाल, विशेश्वर बर्णवाल और सावित्री देवी द्वारा दाखिल अपील खारिज की जाती है क्योंकि इस निष्कर्ष पर आने के लिए पर्याप्त साक्ष्य है कि उन्होंने भारतीय दंड संहिता की धारा 304B के अधीन और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन भी अपराध किया है। जहाँ तक अपीलार्थी सं॰ 1 अर्जुन प्रसाद बर्णवाल का संबंध है, वह कारावास अभिरक्षा में है, अत: विचारण न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि वह सत्यापित करे कि उसने दस वर्ष की अवधि पूरी की है या नहीं? आगे, अपीलार्थी सं॰ 2 और 4 अर्थात् विशेश्वर बर्णवाल और सावित्री देवी जमानत पर है, उनका जमानत पत्र रद्द किया जाता है और विचारण न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि उनकों अपना दंड पूरा भुगतने के लिए उनके विरुद्ध गैर-जमानती गिरफ्तारी का वारंट जारी करे।

23. किन्तु, जैसा चर्चा ऊपर की गयी है, चूँकि अपीलार्थी सं॰ 3 केदार बर्णवाल और अपीलार्थी सं॰ 5 और 6 अर्थात् मीना देवी और मालती देवी के विरुद्ध दहेज की माँग और यातना और मृतका को जलाने में भागीदारी के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष और पर्याप्त साक्ष्य नहीं है, उन्हें संदेह का लाभ दिया जाता है और उन्हें उनके सम्बन्ध में लगाए गए आरोपों से मुक्त किया जाता है। वे भी जमानत पर है, उन्हें अपने जमानत पत्र के बंधन से निर्मुक्त किया जाता है।

24. परिणामस्वरुप, अपील अंशत: अनुज्ञात की जाती है।

माननीय प्रशान्त कुमार, न्यायमूर्ति

महेश्वर सिंह मुण्डा

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (SJ) No. 847 of 2002. Decided on 16th April, 2010.

एस॰ टी॰ सं॰ 4 वर्ष 1996 में श्री कान्त रॉय, अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰, सरायकेला द्वारा पारित दिनांक 25.11.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 363 एवं 376—अपहरण एवं बलात्संग—पीड़ित युवती की चिकित्सा परीक्षा ने बलात्संग का सकारात्मक निष्कर्ष दिया—पीड़ित युवती को क्वार्टर से बरामद दिया गया और वहीं से अपीलार्थी को गिरफ्तार किया गया—पीड़ित युवती का विवरण अभियोजन साक्षीगण के साक्ष्य द्वारा पूर्णत: समर्थित—अपीलार्थी द्वारा दी गयी प्रेम कथा विश्वसनीय नहीं है—अपीलार्थी द्वारा पीड़ित युवती को पत्र दिए जाने से यह कभी उपधारित नहीं किया जा सकता है कि वह अपीलार्थी से प्रेम करती थी—प्रतिवादी का विवरण कि वह अपीलार्थी के साथ भागी थी स्वीकार नहीं किया जा सकता है—अपील खारिज।
(पैरा 8 से 12)

अधिवक्तागण.—Mr. A.K. Sahani, For the Appellant; Mr. Shekhar Sinha, For the Respondent.

प्रशान्त कुमार, न्यायमूर्ति.—यह अपील एस॰ टी॰ सं॰ 4 वर्ष 1996 में अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक न्यायालय, सरायकेला द्वारा पारित दिनांक 25.11.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा और जिसके अधीन उन्होंने भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 363 और 376 के अधीन अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 363 के अधीन 4 वर्षों का कठोर कारावास और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन अपराध के लिए सात वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंड दिया।

2. ठाकुर दास महतो के फर्दबयान के मुताबिक अभियोजन का मामला यह है कि दिनांक 24.7.1995 को सायं लगभग 7.30 बजे उसकी पंद्रह वर्षीय पुत्री दैनिक कर्म से निवृत्त होने गयी थी किन्तु वापस नहीं आयी थी। यह कथन किया गया है कि महेश्वर सिंह मुंडा (अपीलार्थी) ने फरवरी माह में उसकी पुत्री को पत्र दिया था जिस कारण सूचक ने उसे डाँटा था किन्तु उस समय अपीलार्थी ने उसे धमकी दी थी और कहा था कि वह उसकी पुत्री को ले जाएगा और उसके साथ विवाह करेगा। तद्नुसार, यह अभिकथन किया गया है कि दिनांक 24.7.1995 को महेश्वर सिंह मुंडा उसकी पुत्री को विवाह का प्रलोभन देकर ले गया और छुपा दिया।

3. पूर्वोक्त सूचना के आधार पर, भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 363 और 366A के अधीन इचागढ़ पी॰ एस॰ केस सं॰ 36 वर्ष 1995 दिनांक 27.7.1995 संस्थापित किया गया और पुलिस ने अन्वेषण शुरू किया। यह प्रतीत होता है कि अन्वेषण के दौरान पीड़ित युवती को अपीलार्थी के साथ मोसाबनी से बरामद किया गया था। तत्पश्चात्, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन पीड़ित युवती का बयान दर्ज किया गया। डॉक्टर द्वारा पीड़ित युवती का परीक्षण किया गया था। अभिलेख आगे दर्शाते हैं कि अन्वेषण पूरा करने के बाद पुलिस ने भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 366A, 368, 376/34 के अधीन अपीलार्थी और दो अन्य अर्थात् दिवाकर सिंह मुण्डा और मिहिर बनर्जी के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया। यह प्रतीत होता है कि संज्ञान लेने के बाद मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया है क्योंकि भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 366A एवं 376 के अधीन अपराध सत्र न्यायालय द्वारा अनन्यत: विचारण योग्य है।

4. विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश ने दिनांक 6.1.1999 के अपने आदेश के तहत भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 363/34, 366A और 376 के अधीन आरोप विरचित किया और उनको अपीलार्थी एवं दो अन्य को स्पष्ट किया जिसके लिए उन्होंने निर्दोष होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने का दावा किया। तत्पश्चात्, अपने मामले के समर्थन में अभियोजन ने कुल नौ गवाहों का परीक्षण किया। अभियोजन द्वारा अपना मामला बन्द करने के बाद अपीलार्थी और दो अन्य अभियुक्तों को धारा 313 दं॰ प्र॰ सं॰ के अधीन परीक्षण किया गया जिसमें उन्होंने अपने बचाव में घटना से पूरा इंकार किया और झूठा फँसाए जाने की बात कही। अपीलार्थी और दो अन्य व्यक्तियों ने अपने-अपने मामले के समर्थन में कुछ दस्तावेज प्रस्तुत किया। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर विचार करने के बाद विद्वान सत्र न्यायाधीश ने सह-अभियुक्त मिहिर बनर्जी और दिवाकर सिंह मुण्डा को सारे आरोपों से बरी कर दिया। किन्तु इसी निर्णय द्वारा उन्होंने भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 376 और 363 के अधीन अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया, जैसा ऊपर कहा गया है, जिसके विरुद्ध वर्तमान अपील दाखिल की गयी है।

5. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता, श्री ए॰ के॰ साहनी द्वारा निवेदन किया गया है कि वर्तमान मामले में सूचक और अन्य अभियोजन गवाहों द्वारा स्वीकार किया गया है कि अपीलार्थी और पीड़ित युवती के बीच प्रेम संबंध था। यह निवेदन किया गया है कि पीड़ित युवती स्वेच्छा से अपीलार्थी के साथ भागी थी। यह निवेदन किया गया है कि डॉक्टर ने कथन किया था कि परीक्षण की तिथि पर पीड़ित युवती की आयु लगभग 16-17 वर्ष थी। यह भी निवेदन किया गया है कि चूँकि पीड़ित युवती 16 वर्ष से अधिक आयु की है और उसने यौन संबंधों हेतु स्वीकृति दी थी, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन अपराध नहीं बनाया जा सकता है। आगे निवेदन किया गया है कि चूँकि युवती अपीलार्थी

के साथ भागी थी, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 363 के अधीन भी अपराध नहीं बनता है। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि अवर न्यायालय का आक्षेपित निर्णय संपोषित नहीं किया जा सकता है।

6. दूसरी ओर, विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ श्री शेखर सिन्हा निवेदन करते हैं कि पीड़ित युवती ने अपने अभिसाक्ष्य में कथन किया कि वह अपीलार्थी से प्रेम नहीं करती थी। उसने यह भी कथन किया कि उसने अपीलार्थी को कभी भी प्रेमपत्र नहीं लिखा है बल्कि अपीलार्थी ने उसे प्रेमपत्र दिया था जिसे उसने अपनी माता को दे दिया। उसने तब कथन किया कि इस कारण उसके पिता ने अपीलार्थी को डाँटा था। तद्नुसार, यह निवेदन किया गया है कि अपीलार्थी द्वारा कही गयी कथा विश्वास उत्पन्न नहीं करती है। पीड़ित युवती ने स्पष्ट तौर पर कथन किया कि अपीलार्थी ने उसका अपहरण कर लिया और उसे मोसाबनी ले गया और उसके साथ बलात्कार किया। उसने आगे कथन किया कि पुलिस द्वारा उसे मोसाबनी से बरामद किया गया था। यह निवेदन किया गया है कि डॉक्टर एवं अन्य गवाहों द्वारा समर्थित पीड़ित युवती के साक्ष्य की दृष्टि में, अवर न्यायालय ने भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 363 और 376 के अधीन अपीलार्थी को सही दोषसिद्ध किया है और दंड दिया है। अतः इसमें इस न्यायालय का हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है।

7. निवेदन सुनने के उपरांत, मैंने मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है। वर्तमान मामले में अभियोजन ने कुल नौ गवाहों का परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 1 औपचारिक गवाह है। अ॰ सा॰ 2 पीड़ित युवती की माता, अ॰ सा॰ 5 नरहरि महतो (पीड़ित युवती का चाचा), अ॰ सा॰ 6 गणेशचन्द्र महतो (पीड़ित युवती का भाई), अ॰ सा॰ 7, उषा बाला महतो (पीड़ित युवती), अ॰ सा॰ 8, ठाकुर दास महतो (सूचक और पीड़ित युवती का पिता) तथ्यों के गवाह हैं। अ॰ सा॰ 3 डॉक्टर है जिसने पीड़ित युवती का परीक्षण किया था, अ॰ सा॰ 4 गाँव का सरपंच है जो लिखित रिपोर्ट का गवाह है और अ॰ सा॰ 9 अन्वेषण अधिकारी है।

8. अ॰ सा॰ 7 (पीड़ित युवती) मुख्य गवाह है। उसने कथन किया कि घटना के दिन रात्रि लगभग 7 बजे वह गाँव के तालाब की ओर गयी जहाँ महेश्वर सिंह मुण्डा आया और उसको पकड़ लिया और जंगल की ओर ले गया। जब उसने हल्ला करने का प्रयास किया, उसने उसे ऐसा करने से मना किया। उसने कथन किया कि उसे प्रलोभन दिया गया है कि वह उसको काम देगा और 3000/- रुपया प्रतिमाह देगा। उसने तब अभिसाक्ष्य दिया कि वह उसे मोसाबनी ले गया और उसका बलात्संग किया। उसने आगे अभिसाक्ष्य दिया कि पुलिस आयी और उसे बरामद किया। उसने यह कथन भी किया कि महेश्वर सिंह मुण्डा को वहाँ से गिरफ्तार किया गया था। उसने विनिर्दिष्ट कथन किया कि घटना के समय वह लगभग पन्द्रह वर्ष की थी। उसका अपीलार्थी द्वारा विस्तारपूर्वक प्रति-परीक्षण किया गया है। वह घटना के तरीके के संबंध में सुसंगत बनी रही। उसने इस सुझाव से इंकार किया कि वह अपीलार्थी से प्रेम करती थी। उसने अपीलार्थी के इस सुझाव से भी इंकार किया था कि उसने अपीलार्थी को प्रेम पत्र लिखा था। अ॰ सा॰ 7 का अभिसाक्ष्य धारा 164 दं॰ प्र॰ सं॰ के अधीन दिए गए उसके पूर्व बयान (प्रदर्श-4) से पूरी तरह संपुष्ट होता है।

9. अ॰ सा॰ 3 डॉक्टर, जिन्होंने दिनांक 29.7.1995 को पीड़ित युवती का परीक्षण किया, ने कथन किया था कि परीक्षण पर उसने हायमन को फटा पाया, जो बलात्संग का सकारात्मक निष्कर्ष है। इस प्रकार डॉक्टर ने यह भी मत दिया कि पीड़ित युवती का बलात्संग हुआ था। अ॰ सा॰ 2 पीड़ित युवती की माता ने कथन किया है कि घटना की तिथि पर सायंकाल में उसकी पुत्री दैनिक कर्म से निवृत्त होने गाँव के तालाब पर गयी थी, किन्तु वापस नहीं लौटी थी और बाद में उसे पुलिस द्वारा महेश्वर सिंह मुण्डा के साथ बरामद किया गया था। यह तथ्य अ॰ सा॰ 5, 6 और 8 द्वारा भी समर्थित किया गया है। आई॰ ओ॰ (अ॰ सा॰ 9) ने भी कथन किया कि पीड़ित युवती को मोसाबनी के क्वार्टर से बरामद किया गया है और वहीं से अपीलार्थी महेश्वर सिंह मुण्डा को गिरफ्तार किया गया था। इस प्रकार, पूर्वोक्त गवाहों ने पीड़ित युवती के विवरण का पूरी तरह समर्थन किया है।

10. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का प्रतिवाद यह है कि पीड़ित युवती अपीलार्थी से प्रेम करती थी, विश्वास उत्पन्न नहीं करता है। यद्यपि अ॰ सा॰ 7 और सूचक द्वारा स्वीकार किया गया है कि फरवरी 1995 में अपीलार्थी ने पीड़ित युवती को प्रेमपत्र दिया था किन्तु इसके चलते यह उपधारित नहीं किया जा सकता है कि पीड़ित युवती अपीलार्थी से प्रेम करती थी। अ॰ सा॰ 7 ने स्पष्ट तौर पर कथन किया कि वह अपीलार्थी से प्रेम नहीं करती थी। अपीलार्थी ने अभिकथित रूप से पीड़ित युवती द्वारा लिखा गया प्रदर्श-Y श्रृंखला दाखिल करके पूर्वोक्त तथ्य को स्थापित करने का प्रयास किया था। उक्त पत्रों के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि उनमें से अधिकतर हिन्दी में लिखे गए थे और उनमें से कुछ बंगला भाषा में लिखे गए थे। इनके परिशीलन से मैं पाता हूँ कि अधिकतर पत्रों में इसके लेखक का नाम उद्धृत नहीं किया गया है जबकि कुछ पत्रों में आरती और कुछ में माधुरी नाम उल्लिखित किया गया है। किन्तु किसी भी पत्र में पीड़ित युवती का नाम इसके लेखक के रूप में उल्लिखित नहीं किया गया था। इस प्रकार प्रतिवादी यह सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है कि पूर्वोक्त प्रदर्श-Y श्रृंखला पीड़ित युवती द्वारा लिखा गया था। इस प्रकार प्रतिवादी का विवरण कि पीड़ित युवती अपीलार्थी के साथ भागी थी, स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

11. उपरोक्त की गयी चर्चा की दृष्टि में, जैसा पीड़ित युवती ने कथन किया कि उसका अपीलार्थी ने अपहरण किया था और उसके साथ बलात्संग किया था और इसको भी ध्यान में लेते हुए कि उसका अभिसाक्ष्य चिकित्सीय साक्ष्य और अभिलेख पर उपलब्ध अन्य साक्ष्य द्वारा पूर्णत: समर्थित होता है, मैं पाता हूँ कि अभियोजन अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप सिद्ध करने में सक्षम रहा है। अत: मैं आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता और/अथवा अनियमितता नहीं पाता हूँ जिसमें इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप अपेक्षित हो।

12. परिणामस्वरूप, मैं इस अपील में गुणागुण नहीं पाता हूँ। तद्नुसार, इसे खारिज किया जाता है।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

नारायणनाथ गोस्वामी एवं एक अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal Appeal No. 136 of 2002. Decided on 1st April, 2010.

सत्र विचारण सं॰ 187 वर्ष 1998 में मोहम्मद सरफराज खान, प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, कोडरमा द्वारा पारित दिनांक 27.2.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 28.2.2002 के दंडादेश के विरूद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 304B/34—भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872—धारा 113B–दहेज मृत्यु–सामान्य आशय–दोषसिद्धि और दंड–चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा अभियोजन मामला संपुष्ट–दोनों अपीलार्थीगण के विरूद्ध दहेज मांग और यातना का अभिकथन था–दहेज के लिए पति-पत्नी के बीच झगड़ा होता था और पति द्वारा यातना दी जा रही थी–किन्तु ससुर (अपीलार्थी सं॰ 2) के विरूद्ध यातना का विनिर्दिष्ट अभिकथन नहीं है–धारा 304B/34 के अधीन उसकी दोषसिद्धि पोषणीय नहीं है–विवाह के एक वर्ष के अंदर पीड़ित युवती ने अपने पति की दहेज मांग और यातना के कारण स्वयं को फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली–पति (अपीलार्थी सं॰ 1) के विरूद्ध धारा 304B/34 के अधीन मामला उचित रूप से बनाया

गया–धारा 304B के अधीन अपीलार्थी-पति की दोषसिद्धि और दंड संपोषित–किन्तु ससुर की दोषसिद्धि धारा 498A भा॰ दं॰ सं॰ में परिवर्तित की गयी और उसके द्वारा भुगते गए अवधि तक दंड घटा दिया गया–अपील खारिज। (पैरा 15 से 18)

अधिवक्तागण.–Mr. Aparesh Kr. Singh, For the Appellant; Mr. Azzimuddin, For the Respondent.

प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति.–अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्त्तमान अपील सत्र विचारण सं॰ 187 वर्ष 1998 में मोहम्मद सरफराज खान, प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, कोडरमा द्वारा पारित दिनांक 27.2.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 28.2.2002 के दंडादेश के विरूद्ध दाखिल की गयी है जिस निर्णय के द्वारा दोनों अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304B/34 के अधीन दोषी पाया गया था और 10 वर्षों के कठोर कारावास का दंड दिया गया था।

3. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि किसी प्रत्यक्ष साक्ष्य कि मृतका रेणु देवी की मृत्यु के ठीक पहले उसे यातना दी गयी थी, की अनुपस्थिति में साक्ष्य अधिनियम की धारा 113B की सहायता लेते हुए धारा 304B/34 भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है और अपास्त करने योग्य है। उन्होंने आगे निवेदन किया है कि अपीलार्थी सं॰ 2 प्रवीणनाथ गोस्वामी दिनांक 27.2.2002 जिस तिथि से वह अभिरक्षा में लिया गया था, से लगभग 12 *(sic)* वर्षों से अभिरक्षा में रहा है और अपीलार्थी सं॰ 1 नारायणनाथ गोस्वामी के विरूद्ध यातना और दहेज की मांग का मामला नहीं है।

4. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना का विरोध किया है और निवेदन किया है कि दोनों अपीलार्थीगण के विरूद्ध प्रत्यक्ष साक्ष्य है कि विवाह के उपरांत वे दहेज मांगते थे और पीड़िता रेणु देवी को लगातार यातना देते रहते थे जिसकी परिणति उसकी अस्वाभाविक मृत्यु हुई और इस प्रकार पूर्वोक्तानुसार उन्हें सही दोषसिद्ध किया गया है और दंड दिया गया है।

5. दोनों पक्षों को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के बाद, मैं पाता हूँ कि दिनांक 27.11.1997 को दोपहर लगभग 12.30 बजे कोडरमा पुलिस थाना में सूचक पारोनाथ गोस्वामी द्वारा दिए गए लिखित रिपोर्ट के आधार पर अभियोजन मामला आरंभ किया गया था जिसमें कथन किया गया था कि विगत वर्ष वैशाख माह में उसकी पुत्री रेणु देवी का विवाह तेतरिया गाँव के प्रवीणनाथ गोस्वामी पुत्र नारायणनाथ गोस्वामी के साथ हिन्दु रीति के अनुसार हुआ था और उसने अपने सामर्थ्य के मुताबिक विवाह में दहेज दिया था। तत्पश्चात, रेणु देवी तेतरिया गाँव में अपने ससुराल में प्रसन्नतापूर्वक रहने लगी, किन्तु कुछ समय बाद उसके ससुर, नारायणनाथ गोस्वामी, सास चमेली देवी और पति प्रबीणनाथ गोस्वामी ने दहेज के रूप में 5,000/- रूपया मांगना शुरू किया। उसने उनसे कहा कि वह एक निर्धन व्यक्ति है और वह 5,000/- रूपया नहीं दे सकता है किन्तु वे मांगे गए दहेज नहीं लाने के कारण उसकी पुत्री को यातना देने लगे। वह विगत छठ पूजा में अपने घर आयी और कहा कि उसे दहेज के लिए यातना दी जा रही है, तब उसने अपने भतीजे राजेन्द्रनाथ गोस्वामी को अपनी पुत्री के ससुराल भेजा जिसने ससुर से बात की लेकिन उसके ससुर ने कहा कि उन्हें जल्दी से जल्दी 5,000/- रुपया देना चाहिए। किन्तु उन्होंने कहा कि वे अब उसको यातना नहीं देंगे और ऐसा कहते हुए छठ पूजा के बाद उसकी वापस ले गए। किन्तु उनके द्वारा उसे ले जाने के तुरन्त बाद दिनांक 27.11.1997 को उसे प्रात: 6 बजे सूचना मिली कि उसकी पुत्री के ससुरालवालों और पति ने गला दबाकर उसकी हत्या कर दी और मृत शरीर को फाँसी पर लटका दिया और इसे ठिकाना लगाने की प्रयास किया। तब वह अपनी पुत्री के ससुराल गए और मृत शरीर को देखा। पूछताछ करने पर स्थानीय

ग्रामीणों ने कहा कि उसकी पुत्री को विगत रात्रि बुरी तरह पीटा गया था और तत्पश्चात उसकी हत्या कर दी गयी थी। तब उसने लिखित रिर्पोट दिया।

6. उक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर, पुलिस ने भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304B/34 के अधीन मामला दर्ज किया और अन्वेषण के बाद आरोप-पत्र दाखिल किया। चूँकि मामला सत्र न्यायालय द्वारा विचारण योग्य था, विद्वान सी॰ जे॰ एम॰ ने संज्ञान लेने के बाद मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया और अंततः प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश ने मामले का विचारण किया और पूर्वोक्तानुसार अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध किया।

7. यह जाहिर होगा कि विचारण के क्रम में अभियोजन ने 9 गवाहों का परीक्षण किया है:–

अ० सा० 1 दशरथ सिंह हैं।

आ० सा० 2 मुंशी यादव हैं।

अ० सा० 3 राजेन्द्रनाथ गोस्वामी हैं।

अ० सा० 4 किशुन नाथ गोस्वामी हैं।

आ० सा० 5 बसन्त नाथ गोस्वामी हैं।

अ० सा० 6 अर्जुन नाथ गोस्वामी हैं।

अ० सा० 4 पारोनाथ गोस्वामी-मामले का सूचक हैं।

अ० सा० 8 डॉ० जयव्रत रॉय और

अ० सा० 9 सत्य नारायण सिंह, मामले का आइ० ओ० हैं।

8. अ॰ सा॰ 1 दशरथ सिंह और अ॰ सा॰ 2 मुंशी यादव केवल औपचारिक गवाह हैं। उन्होंने कथन किया उन्होंने मृत शरीर को देखा और कुछ भी नहीं कहा।

9. अ॰ सा॰ 3, राजेन्द्रनाथ गोस्वामी ने कथन किया कि पीड़िता रेणु देवी उसकी कजिन थी और लगभग तीन वर्ष पहले उसका विवाह हुआ था और 2-3 माह तक वह खुशी-खुशी रही। उसके बाद उसके ससुराल वालों ने 5,000/- रु॰ दहेज मांगना शुरू किया। दहेज नारायण नाथ गोस्वामी, चमेली देवी और प्रवीणनाथ गोस्वामी द्वारा मांगा जा रहा था। उसका पिता पैसा देने की हालत में नहीं था। तब उन्होंने रेणु देवी को यातना देना शुरू किया इसके बाद तीन बार पंचायती की गयी। अतत: वे रेणु देवी को अपने घर ले गए लेकिन उसको ले जाते समय उसने ससुराल वालो ने कहा कि यदि पैसा नहीं दिया गया तो वे उसकी पुत्री को लौटा देंगे। किन्तु तीन-चार दिनों बाद उन्हें सूचना मिली कि दिनांक 27.11.1997 को उसकी मृत्यु हो गयी है, वे उसके ससुराल गए और उसका मृत शरीर देखा और पुलिस थाना को सूचित किया। पुलिस ने उसके चाचा पारोनाथ गोस्वामी द्वारा दिए गए बयान को पढ़ा, तब उसने अपना एल॰ टी॰ आइ॰ लगाया और हस्ताक्षर भी किया। उसने इसकी पहचान की जिसे विचारण में प्रदर्श-1 के तौर पर चिन्हित किया गया है। उसने न्यायालय में अभियुक्तगण को पहचाना। उसने रस्सी का अभिग्रहण सूची की भी प्रमाणित किया जिसपर उसने हस्ताक्षर किया था। उसने अपना हस्ताक्षर–प्रदर्श-2 पहचाना। प्रति-परीक्षण में उसने कथन किया कि पंचायती में कोई लिखित दस्तावेज तैयार नहीं किया गया था। उसने कथन किया है कि वह केवल एक बार उसके ससुराल गया था जब उसने यातना के बारे में जाना किन्तु पुलिस को सूचना नहीं दी गयी थी। उसने कथन किया है कि घटना से ठीक एक महीना पहले पीड़िता रेणु देवी को उसके ससुर नाराणनाथ गोस्वामी द्वारा वापस ले जाया गया था। उसने प्रति-परीक्षण में यह कथन भी किया है कि बरामद रस्सी 3-4 हाथ लंबी थी।

10. अ॰ सा॰ 4, किशुन नाथ गोस्वामी ने भी अभियोजन मामले का समर्थन किया है और कथन किया है कि जब उन्हें दिनांक 27.11.1997 को सूचना मिली कि दहेज नहीं दिए जाने के कारण अभियुक्तगण द्वारा दी गयी यातना के चलते रेणु देवी की मृत्यु हो गयी है, तब वह वहाँ गया। उसने कथन किया कि इसके लिए पहले पंचायती भी की गयी थी, किन्तु अंततः उन्होंने तेतरियाडीह स्थित अपने घर में उसकी हत्या कर दी। उसने मृत शरीर को देखा था। उसके गर्दन पर हिंसा के चिन्ह थे। उसने न्यायालय में अभियुक्तों को पहचाना। उसने प्रति-परीक्षण में कहा है कि उसका ससुराल उसके घर से 10 कि॰ मी॰ दूर था। अपने प्रति-परीक्षण में उसने कथन किया है कि घटना के पहले दहेज मांग के संबंध में उन्हें जानकारी नहीं थी।

11. अ॰ सा॰ 5, बसन्त नाथ गोस्वामी ने भी अभियोजन मामले का समर्थन किया है और कथन किया है कि घटना के समय पीड़िता रेणु देवी अपने ससुराल में थी और उसने मृत शरीर को देखा था जिसे अभियुक्तगण ठिकाने लगाने का प्रयास कर रहे थे। तब उन्होंने पुलिस को सूचना दी। उसने कथन किया है कि पर्याप्त दहेज नहीं दिए जाने के कारण अभियुक्तगण ने उसकी हत्या की थी। अपने प्रति-परीक्षण में उसने कथन किया है कि अभियुक्तगण के साथ उनका झगड़ा नहीं हुआ था और घटना के 15 दिन पहले रेणु देवी अपने ससुराल गयी थी। उसने यह कथन भी किया कि उसने खून का धब्बा (कोठरी) में नहीं देखा था जहाँ मृत शरीर पड़ा था।

12. अ॰ सा॰ 6, अर्जुन नाथ गोस्वामी ने भी कथन किया है कि रेणु देवी के ससुराल वाले पर्याप्त दहेज नहीं लाने के लिए उससे झगड़ते थे और उसे पर्याप्त खाना भी नहीं देते थे। मृत्यु के बाद वह उसके ससुराल गया था और मृत शरीर को देखा था।

13. अ॰ सा॰ 7, पारोनाथ गोस्वामी सूचक और पीड़िता रेणु देवी का पिता है। उसने कथन किया है कि यह सूचना मिलने के बाद कि उसकी पुत्री की मृत्यु हो गयी है, वह उसके ससुराल गया और मृत शरीर को चारपाई पर पड़े देखा। उसकी गर्दन पर रस्सी का निशान था और केवल 5,000/- रुपयों के लिए अपीलार्थीगण ने उसकी हत्या कर दी थी। तब उसने पुलिस को अपना फर्दबयान दिया जिसे उसे पढ़कर सुनाया गया और उसे सही पाकर उसने अपना एल॰ टी॰ आइ॰ लगाया। उसने न्यायालय में अभियुक्तगण को पहचाना। अपने प्रति-परीक्षण में उसने कथन किया कि उसने घटना के बारे में गाँववालों से नहीं पूछा था। अपने प्रति-परीक्षण में उसने यह कथन भी किया कि इस घटना के पहले वह दो बार अपनी पुत्री के ससुराल गया था और झगड़ा के कारण वह अपनी पुत्री को वापस ले आया था। उसने कहा कि उसे पंचायती की तिथि याद नहीं है।

14. अ॰ सा॰ 8, जयव्रत रॉय ने कथन किया है कि दिनांक 27.11.1997 को उसने मृतक 16 वर्षीय रेणु देवी के मृत शरीर का शव परीक्षण किया। मृत शरीर के गर्दन पर 3/4 ''चौड़ाई वाला 5 mm के अंतर पर तीन रस्सियों से गठित दाग था। रस्सी का निशान तीनों हिस्सों पर था और एक हिस्से पर बाए कान के नीचे गाँठ का तिरछा चिन्ह था। शरीर पर कोई अन्य निशान नहीं पाया गया। डॉक्टर के मत में पीड़िता की मृत्यु फाँसी पर लटकाए जाने के कारण दम घुटने से कारित हुई। उसने प्रदर्श-3 के तौर पर शव परीक्षण रिपोर्ट को प्रमाणित किया।

15. अ॰ सा॰ 9, सत्यनारायण सिंह मामले का अन्वेषण अधिकारी है जिसने प्रदर्श-1 फर्दबयान और प्रदर्श-4 औपचारिक प्राथमिकी को प्रमाणित किया है। उसने प्रदर्श-5 मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट को भी प्रमाणित किया। उसने प्रदर्श-2 अभिग्रहित रस्सी को भी प्रमाणित किया। उसने गवाहों का बयान लिया और अन्वेषण पूरा करने के बाद मामले में आरोप-पत्र दाखिल किया।

16. इस प्रकार, चर्चा किए गए साक्ष्यों से यह प्रतीत होता है कि अभियोजन ने इस तथ्य को सिद्ध किया है कि दहेज की मांग की थी और दोनों अपीलार्थीगण के विरूद्ध यातना देने का अभिकथन भी है किन्तु ऐसा कोई विनिर्दिष्ट अभिकथन नहीं है कि ससुर नारायणनाथ गोस्वामी द्वारा भी यातना दी जा रही थी। जैसा अ॰ सा॰ 5 बसन्त नाथ गोस्वामी के साक्ष्य में कहा गया है कि यद्यपि अपीलार्थी नारायणनाथ गोस्वामी द्वारा 5,000/- रुपए मांगे गऐ थे, किन्तु उसने ठीक 15 दिन पहले मृतक को उसके ससुराल वापस ले गया था और उसका पति नहीं आया था। दहेज के लिए पति-पत्नी के बीच झगड़ा होता था और पति द्वारा यातना दी जा रही थी। चूँकि ससुर नारायणनाथ गोस्वामी के विरूद्ध यातना का विनिर्दिष्ट अभिकथन नहीं है, मेरे मत में भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304B/34 के अधीन उसकी दोषसिद्धि संपोषणीय नहीं है और उसके विरूद्ध आरोपों को युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध नहीं किया गया है।

17. निःसंदेह, पीड़ित युवती ने, जैसा डॉक्टर के साक्ष्य से प्रकट है, पति द्वारा दहेज मांगने और यातना दिए जाने के कारण अपने कमरे में स्वयं को फाँसी पर लटकाकर आत्महत्या कर ली जिसका अर्थ है विवाह के 7 वर्षों के भीतर अस्वाभाविक मृत्यु बल्कि विवाह के एक वर्ष के भीतर ही उसकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार पति प्रवीणनाथ गोस्वामी के विरूद्ध 304B/34 के अधीन सही मामला बनाया गया है और उसे उसके अधीन दोषी पाया गया है और उसकी दोषसिद्धि और दंड में इस न्यायालय के हस्तक्षेप की गुंजाइश नहीं है। तद्नुसार, प्रवीणनाथ गोस्वामी की अपील खारिज की जाती है। आगे, जहाँ तक ससुर का संबंध है, जैसा चर्चा उपर की गयी है, मैं नहीं पाता हूँ कि ससुर के विरूद्ध कोई विनिर्दिष्ट अभिकथन है यद्यपि उसने अपने पुत्र की 5,000/- रुपये की मांग का समर्थन किया किन्तु यह विवाह के समय ही किया गया था। मामले के उस दृष्टिकोण में ससुर नारायण नाथ गोस्वामी की भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304B/34 के अधीन दोषसिद्धि अपास्त की जाती है और उसे भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A के अधीन दोषी पाया जाता है और अभिनिर्धारित किया जाता है कि उसे 1997 से लम्बे चले विचारण और अपील के दौरान उसके द्वारा भुगती गयी सजा तक दंड दिया जाता है।

18. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि अपीलार्थी सं॰ 2 प्रवीणनाथ गोस्वामी दिनांक 25.4.1997 से लगभग 12 वर्षों तक अभिरक्षा में रहा है क्योंकि उच्च न्यायालय द्वारा भी उसकी जमानत खारिज कर दी गयी थी। मामले के इस दृष्टिकोण में, विचारण न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि वह सत्यापित करे कि दस वर्षों बाद उसे निर्मुक्त किया गया है कि नहीं और यदि नहीं किया गया है तब, यदि अन्य मामलों मे उसकी आवश्यकता नही हो, उसे तुरन्त निर्मुक्त किया जाए।

19. तद्नुसार, दंड में परिवर्तन के साथ अपील खारिज की जाती है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

सौमेन्दु विश्वास उर्फ एस॰ विश्वास एवं एक अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य

Cr. Rev. No. 817 of 2009. Decided on 29th March, 2010.

कारखाना अधिनियम, 1948—धारा 92—झारखण्ड कारखाना नियमावली, 2000–नियम 56-C(1)(A)—संज्ञान–उन्मोचन याचिका का अस्वीकरण–कारखाना के भीतर घातक दुर्घटना हुई जिसका परिणाम नियम 56-C(1)(A) के उल्लंघन में हुआ–परिसीमा के आधार पर संज्ञान

के आदेश को चुनौती–धारा 92 के अधीन किसी अपराध किए जाने के संबंध में शिकायत अपराध किए जाने की तिथि से अथवा अपराध किए जाने की जानकारी की तिथि से तीन माह के भीतर की जानी चाहिए–घटना दिनांक 25.9.2004 को हुई और परिवाद दिनांक 28.2.2005 को दर्ज की गयी–इस प्रकार शिकायत परिसीमा की अवधि के काफी बाद दर्ज की गयी–न तो अपराध का संज्ञान और न ही याचीगण का अभियोजन संपोषणीय है–संज्ञान का आदेश अपास्त–याचीगण को उनके दांडिक अभियोजन से मुक्त किया गया–पुनरीक्षण याचिका अनुज्ञात। (पैरा 7)

अधिवक्तागण.–Mr. Jyoti Prasad Sinha, For the Petitioners; Mr. Md. Hatim, For the State.

आदेश

वर्तमान पुनरीक्षण दिनांक 3.8.2009 के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा उनको समन विचारण केस सं॰ C-III–16/2005 में उनके दांडिक दायित्व से दोषमुक्त करने हेतु दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 251 के अधीन याचीगण की ओर से दाखिल याचिका श्री अनुज कुमार, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, राँची द्वारा खारिज कर दी गयी थी।

2. वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण में उठाया गया संक्षिप्त प्रश्न यह है कि क्या कारखाना अधिनियम, 1948 की धारा 92 के अधीन उपधारित रूप से लिया गया अपराध का संज्ञान, यद्यपि इसे आदेश में अभिव्यक्त रूप में उल्लिखित नहीं किया गया है, झारखंड कारखाना नियमावली के नियम 56-C(1)(a) के प्रावधानों के अभिकथित उल्लंघन के लिए तीन माह की परिसीमा की सांविधिक अवधि के परे संपोषणीय है अथवा नहीं।

3. मामले का संक्षिप्त तथ्य यह है कि परिवादी–कारखाना निरीक्षक ने दिनांक 28.2.2005 को सी॰ जे॰ एम॰, राँची के समक्ष परिवाद दाखिल किया जिसमें, अन्य बातों के साथ साथ यह अभिकथन किया गया कि याची सं॰ 1 निदेशक (कार्मिक) होने के नाते कारखाने का अधिभोगी था; जबकि याची सं॰ 2 एन॰ के॰ पांडे हेवी इंजीनियरिंग कॉरपोरेशन लि॰, धुर्वा, राँची के अंतर्गत मेसर्स फाउन्ड्री फोर्ज्ड प्लान्ट का प्रबंधक होने के नाते मजदूरों को सुरक्षा यंत्र नहीं दिया था जिसके परिणामस्वरूप रविशंकर वर्मा, जो कारखाना का एसबेस्टस छत साफ कर रहा था, गिर पड़ा और उपहतियों के चलते उसकी मृत्यु हो गयी और तद्द्वारा याचीगण ने झारखंड कारखाना नियमावली के नियम 56-C(1)(a) के अधीन अधिकथित प्रावधान का उंल्लघन किया। अभिकथित घटना दिनांक 25.9.2004 को कार्यावधि के दौरान लगभग 1 बजे हुई थी और उसी दिन कारखाना निरीक्षक को मामले की सूचना दी गयी थी। दिनांक 30.9.2004 को कारखाना निरीक्षक ने घटना स्थल का दौरा किया और तत्पश्चात् उसने दिनांक 23.12.2004 को परिवाद पर हस्ताक्षर किया जिसे दिनांक 28.2.2005 को सी॰ जे॰ एम॰ के न्यायालय में प्रस्तुत किया गया।

4. विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया है कि कारखाना अधिनियम, 1948 की धारा 106 अभियोजन की परिसीमा प्रावधानित करती है जिसे यहाँ इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है:–

> *"इस अधिनियम के अधीन दंडनीय अपराध का संज्ञान न्यायालय तब तक नहीं लेगा जब तक परिवाद उस तिथि, जबसे किया गया अभिकथित अपराध निरीक्षक की जानकारी में आया, के तीन माह के भीतर नहीं किया जाता है:*
>
> *परन्तु यह कि जहाँ अपराध निरीक्षक द्वारा दिए गए लिखित आदेश की अवज्ञा से उत्पन्न होता है, परिवाद उस तिथि, जब से अपराध किए जाने का अभिकथन किया गया है, से छह माह के भीतर किया जा सकता है।*

इस धारा के उद्देश्य हेतु–

(a) चालू रहने वाले अपराध के मामले में परिसीमा की अवधि की गणना अपराध चालू रहने के दौरान समय के ऐसे प्रत्येक बिन्दु के प्रति सन्दर्भ के साथ की जाएगी।

(b) जहाँ किसी कृत्य के अनुपालन हेतु कारखाना के प्रबंधक अथवा अधिभोगी द्वारा दिये गये आवेदन पर समय दिया गया है अथवा बढ़ाया गया है, परिसीमा की अवधि की गणना उस तिथि, जब ऐसे दिए गए अथवा बढ़ाए गए समय का अवसान होता है, से की जाएगी।''

5. विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार प्रतिवाद किया है कि यद्यपि घटना अभिकथित रूप से दिनांक 25.9.2004 को हुई थी किन्तु अपराध का संज्ञान परिसीमा की सांविधिक अवधि के परे दिनांक 28.2.2005 को लिया गया था। यहाँ यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि दिनांक 28.2.2005 के सज्ञान के आदेश से स्पष्ट है कि यह इस बात पर मौन है कि किस अभिकथित अपराध के लिए संज्ञान लिया गया था यद्यपि परिवाद में यह कथन किया गया था कि झारखंड कारखाना नियमावली के नियम 56-C(1)(a) के उल्लंघन के लिए अधिनियम की धारा 92 के अधीन अपराध किया गया था।

6. अंततः विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि परिवाद परिसीमा की सांविधिक अवधि के भीतर दाखिल नहीं किया गया है और कारखाना अधिनियम की धारा 106 के आज्ञापक प्रावधान पर विचार किए बिना अपराध का संज्ञान लिया गया था। इसके अतिरिक्त, याचीगण को कारखाना परिसर में हुई अभिकथित दुर्घटना के लिए जिम्मेदार अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह काम ठेकेदार इंद्रजीत प्रसाद को सौंपा गया था जिसे याचीगण की जगह इस मामले में अभियुक्त बनाया जाना चाहिए था और परिवाद, जिसे परिसीमा की सांविधिक अवधि के परे दाखिल किया गया था, की पोषणीयता के बिन्दु पर याचीगण की आपत्तियों का ख्याल न करके विद्वान दंडाधिकारी ने गलती की है, अतः न तो अपराध का संज्ञान 90 दिनों की अवधि के परे संपोषणीय है और न ही याचीगण का अभियोजन और इस कारण याचीगण का दांडिक अभियोजन न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करना होगा। दांडिक दायित्व से उनकी मुक्ति के लिए धारा 251 दं० प्र० सं० के अधीन याचीगण की प्रार्थना पर गलत अनुचिन्तनों के कारण विचार नहीं किया गया था और इसे अस्वीकार कर दिया गया था जो इस वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण को अनुज्ञात करने हेतु इस न्यायालय के हस्तक्षेप की अपेक्षा करता है।

7. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों के प्रति ध्यान रखते हुए मैं पाता हूँ कि कारखाना अधिनियम, 1948 की धारा 106 स्पष्ट है कि उक्त अधिनियम की धारा 92 के अधीन किए गए अपराध के संबंध में परिवाद अपराध किए जाने की तिथि से अथवा किए गए उक्त अपराध की जानकारी की तिथि से तीन महीने के भीतर करना होगा। यह विवादित नहीं था कि घटना दिनांक 25.9.2004 को हुई थी और परिवादी कारखाना निरीक्षक को तुरन्त सूचित किया गया था जिसने दिनांक 30.9.2004 को घटनास्थल का दौरा किया और दिनांक 28.2.2005 को सी० जे० एम०, राँची के समक्ष परिवाद दाखिल किया जो निश्चय ही परिसीमा की अवधि के काफी परे है और जिसकी वजह सिर्फ उन्हीं को ज्ञात है और दिए गए तथ्यों एवं परिस्थितियों में न तो अपराध का संज्ञान संपोषणीय है और न ही याचीगण का अभियोजन। यहाँ यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि परिवाद याचिका में कहीं भी यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि परिवाद दाखिल करने के लिए परिसीमा को छह माह तक शिथिल किया जा सकता है, क्योंकि याचीगण ने कारखानों के निरीक्षक के लिखित आदेश की अवहेलना की है, क्योंकि ऐसी शिथिलता का स्थान कारखााना अधिनियम, 1948 की धारा 106

के परन्तुक में है। अत: मैं पाता हूँ और अभिनिर्धारित करता हूँ कि याचीगण के विरुद्ध अपराध का संज्ञान, यद्यपि विद्वान सी॰ जे॰ एम॰, राँची ने अपराध की प्रकृति प्रकट नहीं की थी, विधि के अधीन संपोषणीय नहीं है। अत: संज्ञान का आदेश अपास्त किया जाता है। परिणामस्वरुप, श्री अनुज कुमार, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, राँची के न्यायालय में लंबित C-III-16/05 में उनके दांडिक अभियोजन से याचीगण को मुक्त किया जाता है और यह दांडिक पुनरीक्षण तद्नुसार अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

मनोज कुमार उर्फ मनोज कुमार सिंह

बनाम

झारखंड राज्य निगरानी के माध्यम से एवं अन्य

WP (Cr.) No. 40 of 2010. Decided on 26th April, 2010.

भारतीय दंड-संहिता, 1860—धाराएँ 467, 468, 469, 471, 406, 409 एवं 109/120B सह-पठित धारा 21—भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988—धाराएँ 7, 10 एवं 13 (1) (e) सह-पठित धारा 2 (c) (i)—कूट रचना और छल–आय के ज्ञात स्रोत के अननुपात में संपत्ति का अर्जन–याची मंत्री का निजी सचिव था–कोई व्यक्ति सरकार की सेवा में रहे बिना सरकार से तनख्वाह पाता है, वह लोक सेवक है–याची ने सरकारी विभाग से वेतन पाया–इस प्रकार, याची धारा, 2(c) (i) में परिभाषित लोक सेवक की परिभाषा के अंतर्गत आएगा–पी॰ सी॰ अधिनियम के अधीन अभियोजन पोषणीय हो सकता है–अभिखंडन याचिका खारिज।
(पैरा 13 से 17)

निर्णयज विधि.–AIR 1984 SC 684—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mr. Y.V. Giri, For the Petitioner; Mr. A. K. Kashyap, For the Vigilance.

आदेश

यह याचिका भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 467, 468, 469, 471, 406, 409, 420 एवं 109/120B के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम (यहाँ इसमें इसके बाद 'अधिनियम' के तौर पर निर्दिष्ट) की धाराएँ 7, 10, 13 (1)(e) के अधीन भी संस्थापित निगरानी थाना केस सं॰ 23 वर्ष 2009 (विशेष केस सं॰ 27 वर्ष 2009) की प्राथमिकी के अभिखंडन के लिए दाखिल की गयी है।

2. इस मामले के दाखिला की ओर अग्रसर करने वाले तथ्य ये हैं कि दिनांक 15.10.2009 को आयकर विभाग ने याची के घर में छापा मारा जिसमें उत्तर बिहार क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, मुर्तजा शाखा, पी॰ एस॰ दरियापुर, जिला छपरा का 12, 54, 23,337/- रुपये मूल्य वाले 169 सावधि जमा रसीद पाए गए थे जो याची अथवा उसके परिवार के सदस्यों के नाम में थे।

3. इसके अतिरिक्त, अनुशासनिक कार्यवाही, निविदा, स्थानांतरण एवं पदस्थापन से संबंधित सरकारी विभाग के 42 फाइल पाए गए थे। उक्त फाइलों और पूर्वोक्त सावधि जमा रसीदों को आयकर विभाग ने अभिग्रहित कर लिया था।

4. ऐसी सूचना पाने पर, उप-अधीक्षक-सह-प्रभारी-अधिकारी, निगरानी ब्यूरो, राँची ने मामला दर्ज किया जिसमें अभिकथन किया गया कि याची ने मंत्री श्री चंद्र प्रकाश चौधरी का निजी सचिव होने के नाते आय के अपने ज्ञात स्रोत के अननुपात में संपत्ति अर्जित की थी और उस आधार पर भारतीय

दंड संहिता की धाराएँ 467, 468, 469, 471, 406, 409, 420, 109/120B के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धाराएँ 7, 10, 13(1)(e) के अधीन भी निगरानी केस सं॰ 23 वर्ष 2009 दर्ज किया गया था।

5. वर्तमान रिट याचिका द्वारा उक्त प्राथमिकी का अभिखंडन इप्सित किया गया है।

6. याची की ओर से उपस्थित वरीय अधिवक्ता, श्री वाई॰ वी॰ गिरी ने निवेदन किया कि तत्कालीन ड्रिंकिंग वाटर और सैनीटेशन एवं विज्ञान और सूचना टेकनोलॉजी मंत्री, झारखंड सरकार, श्री चंद्र प्रकाश चौधरी ने निजी सचिव (बाह्य कोटा) की सुविधा उठाने हेतु इस याची को निजी सचिव (बाह्य कोटा) के तौर पर नियुक्त किया क्योंकि उक्त पद पर, जो सरकारी पद नहीं है, किसी को नियुक्त करना उनकी सक्षमता के अंतर्गत था और ऐसे निजी सचिव को किसी सरकारी कर्तव्य का निर्वहन नहीं करना है बल्कि निजी सचिव (बाह्य कोटा) सार्वजनिक कर्तव्य को छोड़कर बाकी मामलों में मंत्री की सहायता करता है और यह कि ऐसे निजी सचिव (बाह्य कोटा) को सार्वजनिक खजाने से वेतन नहीं दिया जाता है बल्कि उसे मंत्री को अनुज्ञेय भत्तों से वेतन दिया जाता है और मामले के इस दृष्टिकोण में याची लोक सेवक, जैसा अधिनियम की धारा 2(c) में परिभाषित किया गया है, की परिधि में नहीं आता है और इस कारण याची के लोक सेवक नहीं होने के नाते उसका अभियोजन भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के प्रावधान के अधीन नहीं किया जा सकता है।

7. विद्वान अधिवक्ता आगे 'लोक सेवक' को परिभाषित करते हुए अधिनियम की धारा 2(c)(i) को निर्दिष्ट करते हुए विस्तार देते हैं और कहते हैं कि सरकार की सेवा करते अथवा उससे वेतन लेते अथवा किसी सार्वजनिक कर्तव्य को पालन करते हुए फीस अथवा कमीशन द्वारा सरकार द्वारा पारिश्रमिक पाता कोई व्यक्ति लोक सेवक हो सकता है किन्तु याची को न तो सरकार द्वारा नियुक्त किया गया है और न ही वह सरकार से वेतन प्राप्त करता था और न ही किसी सार्वजनिक कर्तव्य के पालन हेतु फीस अथवा कमीशन दिया जाता था और इस प्रकार याची को लोक सेवक नहीं कहा जा सकता है।

8. विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि याची ने यद्यपि पारिश्रमिक प्राप्त किया किन्तु इसे सरकारी राजकोष से भुगतान नहीं किया गया था, बल्कि "बिहार मंत्री वेतन और भत्ता अधिनियम, 1953" के प्रावधान के अधीन मंत्री को दिए गए भत्ते से इसका भुगतान किया जा रहा था और इस परिस्थिति के अधीन याची को राज्य सरकार से भत्ता/वेतन प्राप्त करता हुआ कभी नहीं कहा जा सकता है और इस प्रकार, याची सरकार की सेवा में नहीं होने अथवा राज्य सरकार से वेतन प्राप्त नहीं करने और किसी सार्वजनिक कर्तव्य का पालन नहीं करने के नाते लोकसेवक, जैसा इसे अधिनियम की धारा 2(c)(i) के अधीन परिभाषित किया गया है, की परिधि के अंतर्गत नहीं आता है।

9. अपने निवेदन के समर्थन में विद्वान अधिवक्ता ने **आर॰ एस॰ नायक बनाम ए॰ आर॰ अन्तुले, (AIR 1984 SC 684)** के मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है कि विधायक सरकारी सेवा में नहीं होने के नाते राज्य सरकार से वेतन कभी नहीं प्राप्त करता है बल्कि वह अनुदान से वेतन/भत्ता प्राप्त करता है जिसे राज्य की संचित निधि से प्राप्त किया जाता है और इसलिए, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि भारतीय दंड संहिता की धारा 21 के अर्थ के अंतर्गत विधायक लोक सेवक नहीं है और इस कारण याची का मामला विधायक के मामले के समरुप होने के नाते उसे अधिनियम की धारा 2(c)(i) के अर्थ के अंतर्गत लोक सेवक नहीं कहा जा सकता है और इस कारण भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अभियोजन पोषणीय नहीं है और इस कारण प्राथमिकी अभिखंडित करने योग्य है।

10. इसके विरुद्ध निगरानी की ओर से उपस्थित वरीय अधिवक्ता, श्री ए॰ के॰ कश्यप ने निवेदन किया कि अधिनियम की धारा 2(c)(i) के अधीन परिभाषित लोक सेवक को तीन कोटियों में विभक्त किया गया है और यदि कोई इन तीनों कोटियों में से किसी के अंतर्गत आता है, उसे लोक सेवक अभिनिर्धारित किया जा सकता है और इस प्रतिपादना के बारे में कोई संदेह नहीं है क्योंकि इसे **आर॰ एस॰ नायक बनाम ए॰ आर॰ अन्तुले (ऊपर)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित किया गया है जैसा याची की ओर से निर्दिष्ट किया गया है।

11. इस संबंध में, आगे यह निवेदन किया गया था कि याची निजी सचिव (बाह्य कोटा) होने के नाते सरकार की सेवा में नहीं हो सकता है बल्कि उसने अपना वेतन सरकारी विभाग से प्राप्त किया जो परिशिष्ट A से स्पष्ट होगा जिसमें प्रकट किया गया है कि याची तत्कालीन मंत्री का निजी सचिव होने के नाते सैनिटेशन और ड्रिंकिंग वाटर विभाग और विज्ञान एवं टेक्नोलोजी विभाग से भुगतान प्राप्त किया था और यह तथ्य याची के अभिवाक् को गलत सिद्ध करता है कि याची को वेतन/भत्ता उन भत्तों से दिया गया था जिसे मंत्री ने प्राप्त किया था और इस कारण, इस स्थिति के अधीन अधिनियम की धारा 2(c)(i) के निबंधनों के अनुसार याची को आसानी से लोक सेवक कहा जा सकता है और इसलिए यह याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

12. याची की ओर से किए गए निवेदन के संदर्भ में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के प्रावधान विशेषत: अधिनियम की धारा 2 (c) (i) को ध्यान में लेना होगा जो 'लोक सेवक' को परिभाषित करती है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

2(c) ''लोक सेवक'' का अर्थ है–

(i) सरकार की सेवा अथवा वेतन में अथवा फीस अथवा कमीशन द्वारा सरकार से किसी सार्वजनिक कर्त्तव्य के पालन के लिए पारिश्रमिक पाता कोई व्यक्ति;

13. लोक सेवक की परिभाषा में प्रयुक्त अभिव्यक्ति 'अथवा' पृथक करने वाली प्रतीत होती है और इस प्रकार परिभाषा को तीन भागों में विभक्त कहा जा सकता है–(i) सरकार की सेवा में कोई व्यक्ति, (ii) सरकार के वेतन में कोई व्यक्ति और (iii) किसी सार्वजनिक कर्तव्य के पालन के लिए सरकार द्वारा फीस अथवा कमीशन के रूप में पारिश्रमिक पाता कोई व्यक्ति। यह प्रतिपादना भारतीय दंड संहिता की धारा 21 के खंड 12 (a) को ध्यान में लेते हुए **आर॰ एस॰ नायक बनाम ए॰ आर॰ अन्तुले (ऊपर)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित की गयी थी जो अधिनियम की धारा 2(c)(i) में अंतर्विष्ट प्रावधान का समविषयक है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि कोई व्यक्ति लोक सेवक हो सकता है यदि वह इन कोटियों में से किसी एक में आता है, यह भी संप्रेक्षित किया था कि <u>कोई सरकारी सेवा में हो सकता है और इसके लिए वेतन पा सकता है और कोई मालिक-सेवक या आदेश-आज्ञापालन सम्बन्ध प्रकट करते हुए बिना सरकारी सेवा में हुए सरकार से वेतन पा सकता है।</u>

14. इस प्रकार, कोई संदेह नहीं है कि कोई व्यक्ति सरकारी सेवा में हुए बिना यदि सरकार से वेतन प्राप्त करता है, वह वस्तुत: भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 2 (c) (i) के अधीन दिए गए परिभाषा के निबंधनों के अनुसार लोक सेवक है।

15. स्वीकृत रूप से, याची सरकार की सेवा में नहीं है किन्तु निगरानी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता के अनुसार वह ड्रिंकिंग वाटर एण्ड सैनिटेशन के मंत्री के निजी सचिव (बाह्य कोटा) का पद धारण करते हुए ड्रिंकिंग वाटर और सैनीटेशन विभाग से वेतन पा रहा था किन्तु याची का

दृष्टिकोण है कि याची निजी सचिव (बाह्य कोटा) होने के नाते मंत्री को मिलते भत्तों से वेतन पा रहा था और इस प्रकार यह कभी नहीं कहा जा सकता है कि याची राज्य सरकार के वेतन में था जैसा विधायक के मामले में है। यह सत्य है कि **आर० एस० नायक बनाम ए० आर० अंतुले (ऊपर)** के मामले में विधायक को भारतीय दंड संहिता की धारा 21 के अर्थ के अंतर्गत लोक सेवक इस आधार पर अभिनिर्धारित नहीं किया गया था कि विधायक अपना भत्ता उस अनुदान से पाता है जिसे राज्य की संचित निधि से लिया जाता है और इस प्रकार विधायक राज्य सरकार के वेतन में नहीं है किन्तु यहाँ जैसा श्री कश्यप द्वारा दस्तावेज (परिशिष्ट-A) प्रस्तुत करके दर्शाया गया है कि याची ने ड्रिंकिंग वाटर और सैनीटेशन विभाग से वेतन पाया था और इस प्रकार, इस चरण पर, याची का अभिवाक् कि याची ने अपना वेतन मंत्री के भत्ते में से पाया था, स्वीकार नहीं किया जा सकता है बल्कि सरकारी विभाग से प्राप्त वेतन के संबंध में निगरानी द्वारा दिए गए बयान की दृष्टि में याची को सरकार के वेतन में कहा जा सकता है और इस प्रकार याची, प्रथम दृष्टया अधिनियम की धारा 2 (c) (i) में परिभाषित लोक सेवक की परिभाषा के अंतर्गत आएगा।

16. एक बार जब प्रथम दृष्टया यह पाया जाता है कि याची लोक सेवक है, अधिनियम के अधीन अभियोजन को आसानी से पोषणीय कहा जा सकता है और इस कारण, मैं इस रिट याचिका में गुणागुण नहीं पाता हूँ और इसलिए यह खारिज किया जाता है।

17. किन्तु, यह आदेश देने से पहले यह कहना आवश्यक है कि इस मामले को निपटाने के उद्देश्य से किए गए संप्रेक्षण पक्षों के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेंगे।

माननीय प्रशान्त कुमार, न्यायमूर्ति

राशिलाल टूडू

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (SJ) No. 767 of 2002. Decided on 16th April, 2010.

एस० सी० सं० 58 वर्ष 2000/एस० सी० सं० 3 वर्ष 2001 में श्री सुरेन्द्र नाथ पांडे, प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, जामतारा द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 16.9.2002 और 17.9.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 436 और 450—अग्नि और गृह अतिचार द्वारा रिष्टि–दोषसिद्धि और दंडादेश–अभियोजन साक्षीगण के साक्ष्य विश्वास उत्पन्न नहीं करते–अभियोजन साक्षीगण में से कोई भी घटना का गवाह प्रतीत नहीं होता है–अभियोजन गवाह पूर्णतः विश्वसनीय नहीं है–अन्वेषण के बाद पुलिस इस निष्कर्ष पर आयी कि घटना सत्य नहीं है और फाइनल फॉर्म दाखिल किया–स्वतंत्र स्रोतों से किसी भी पुष्टि की अनुपस्थिति में, युक्तियुक्त संदेह के परे अपीलार्थीगण के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को सिद्ध करने में अभियोजन सफल नहीं रहा है–दोषसिद्धि का आक्षेपित आदेश और दंडादेश अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैरा 11 से 14)

अधिवक्तागण.–M/s Rajiv Sinha, B.K. Prasad, For the Appellant; Mr. Md. Azimudin, For the Respondent.

प्रशान्त कुमार, न्यायमूर्ति.–यह अपील एस॰ सी॰ सं॰ 58 वर्ष 2000/एस॰ सी॰ सं॰ 03/2001 में प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, जामतारा द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 16.9.2002 और 17.9.2002 के दोष सिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा और जिसके अधीन अपीलार्थी को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 436 और 450 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 436 के अधीन पाँच वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंड दिया गया है और 1000/-रुपया जुर्माना का भुगतान करने और जुर्माना के भुगतान के व्यतिक्रम में छह माह का कठोर कारावास भुगतने का आगे निर्देश दिया गया है। आगे अपीलार्थी को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 450 के अधीन चार वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंड दिया गया है और 1000/-रुपया जुर्माना का भुगतान करने और जुर्माना के भुगतान के व्यतिक्रम में छह माह का कठोर कारावास भुगतने का निर्देश दिया गया है।

2. लिखित रिपोर्ट के मुताबिक अभियोजन का मामला संक्षेप में यह है कि राशि लाल टुडू (अपीलार्थी) ने मनोहर टूडू, सृजल टूडू, सतीश टुडू और बलाइ टूडू के साथ अभिकथन किया कि सूचक की पत्नी डाइन है। आगे अभिकथन किया गया है कि दिनांक 27.6.1997 को रात्रि लगभग 8 बजे वे सूचक के घर में जबरदस्ती घुसे और तब अपीलार्थी (राशिलाल टूडू) ने उसके घर में आग लगा दिया। यह कथन किया गया है कि सूचक और उसके परिवार के अन्य सदस्यों ने डर के कारण किसी अन्य घर में शरण लिया क्योंकि अपीलार्थी और अन्य सह-अभियुक्त उनको जान से मारने की धमकी दे रहे थे। आगे यह कथन किया गया है कि पूर्वोक्त आग के कारण घर में रखे कपड़े, मुर्गी और अन्य सामान जल गए थे।

3. पूर्वोक्त सूचना के आधार पर, भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 147, 323, 436, 427 के अधीन कुंडाहित पी॰ एस॰ केस सं॰ 43 वर्ष 1997 संस्थापित किया गया और पुलिस ने अन्वेषण शुरू किया। यह प्रतीत होता है कि अन्वेषण के बाद पुलिस ने पाया कि घटना सत्य नहीं है और तद्नुसार ACJM, जामतारा के न्यायालय में अंतिम फॉर्म दाखिल किया। तब यह प्रतीत होता है कि ACJM, जामतारा के न्यायालय में एक अभ्यापत्ति याचिका दाखिल की गयी जिसे पी॰ सी॰ आर॰ केस सं॰ 265 वर्ष 1998 के रूप में दर्ज किया गया था। तब यह प्रतीत होता है कि सूचक और अन्य गवाहों के परीक्षण के बाद विद्वान ACJM ने भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 147, 148, 149, 436/34 और 450 के अधीन अपीलार्थी और अन्य सह-अभियुक्तों के विरुद्ध संज्ञान लिया। तत्पश्चात मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया क्योंकि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 436 के अधीन अपराध केवल सत्र न्यायालय द्वारा अनन्यतः विचारण योग्य था।

4. यह प्रतीत होता है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने दिनांक 26.5.2000 के अपने आदेश के तहत भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 147, 148, 149, 436/34 और 450 के अधीन आरोप विरचित किया और अपीलार्थी और अन्य सह अभियुक्तों को इसे स्पष्ट किया जिसके लिए उन्होंने दोषी होने से इंकार किया और विचारण किए जाने का दावा किया। तत्पश्चात, अपने मामले के समर्थन में अभियोजन ने छः गवाहों का परीक्षण किया। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर विचार करने के बाद विद्वान प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश ने मनोहर टूडू, सृजल टूडू, सतीश टूडू और बलाइ टूडू को उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त कर दिया। किन्तु साक्ष्य के इसी संवर्ग पर उन्होंने अपीलार्थी (राशिलाल टूडू) को दोष सिद्ध किया और दंड दिया जैसा ऊपर कहा गया है और जिसके विरुद्ध वर्तमान अपील दाखिल की गयी है।

5. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि वर्तमान मामले में घटना का कोई भी चश्मदीद गवाह नहीं है। आगे निवेदन किया गया है कि पुलिस संपूर्ण अन्वेषण के बाद इस निष्कर्ष पर आयी कि ऐसी कोई घटना हुई ही नहीं है। मामले के उस दृष्टिकोण में, विद्वान विचारण न्यायालय को साक्ष्य का सावधानीपूर्वक संवीक्षण करना चाहिए था। यह निवेदन किया गया है कि साक्ष्य

के समान संवर्ग पर अन्य सारे अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया गया जो दर्शाता है कि विद्वान अवर न्यायालय ने अभियोजन गवाहों पर अंशत: अविश्वास किया था। इस प्रकार साक्ष्य के समान संवर्ग पर, स्वतंत्र स्रोत से पुष्टि के बिना अपीलार्थी की दोषसिद्धि अपेक्षित नहीं है। तद्नुसार निवेदन किया गया है कि अपीलार्थी अपने विरुद्ध लगाए गए आरोप से दोषमुक्त होने का हकदार है।

6. विद्वान एपीपी आक्षेपित निर्णय का समर्थन करते हैं और निवेदन करते हैं कि चूँकि सारे गवाहों ने कथन किया था कि अपीलार्थी ने सूचक के घर में आग लगायी थी, अत: अवर न्यायालय ने अपीलार्थी को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों के लिए सही दोषसिद्ध किया है। अत: इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है।

7. निवेदन सुनने पर मैंने अभिलेख का परिशीलन किया है। अ॰ सा॰ 2 बोदी मुर्मू सूचक का पुत्र है, अ॰ सा॰ 3 महारानी मुर्मू सूचक की पुत्री है, अ॰ सा॰ 4 सनदी हंसदा सूचक की पत्नी है; अ॰ सा॰ 5 बाबूराम मूर्मू स्वयं सूचक है। अ॰ सा॰ 1 धनंजय टूडू सह ग्रामीण है जबकि अ॰ सा॰ 6 औपचारिक गवाह है।

8. अ॰ सा॰ 1 ने कथन किया है कि उसका घर बाबू राम के घर के सामने अवस्थित है। उसने कथन किया कि घटना की तिथि पर दोपहर लगभग 3 बजे मनोहर टूडू, राशिलाल टूडू, सृजल टूडू, सतीश टूडू और बलाइ टूडू, बाबू राम टूडू के घर आए और अभिकथन किया कि सूचक की पत्नी डाइन है और उसके द्वारा किए गए जादू-टोने से गाँव के पशु मर रहे थे। वह आगे कथन करता है कि रात में पुन: पूर्वोक्त व्यक्ति लाठी से लैस होकर आए और बाबू राम के घर में घुसे और धमकाया और तत्पश्चात राशिलाल ने माचिस जलाकर बाबू राम के घर में आग लगा दी। किंतु प्रति-परीक्षण के दौरान इस गवाह ने कथन किया उस रात जब घटना घटी थी वह गाँव के तालाब के निकट स्थित पेड़ के नीचे था। वह आगे कथन करता है कि उक्त तालाब घटना स्थल से 300-400 गज की दूरी पर है। वह आगे कथन करता है कि वह हल्ला सुनकर घटनास्थल पर गया था।

9. अ॰ सा॰ 2, जो सूचक का पुत्र है, अपने मुख्य परीक्षण में चश्मदीद गवाह के रूप में अभियोजन के मामले का समर्थन किया किन्तु प्रति परीक्षण में वह स्वीकार करता है कि घटना के समय वह और उसके अन्य पारिवारिक सदस्य घर के भीतर थे और आग देखकर घर के बाहर आए थे। उसने आगे अभिसाक्ष्य दिया कि आग देख कर गाँव वाले घटना स्थल पर आए और उन्होंने घर में आग लगाने वाले व्यक्तियों का नाम प्रकट किया।

10. अ॰ सा॰ 3, सूचक की पुत्री, ने भी अपने प्रति-परीक्षण में कथन किया कि घटना के समय वे घर के अंदर थे और जब अभियुक्तगण भाग गए, वे घर से बाहर आए थे। प्रति-परीक्षण में वह आगे कथन करती है कि वह रात्रि लगभग 3 बजे घर के बाहर आयी। अ॰ सा॰ 4 सूचक की पत्नी ने अपने मुख्य परीक्षण में कथन किया कि जब अभियुक्तगण ने उनको धमकाया, वे घर में घुस गए। प्रति परीक्षण के दौरान उसने कथन किया कि आग देखने के बाद वह घर के बाहर आयी। अ॰ सा॰ 5 सूचक ने अपने प्रति परीक्षण में कथन किया है कि घटना के समय वह घर के अंदर था। उसने आगे कथन किया कि जब अभियुक्तगण भाग गाए, वह घर के बाहर आया और शोर मचाया। उसने आगे अभिसाक्ष्य दिया कि हल्ला सुनने के बाद धनन्जय टूडू सहित गाँव वाले आए।

11. इस प्रकार अ॰ सा॰ 3, 4 और 5 के साक्ष्य के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि घटना के समय वे घर के अंदर थे और वे घर के बाहर तभी आए जब अभियुक्तगण भाग गए थे। अ॰ सा॰ 1 का दावा

कि उसने अपीलार्थी को सूचक के घर में आग लगाते देखा था, विश्वास उत्पन्न नहीं करता है क्योंकि उसने स्वयं स्वीकार किया है कि घटना के समय वह गाँव के तालाब के निकट उपस्थित था, जो घटना स्थल से 300-400 गज की दूरी पर है। इस गवाह ने आगे कथन किया कि वह हल्ला सुनने के बाद घटनास्थल पहुँचा। अ० सा० 5 (मामले का सूचक) ने स्पष्ट तौर पर कथन किया कि जब अभियुक्तगण भाग गए, वह घर के बाहर आया और शोर मचाया, तत्पश्चात धनन्जय टूडू (अ० सा० 1) सहित गाँव वाले आए। इस प्रकार अ० सा० 1 का दावा कि उसने घटना को अपनी आँखों से देखा था, स्वीकार योग्य नहीं है। अ० सा० 2, जो सूचक का पुत्र है, ने स्पष्ट तौर पर कथन किया था कि जब अभियुक्तगण भाग गए, वह और उसके परिवार के अन्य सदस्य घर के बाहर आए। उसने आगे अभिसाक्ष्य दिया कि गाँव वालों जो घटनास्थल पर आए थे, ने उन व्यक्तियों का नाम प्रकट किया जिन्होंने घर में आग लगायी थी। इस प्रकार अ० सा० 2 का पूर्वोक्त बयान दर्शाता है कि परिवार के किसी सदस्य ने घटना नहीं देखी थी। इस प्रकार, अ० सा० 2, 3, 4 और 5 का दावा कि अपीलार्थी राशिलाल टूडू ने उनके घर में आग लगाया था, विश्वास उत्पन्न नहीं करता है।

12. यह उल्लेख करने योग्य है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियोजन गवाहों पर विश्वास नहीं किया जहाँ तक सह-अभियुक्त मनोहर टूडू, सृजल टूडू, सतीश टूडू और बलाइ टूडू का संबंध है। यह स्वीकृत स्थिति है कि अ० सा० 2, 3, 4 और 5 एक दूसरे के निकट संबंधी हैं जबकि अ० सा० 5 के साथ पठित अ० सा० 1 के प्रति परीक्षण के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि अ० सा० 1 चश्मदीद गवाह नहीं है। पूर्वोक्त परिस्थिति के अधीन, अभियोजन गवाह पूर्णत: विश्वसनीय नहीं हैं। यह उल्लेख करने योग्य है कि पुलिस अन्वेषण के बाद इस निष्कर्ष पर आयी कि घटना सत्य नहीं है और अंतिम फार्म दाखिल किया।

13. पूर्वोक्त परिस्थिति के अधीन, स्वतंत्र स्रोत से किसी पुष्टि की अनुपस्थिति में मैं पाता हूँ कि अभियोजन युक्तियुक्त संदेह के परे अपीलार्थी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है। इस प्रकार मैं पाता हूँ कि धारा 436 और 450 भा० दं० सं० के अधीन अपीलार्थी को दोषसिद्ध करके विद्वान अवर न्यायालय ने गंभीर अवैधता और/अथवा अनियमितता की है। अत: आक्षेपित आदेश संपोषित नहीं किया जा सकता है।

14. परिणामस्वरुप, यह अपील अनुज्ञात की जाती है। दोषसिद्धि का आक्षेपित निर्णय और दंडादेश अपास्त किया जाता है। अपीलार्थी को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोप से मुक्त किया जाता है। यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी जमानत पर है, तदनुसार उसे अपने जमानत पत्र के जिम्मेदारी से उन्मोचित किया जाता है।

माननीय एम० वाई० इकबाल एवं प्रदीप कुमार, न्यायमूर्तिगण

कुमुद कुमार

बनाम

पारो देवी एवं अन्य

M. A. No. 119 of 2008. Decided on 23rd April, 2010.

मोटर यान अधिनियम, 1988—धाराएँ 168 और 173—घातक दुर्घटना–अपराध करने वाले वाहन का स्वामी मुआवजा का भुगतान करने का जिम्मेदार अभिनिर्धारित–मृतक ट्रक में नि:शुल्क यात्री के रूप में यात्रा कर रहा था–सिर्फ इसलिए कि कुछ सामानों के साथ विभिन्न

स्थानों पर यात्रीगण ट्रक पर ले जाए गए थे, यह बीमा कम्पनी को मुआवजे के भुगतान का जिम्मेदार नहीं बनाएगा–अधिकरण ने सही अभिनिर्धारित किया कि बीमा कम्पनी मुआवजे के भुगतान का जिम्मेदार नहीं है–अपील खारिज। (पैरा 2 से 5)

अधिवक्तागण.–Mr. Rajiv Anand, For the Appellant; M/s Alok Lal, Ashutosh Anand, For the Respondents.

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.–वाहन के स्वामी द्वारा यह अपील मुआवजा केस सं॰ 137 वर्ष 2000 में मोटर यान दुर्घटना दावा अधिकरण, लोहरदग्गा द्वारा पारित दिनांक 9.1.2008 के उस निर्णय और अधिनिर्णय के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा उन्होंने मृतक राजेन्द्र महतो की मृत्यु के कारण दावेदार-प्रत्यर्थीगण को 1,92,000/-रुपया मुआवजा राशि का भुगतान करने का निर्देश अपीलार्थी को दिया है।

2. मामले के तथ्य संकीर्ण परिक्षेत्र में स्थित है:–

दावेदार-प्रत्यर्थीगण ने मुआवजा प्रदान करने के लिए दावा मामला दाखिल किया है जिसमें अन्य बातों के साथ यह कथन किया गया है कि मृतक राजेन्द्र महतो रजिस्ट्रेशन सं॰ BR42/5-2184 वाले ट्रक द्वारा लोहरदग्गा जा रहा था और चालक ट्रक को तेज गति से उपेक्षापूर्वक चला रहा था जिस कारण चालक ट्रक पर नियंत्रण खो बैठा जो पुल से नीचे गिर गया और यात्रीगण ने घातक उपहतियाँ प्राप्त की। मृतक राजेन्द्र महतो की मृत्यु अस्पताल ले जाने के क्रम में हो गयी। अपीलार्थी जो वि॰ प॰ सं॰ 1, ट्रक का स्वामी था, ने यह कथन करते हुए लिखित बयान दाखिल किया कि दुर्घटना के समय वाहन प्रत्यर्थी-ओरिएण्टल बीमा कम्पनी द्वारा बीमाकृत था। अत: बीमा कम्पनी मुआवजा राशि के भुगतान की जिम्मेदार है। प्रत्यर्थी-बीमा कम्पनी उपस्थित हुई और अन्य बातों के साथ यह कथन करते हुए मामले का प्रतिवाद किया कि वाहन के चालक को पक्ष बनाया नहीं गया था। प्रत्यर्थी-बीमा कम्पनी का मामला यह है कि मृतक ट्रक में नि:शुल्क यात्री के रूप में यात्रा कर रहा था और वाहन के स्वामी ने यात्रीगण के जोखिम को आच्छादित करने के लिए किसी प्रीमियम का भुगतान नहीं किया था। दावेदारों-प्रत्यर्थीगण की ओर से प्रस्तुत गवाहों के साक्ष्य दर्ज करने के बाद अधिकरण इस निष्कर्ष पर आया कि ट्रक कुरु से आ रहा था और लोहरदग्गा जा रहा था। प्रासंगिक समय पर, कुछ यात्रीगण कुरू में सवार हुए और मृतक सहित कुछ यात्रीगण जिनामोर में सवार हुए और कुछ यात्रीगण रास्ते में विभिन्न स्थानों पर ट्रक में सवार हुए और रास्ते में चालक और खलासी को भाड़ा दिया। अत: अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि यात्रीगण द्वारा ट्रक को माल ढुलाई वाहन के रूप में भाड़ा पर नहीं लिया गया था बल्कि वे नि:शुल्क यात्री के रूप में अपराध करने वाले ट्रक पर विभिन्न स्थानों पर सवार हुए थे। अत: अधिकरण इस निष्कर्ष पर आया कि बीमा कम्पनी को मुआवजे का भुगतान के लिए जिम्मेदार अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है। अधिकरण ने प्रथमत: संप्रेक्षित किया:–

> *"मौखिक साक्ष्य से प्रकट है कि अपराध करने वाला ट्रक प्रासंगिक समय पर कुरु से आ रहा था और लोहरदग्गा जा रहा था और कुछ यात्रीगण कुरु में सवार हुए थे और मृतक राजेन्द्र महतो सहित कुछ यात्रीगण जिमामोर में सवार हुए थे और कुछ अन्य यात्रीगण विभिन्न स्थानों पर रास्ते में ट्रक में सवार हुए थे और चालक और खलासी को भाड़ा दिया था। दावेदार और सहयात्रियों के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि अपराध करने वाले ट्रक को यात्रीगण ने माल ढुलाई करने वाले वाहन के रूप में भाड़े पर नहीं लिया गया था और वे नि:शुल्क यात्री के रूप में विभिन्न स्थानों पर अपराध करने वाले ट्रक में सवार हुए थे और मृतक की मृत्यु तेज गति से और*

उपेक्षापूर्वक तरीके से अपराध करने वाले ट्रक को चलाने के कारण हुई जो चिरी पुल पर दुर्घटनाग्रस्त हुआ। मैं यह भी पाता हूँ कि दावेदार मृतक की विधवा और संतान है और इसलिए वे मृतक राजेन्द्र महतो के वैध उत्तराधिकारी हैं।''

अधिकरण ने आगे अभिनिर्धारित किया,

''विवाद्यक सं० 4—मैंने पाया है कि मृतक और अन्य यात्रीगण प्रासंगिक समय पर निःशुल्क यात्री के रूप में अपराध करने वाले ट्रक पर यात्रा कर रहे थे और अपराध करने वाला ट्रक माल ढोने वाले वाहन के रूप में ओरियन्टल बीमा कम्पनी लिमिटेड द्वारा बीमाकृत था। इस प्रकार मेरे दृष्टि में अपराध करने वाले ट्रक का स्वामी (वि० प० सं० 1) के साथ बीमा पॉलिसी का वैध निबंधन और शर्त था जिसके लिए उसने बीमा कम्पनी को प्रीमियम का भुगतान भी किया था। यह विधि का सुनिश्चित सिद्धान्त है कि वाहन के स्वामी को दावा राशि की क्षतिपूर्ति करने हेतु बीमा कम्पनी जिम्मेदार नहीं है और इस कारण वाहन का स्वामी वि० प० सं० 1 दावेदारों को मुआवजा राशि का भुगतान करने का जिम्मेदार है।''

3. वाहन के स्वामी/अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय का मुख्यतः इस आधार पर विरोध किया कि मृतक निःशुल्क यात्री नहीं था बल्कि वह सामान के साथ अपराध करने वाले वाहन में यात्रा कर रहा था। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, चुँकि मृतक सामान के स्वामी के रूप में न कि निःशुल्क यात्री के रूप में यात्रा कर रहा था, केवल बीमा कम्पनी ही अधिनिर्णय संतुष्ट करने का हकदार है।

4. स्वीकृत रूप से, अपराध करने वाला वाहन माल ढोने वाला वाहन था किन्तु कुरु से लोहरदग्गा के रास्ते पर चालक और खलासी ने विभिन्न स्थानों पर ट्रक को रोका और उक्त वाहन में कुछ व्यक्तियों को यात्रीगण के रूप में यात्रा करने की अनुमति दी। गवाहों ने कथन किया है कि विभिन्न स्थानों पर यात्रीगण ट्रक में सवार हुए थे और स्टेज कैरेज वाहन के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान तक यात्रा की थी। हमारे दृष्टिकोण में, केवल इसलिए कि विभिन्न स्थानों पर कुछ साामनों के साथ यात्रीगण ट्रक पर सवार हुए थे, बीमा कम्पनी को मुआवजा के भुगतान का जिम्मेदार यह नहीं बनाएगा विशेषतः जब वाहन को एकस्थान से दूसरे स्थान तक सामान ढोने के लिए भाड़ा पर नहीं लिया गया था बल्कि व्यक्ति यात्रीगण के रूप में, न कि एकस्थान से दूसरे स्थान तक सामान ढोने के लिए, ट्रक पर सवार हुए थे। मामले के उस दृष्टिकोण में अधिकरण ने सही अभिनिर्धारित किया है कि बीमा कम्पनी मुआवजा का भुगतान करने के लिए जिम्मेदार नहीं है।

5. पूर्वोक्त कारणों से हम इस अपील में गुणागुण नहीं पाते हैं जिसे तद्नुसार खारिज की जाती है।

प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति.–मैं सहमत हूँ।

माननीय प्रशान्त कुमार, न्यायमूर्ति

राजेश कुमार उर्फ राजेश राम एवं एक अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. Appeal (SJ) No. 731 of 2002. Decided on 16th April, 2010.

(क) भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 366A–अपहरण–दोषसिद्धि और दंड–यह सिद्ध करने का प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है कि अपीलार्थीगण द्वारा पीड़ित युवती का अपहरण किया

गया था–घटना के 15 दिन बाद पीड़ित युवती ने आत्म हत्या कर ली–न्यायालय में उसका परीक्षण नहीं किया जा सका था–दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 161 और 164 के अधीन पीड़ित युवती का बयान दोषसिद्धि का आधार नहीं बन सकता है–घटना के बिन्दु पर अभियोजन साक्षीगण अनुश्रुत गवाह हैं–सभी युक्तियुक्त संदेहों के परे परिस्थितियाँ सिद्ध नहीं की गयी–दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त। (पैरा 5 से 11)

(ख) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 161 और 164—धारा 164 के अधीन बयान साक्ष्य का सारवान टुकड़ा नहीं है–इसका उपयोग केवल गवाह के बयान को पुष्ट अथवा खंडित करने के लिए किया जा सकता है–धारा 161 के अधीन किसी साक्षी के बयान का उपयोग केवल उसके खंडन के लिए किया जा सकता है। (पैरा 7)

अधिवक्तागण.–Mr. K.N. Roy, For the Appellants; Mr. Tapas Roy, For the Respondent.

प्रशान्त कुमार, न्यायमूर्ति.–यह अपील सत्र विचारण सं॰ 10 वर्ष 2000 में अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक न्यायालय सं॰ III, हजारीबाग द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 19.9.2002 और 20.9.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा और जिसके अधीन उन्होंने भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 366A के अधीन अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध किया और 5 वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंड दिया।

2. संक्षेप में अभियोजन का मामला यह है कि चंदेश्वर प्रसाद कुशवाहा (अ॰ सा॰ 1) के फर्दबयान के मुताबिक दिनांक 18.6.1999 को जब वह सवेरे नींद से जागा तो पाया कि उसकी भतीजी सरिता देवी घर से गायब है। तब यह कथन किया गया है कि उसने उसको अड़ोस-पड़ोस में तलाशा किन्तु सफल नहीं हुआ। आगे यह कथन किया गया है कि राजेश कुमार उर्फ राजू उसके साथ विवाह करने का प्रयास कर रहा था किन्तु मामले को गाँव की पंचायत में सुलझा लिया गया था। यह अभिकथन किया गया है कि दिनांक 18.6.1999 की सुबह से अपीलार्थीगण भी अपने घर से गायब थे। यह अभिकथन किया गया है कि उसके साथ विवाह करने के आशय से उसकी भतीजी का अपहरण अपीलार्थीगण द्वारा कर लिया गया था। आगे अभिकथन किया गया है कि जानकी राम, निर्मल राम, अयोध्या राम और नागेश्वर राम ने पूर्वोक्त अपराध करने में अपीलार्थीगण की सहायता की।

3. पूर्वोक्त बयान के आधार पर, भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 363, 366A, 120B के अधीन कटकमसंडी पी॰ एस॰ केस सं॰ 66 वर्ष 1999 संस्थापित किया गया और पुलिस ने अन्वेषण शुरू किया। अन्वेषण पूरा करने के बाद पुलिस ने भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 363, 366A/120B के अधीन अपीलार्थीगण के विरुद्ध और साथ-साथ जानकी राम, निर्मल राम, अयोध्या राम और नागेश्वर राम के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया। संज्ञान के बाद मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया क्योंकि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 366A के अधीन अपराध अनन्य रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारण योग्य था।

4. यह प्रतीत होता है कि प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, हजारीबाग ने दिनांक 14.8.2001 के अपने आदेश के तहत भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 366A और 120B के अधीन आरोप पत्रित अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप विरचित किया और स्पष्ट किया जिसका उन्होंने दोषी नहीं होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने का दावा किया। तत्पश्चात्, अपने मामले के समर्थन में अभियोजन ने नौ गवाहों का परीक्षण किया। तत्पश्चात्, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन अभियुक्तगण का बयान दर्ज किया गया जिनमें उनका बचाव घटना से पूरा इंकार करना है। तब यह प्रतीत होता है कि विद्वान अवर न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर विचार करने के बाद सह-अभियुक्तों जानकी राम, निर्मल राम, अयोध्या राम और नागेश्वर राम को आरोप मुक्त कर दिया। किन्तु, उक्त निर्णय द्वारा विद्वान अवर न्यायालय ने अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध किया और दंड दिया जैसा ऊपर कहा गया है और जिसके विरुद्ध वर्तमान अपील दाखिल की गयी है।

5. अवर न्यायालय के निर्णय की आलोचना करते हुए अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री के० एन० राय निवेदन करते है कि अपीलार्थीगण के विरुद्ध कोई भी विधिक साक्ष्य नहीं है। यह निवेदन किया गया है कि दं० प्र० सं० की धारा 161 के अधीन अन्वेषण के दौरान आई० ओ० द्वारा दर्ज किया गया पीड़ित युवती के बयान और साथ-साथ दं० प्र० सं० की धारा 164 के अधीन न्यायिक दंडाधिकारी, हजारीबाग द्वारा दर्ज किया गया उसके बयान के आधार पर विद्वान अवर न्यायालय ने अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध किया है। यह निवेदन किया गया है कि दं० प्र० सं० की धारा 164 के अधीन दिया गया बयान साक्ष्य का सारवान टुकड़ा नहीं है और इसका मूल्य उस व्यक्ति, जो ऐसा बयान देता है, के बयान को पुष्ट करने और/अथवा खंडित करने में ही है। आगे यह निवेदन किया गया है कि दं० प्र० सं० की धारा 161 के अधीन गवाह द्वारा दिए गए बयान का प्रयोग उसका खंडन करने के लिए ही किया जा सकता है। स्वीकृत रूप से वर्तमान मामले में पीड़ित युवती अर्थात् सरिता देवी का परीक्षण नहीं किया गया है क्योंकि आरोप पत्र दाखिल किए जाने के पहले उसकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार साक्ष्य के पूर्वोक्त दो टुकड़ों पर विचार नहीं किया जा सकता है। तद्नुसार, यह निवेदन किया गया है कि अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध करने और दंड देने में विद्वान अवर न्यायालय ने गंभीर अवैधता की है, अत: इसे इस अपील में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

6. विद्वान एपीपी ने अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता के प्रतिवाद का विरोध किया और निवेदन किया कि अभिलेख पर उपस्थित पारिस्थितिक साक्ष्य अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध करने हेतु पर्याप्त है। यह अभिलेख पर लाया गया है कि पूर्व अवसरों पर भी अपीलार्थी राजेश कुमार ने सूचक की भतीजी के साथ जबरदस्ती विवाह करने का प्रयास किया था। किन्तु पक्षों के बीच मामला सुलझा लिया गया था। आगे यह निवेदन किया गया है कि अपीलार्थीगण को कुजू से गिरफ्तार किया गया था जब वह पीड़ित युवती के संग था जो यह दर्शाता है कि अपीलार्थीगण ने ही, न कि किसी अन्य ने वर्तमान अपराध किया है। तद्नुसार, यह निवेदन किया गया है कि विद्वान अवर न्यायालय ने अपीलार्थीगण को सही दोषसिद्ध किया है और दंड दिया है।

7. निवेदन सुनने के उपरांत, मैंने मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है और साक्ष्य की सावधानीपूर्वक संवीक्षा की है। यह सिद्ध करने का प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है कि अपीलार्थीगण द्वारा पीड़ित युवती सरिता कुमारी का अपहरण किया गया था। अ० सा० 1 चन्देश्वर प्रसाद कुशवाहा (सूचक और पीड़ित युवती का चाचा), अ० सा० 2 बालेश्वर राम, अ० सा० 3 मोहन महतो, अ० सा० 4 त्रिवेणी साव, अ० सा० 5 टेक नारायण महतों, अ० सा० 6 उमेश राम, अ० सा० 7 राम सुन्दर प्रसाद (पीड़ित युवती का पिता) घटना के बिन्दु पर अनुश्रुत गवाह है। उन्होंने कथन किया उन्होंने नहीं देखा था कि अपीलार्थीगण सरिता कुमारी को ले जा रहे थे। वे आगे कथन करते हैं कि उन्होंने सरिता कुमारी से इसके बारे में जाना जब वह लौटी। यह एक स्वीकृत स्थिति है कि घटना के 15 दिन बाद सरिता कुमारी ने आत्महत्या कर ली। इस प्रकार न्यायालय में उसका परीक्षण नहीं किया गया है। किन्तु यह प्रतीत होता है कि विद्वान अवर न्यायालय ने धारा 164 दं० प्र० सं० के अधीन दिए गए बयान और अन्वेषण के दौरान आई० ओ० (अ० सा० 9) द्वारा दर्ज किए गए बयान पर विचार किया था। यह सुनिश्चित है कि धारा 164 दं० प्र० सं० के अधीन बयान साक्ष्य का सारवान टुकड़ा नहीं है। इसका उपयोग केवल गवाह के बयान को पुष्ट अथवा खंडित करने हेतु किया जा सकता है। यह समान रूप से सुनिश्चित है कि दं० प्र० सं० की धारा 161 के अधीन गवाह के बयान का उपयोग केवल उसके खंडन के लिए किया जा सकता है। उक्त परिस्थिति के अधीन दं० प्र० सं० की धारा 161 और 164 के अधीन सरिता कुमारी का पूर्वोक्त दो बयान दोषसिद्धि का आधार नहीं बन सकता है। इस प्रकार मेरे दृष्टिकोण में, अवर न्यायालय ने पूर्वोक्त बयानों के आधार पर अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध करके गंभीर अवैधता की है।

8. अब विद्वान एपीपी द्वारा इंगित पारिस्थितिक साक्ष्य पर आते हुए, यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि इस संबंध में अभियोजन गवाह परस्पर विरोधी हैं। अ॰ सा॰ 1 सूचक ने कथन किया था कि घटना के पहले राजेश राम और मन्नू उसकी भतीजी के साथ विवाह करने का प्रयास कर रहे थे। इस प्रकार उसके साक्ष्य से यह स्पष्ट नहीं है कि कौन सरिता कुमारी के साथ विवाह करने का प्रयास कर रहा था। अ॰ सा॰ 3 जो सरिता का दादा है, ने केवल यह कथन किया था कि अभियुक्तगण उसको छेड़ते थे। अ॰ सा॰ 2 ने कहा है कि मात्र राजू ही सरिता के साथ विवाह करने का प्रयास कर रहा था अ॰ सा॰ 4 ने इस संबंध में कुछ भी नहीं कहा है। अ॰ सा॰ 5 ने यह भी कथन किया था कि गाँव में पंचायती की गयी थी जिसमें गाँव में शांति बनाए रखने हेतु अपीलार्थीगण और उनके परिवार के सदस्यों को कुछ निर्देश दिए गए थे। उसने यह कथन नहीं किया था कि उक्त पंचायती क्यों की गयी थी। अ॰ सा॰ 6 ने भी इस संबंध में कोई कथन नहीं किया था। अ॰ सा॰ 7, जो पीड़ित सरिता कुमारी का पिता है, ने भी कथन किया था कि राजेश उसकी पुत्री को छेड़ता था। इस प्रकार, यह कि क्या दोनों अपीलार्थीगण सरिता कुमारी के साथ विवाह करने का प्रयास कर रहे थे और/अथवा केवल राजेश कुमार ने उसको छेड़ा था, सारे युक्तियुक्त संदेहों के परे स्थापित नहीं किया गया है।

9. पूर्वोक्त के अतिरिक्त, मेरे ध्यान में यह लाया गया है कि अपीलार्थीगण को पीड़ित युवती के साथ कुजू से गिरफ्तार किया गया था। मेरे दृष्टिकोण में, उक्त परिस्थिति अभियोजन के मामले में कोई सहायता नहीं करती है। अपहरण के प्रत्यक्ष साक्ष्य की अनुपस्थिति में, इससे इंकार नहीं किया जा सकता है कि युवती स्वयं अथवा किन्हीं अन्य व्यक्तियों के साथ कुजु गयी थी यह भी संभव है कि उसी दिन अपीलार्थीगण कुजु गए हों और कुजु चौक पर पीड़ित युवती को देखने के बाद वे उससे बात करने लगे हों और इसी समय पुलिस वहाँ आयी होगी और उनको गिरफ्तार कर लिया गया होगा। इस प्रकार, पूर्वोक्त परिस्थितियों में यह निष्कर्षित नहीं किया जा सकता है कि वर्तमान अपराध अपीलार्थीगण द्वारा ही, न कि किसी और द्वारा किया गया है।

10. पूर्वोक्त चर्चाओं की दृष्टि में, मैं पाता हूँ कि दोषसिद्धि का आक्षेपित निर्णय और दंडादेश तात्विक अवैधता और अनियमितता का शिकार है और इस कारण इसे इस अपील में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

11. परिणामस्वरुप, यह अपील अनुज्ञात की जाती है। अपीलार्थीगण के विरुद्ध दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय और दंडादेश को अपास्त किया जाता है अपीलार्थीगण को उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से मुक्त किया जाता है यह प्रतीत होता है कि दोनों अपीलार्थीगण जमानत पर हैं। उन्हें उनके द्वारा दिए गए जमानत पत्रों के दायित्व से उन्मोचित किया जाता है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

तरन्नुम निशा

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

WP(S) No. 4751 of 2007. Decided on 6th May, 2010.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन आवेदन के एक मामले में।

सेवा विधि–नियुक्ति–आंगनबाड़ी सेविका के पद पर प्रत्यर्थी की नियुक्ति के आदेश के अभिखंडन हेतु और आंगनबाड़ी सेविका के चयन के लिए गाँववालों की नयी बैठक करने के लिए प्रार्थना–द्वितीय आम सभा की बैठक में याची ने अपनी उम्मीदवारी प्रस्तावित नहीं

की–इस प्रकार उसकी उम्मीदवारी पर विचार करने के लिए आम सभा के पास कोई अवसर नहीं था–योजना के अधीन अधिकथित प्रक्रिया के अनुरूप लिए गए आम सभा के निर्णय के साथ हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है–याचिका खारिज। (पैरा 7 से 9)

अधिवक्तागण.–M/s Bhaiya Vishwajeet Kr., Rashmi Kumari, For the Petitioner; JC to SC-I, For the State; M/s M.S. Anwar, Altaf Hussain, For the Respondent No. 9.

न्यायालय द्वारा.–पक्षों के अधिवक्ता को सुना गया।

2. इस रिट याचिका में याची ने आंगनबाड़ी सेविका के पद पर प्रत्यर्थी सं॰ 9 की नियुक्ति का आदेश, जैसा मेमो सं॰ 122 दिनांक 5.4.2007 (परिशिष्ट-3) में अंतर्विष्ट है, के अभिखंडन के लिए प्रार्थना की है और थाना पिथोरिया, जिला राँची के अंतर्गत पिरुतोला केन्द्र के आंगनबाड़ी सेविका के चयन और नियुक्ति के लिए गाँव वालों की नयी बैठक करने का निर्देश प्रत्यर्थीगण के संबंधित प्राधिकारियों को देने के लिए आगे प्रार्थना की है।

3. स्वीकृत तथ्यों से, यह प्रतीत होता है कि दिनांक 10.12.2006 को की गयी आम सभा की बैठक में आंगनबाड़ी सेविका के पद पर नियुक्ति के लिए याची और प्रत्यर्थी सं॰ 9 दोनों ने अपनी अपनी उम्मीदवारी प्रस्तुत की थी। जहाँ याची की उम्मीदवारी इस आधार पर अस्वीकार कर दी गयी थी कि वह उस गाँव की निवासी नहीं है, वहीं प्रत्यर्थी सं॰ 9 की उम्मीदवारी अनुमोदित की गयी थी और उसे आंगनबाड़ी सेविका के पद पर नियुक्त किया गया था।

तत्पश्चात्, याची ने अपने दावे के समर्थन में अंचलाधिकारी से प्रमाण पत्र प्राप्त किया कि बहू होने के नाते वह गाँव की निवासी है और ऐसे समर्थन के आधार पर प्रतिवाद करते हुए कि उसकी उम्मीदवारी की अस्वीकृति गैर कानूनी है, उप-कमिश्नर के समक्ष आपत्ति दाखिल किया।

याची का परिवाद/आपत्ति प्राप्त होने पर उप-कमिश्नर ने अंचलाधिकारी को जाँच संचालित करने और रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश दिया।

पूर्व निर्धारित तिथि पर, याची-प्रत्यर्थी और ग्राम प्रधान एवं अन्य बुजुर्गों की उपस्थिति में अंचलाधिकारी द्वारा जाँच संचालित की गयी।

अंचलाधिकारी/जाँच अधिकारी के निष्कर्ष, जैसा उसके रिपोर्ट (परिशिष्ट-5) में अंतर्विष्ट है, ये हैं कि यद्यपि आम सभा की द्वितीय बैठक दिनांक 26.12.2006 को की गयी थी किन्तु आम सभा में उपस्थित होने के लिए याची को कोई नोटिस नहीं दिया गया था। इस प्रभाव का निष्कर्ष भी दर्ज किया गया था कि प्रत्यर्थी सं॰ 9 के मुकाबले याची के पास उच्चतर शैक्षिक अर्हता थी। इन निष्कर्षों पर जाँच अधिकारी ने यह सुझाने के लिए अपना संप्रेक्षण किया है कि याची की उम्मीदवारी की अस्वीकृति गलत थी। अपनी जाँच रिपोर्ट में जाँच अधिकारी द्वारा किए गए पूर्वोक्त संप्रेक्षण का लाभ लेते हुए और अपनी उम्मीदवारी की अस्वीकृति से व्यथित होकर याची ने वर्तमान रिट याचिका दाखिल की है।

4. निजी प्रत्यर्थी सं॰ 9 सहित प्रत्यर्थीगण ने अपना-अपना प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया है।

5. प्रत्यर्थी सं॰ 9 के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के अधिवक्ता ने तर्क किया कि वर्तमान रिट याचिका भ्रामक है और उसके द्वारा दावा किए गए किसी अनुतोषों के लिए याची हकदार नहीं है। विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह स्पष्ट करना इप्सित किया गया है कि स्वीकृत रूप से, प्रत्यर्थी सं॰ 9 की

नियुक्ति के विरुद्ध याची द्वारा की गयी परिवाद/आपत्ति प्राप्त करने पर द्वितीय आम सभा की गयी थी और स्थानीय समाचार पत्रों में नोटिस प्रकाशित कर आम सभा की बैठक अधिसूचित की गयी थी। इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थी सं॰ 9, जिसकी नियुक्ति अपनी द्वितीय बैठक में भी आम सभा द्वारा पुन: अनुमोदित की गयी प्रतीत होती है, की नियुक्ति के संबंध में याची की शिकायत पर विचार करने के लिए अंचलाधिकारी द्वारा जाँच संचालित की गयी थी।

6. जाँच रिपोर्ट सहित दस्तावेजों से उभरते तथ्य ये है कि दिनांक 26.12.2006 को आम सभा की द्वितीय बैठक में याची उपस्थित नहीं हुई थी और न ही अपनी उम्मीदवारी प्रस्तावित की थी यद्यपि उस बैठक में उपस्थित व्यक्तियों में से एक उसका पति था यद्यपि वह याची के प्रतिनिधि के रूप में नहीं था।

7. आंगनबाड़ी सेविका की नियुक्ति के लिए योजना के अधीन कथित प्रक्रिया के कोरे पठन से यह प्रतीत होता है कि इच्छुक उम्मीदवारों की उपस्थिति आम सभा की बैठक में अपेक्षित थी और अपनी पात्रता के समर्थन में उन्हें अपने-अपने प्रमाण पत्रों और अन्य दस्तावेजों को प्रस्तुत करना था। प्रकटत: आम सभा की द्वितीय बैठक में याची उपस्थित नहीं हुई। स्वीकृत तौर पर प्रत्यर्थी सं॰ 9 उपस्थित थी और उसने अपनी पात्रता के दावा के समर्थन में सारे दस्तावेजों को प्रस्तुत किया था। चूँकि आम सभा की प्रस्तावित बैठक की तिथि स्थानीय समाचार पत्रों में नोटिस के माध्यम से पहले ही प्रकाशित की गयी थी और इसके अलावा, सी॰ डी॰ पी॰ ओ॰ के कार्यालय द्वारा याची को विनिर्दिष्टत: सूचना दी गयी थी और प्रत्युत्तर में याची का पति आम सभा की बैठक में उपस्थित था, याची कोई शिकायत संभवत: नहीं कर सकती है कि उसे बैठक के लिए विनिर्दिष्टत: नहीं आमंत्रित किया गया था।

8. तथ्यों और परिस्थितियों से निकाला गया निष्कर्ष यह है कि आम सभा की द्वितीय बैठक में याची ने अपनी उम्मीदवारी प्रस्तावित नहीं की थी, अत: उसकी उम्मीदवारी पर विचार करने के लिए आम सभा के पास अवसर नहीं था। आम सभा के निर्णय, जिसे योजना के अधीन अधिकथित प्रक्रिया के अनुरूप लिया गया है, में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

9. उक्त तथ्यों और परिस्थितियों और चर्चा के आलोक में मैं इस रिट याचिका में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ। तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है।

माननीय प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति

फिरंगी साह एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (SJ) No. 813 of 2002. Decided on 8th April, 2010.

सत्र विचारण सं॰ 87 वर्ष 2002 में श्री राजेश कुमार पांडे, पंचम अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक न्यायालय सं॰ 2, गोड्डा द्वारा पारित क्रमश: दिनांक 12.11.2002 और दिनांक 13.11.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरूद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 307/34, 342 एवं 448—अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958—धारा 4—हत्या का प्रयास, सदोष परिरोध एवं गृह अतिचार-दोषसिद्धि एवं दण्डादेश-हत्या करने के अभिकथित आशय से चाकू से वार करना-अभियोजन सिद्ध

करने में सक्षम रहा कि घटना की तिथि और स्थान पर अपीलार्थीगण सूचक के घर में घुसे और उस पर चाकू और लाठी से प्रहार किया–शरीर के महत्वपूर्ण अंगों पर उपहति नहीं की गयी–सारी उपहतियाँ सरल प्रकृति की है–अपीलार्थी का आशय सूचक की हत्या करने का नहीं था–धारा 307 के अधीन अपराध नहीं बनता है–दोषसिद्धि धारा 342 और 448 के अधीन अपराधों के लिए की गयी। (पैरा 8 से 10)

अधिवक्तागण.–Mr. A.K. Kashyap, For the Appellants; Mr. Prem Prakash, For the State; Mr. P.K. Nayak, For the Informant.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र केस सं० 87 वर्ष 2002 में पंचम अपर सत्र न्यायाधीश, एफ० टी० सी०-II, गोड्डा द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 12.11.2002 और 13.11.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय औरा दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा और जिसके अधीन उन्होंने अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 307/34, 342 और 448 के अधीन दोषसिद्ध किया है और भा० दं० सं० की धारा 307/34 के अधीन 7 वर्षों का कठोर कारावास, भा० दं० सं० की धारा 342 के अधीन एक वर्ष का सरल कारावास और भा० दं० सं० की धारा 448 के अधीन एक वर्ष का सश्रम कारावास भुगतने का दंड दिया है।

2. यह अभिकथन किया गया है कि दिनांक 15.6.1993 की रात्रि लगभग 9 बजे समस्त अपीलार्थीगण सूचक के घर में घुसे और अपीलार्थी सं० 1 (फिरंगी साह) द्वारा उकसाने पर अपीलार्थी सं० 3 (भैंगरी साह) ने सूचक को पकड़ लिया और तब अपीलार्थी सं० 2 (दिनेश साह) ने उसकी हत्या करने के आशय के साथ सूचक पर उपहति की। यह कथन किया गया है कि सूचक ने अपनी जान बचाने का प्रयास किया और चाकू पकड़ लिया जिस कारण उसे दायीं हथेली और बायीं मध्यमा उंगली पर उपहति हुई। यह अभिकथन भी किया गया है कि घटना के क्रम में सूचक की पीठ पर चाकू द्वारा कारित उपहति भी हुई।

3. यह प्रतीत होता है कि अगले दिन पुलिस को मामला रिपोर्ट किया गया और उक्त सूचना के आधार पर महगामा पी० एस० केस सं० 49 वर्ष 1993 दिनांक 16.6.1993 संस्थापित किया गया और पुलिस ने अन्वेषण आरंभ किया।

4. यह प्रतीत होता है कि अन्वेषण पूरा करने के बाद पुलिस ने समस्त अपीलार्थीगण के विरूद्ध भा० दं० सं० की धाराएँ 448, 341, 342, 324 और 307/34 के अधीन आरोप पत्र प्रस्तुत किया। आगे यह प्रतीत होता है कि संज्ञान के बाद मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया क्योंकि भा० दं० सं० की धारा 307 के अधीन अपराध केवल सत्र न्यायालय द्वारा ही विचारण योग्य था।

5. आगे अभिलेख प्रकट करता हैं कि विद्वान सत्र न्यायालय ने भा० दं० सं० की धाराएँ 448, 342 और 307/34 के अधीन आरोप विरचित किया और अपीलार्थीगण को स्पष्ट किया जिसके प्रति अपीलार्थीगण ने दोषी न होने का अभिवाक किया और विचारण किए जाने का दावा किया। तत्पश्चात्, अभियोजन ने अपने मामले के समर्थन में मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किया। तब यह प्रतीत होता है कि दं० प्र० सं० की धारा 313 के अधीन अपीलार्थीगण के बयानों को दर्ज किया गया जिसमें उनका प्रतिवाद पूरे इनकार का है। तब यह प्रतीत होता है कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर विचार करके विद्वान अवर न्यायालय ने पूर्वोक्तानुसार अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध एवं दंडित किया जिसके विरुद्ध वर्तमान अपील दाखिल की गयी है।

6. अवर न्यायालय के निर्णय और निष्कर्षों का विरोध करते हुए वरीय अधिवक्ता श्री ए० के० कश्यप निवेदन करते हैं कि वर्तमान मामले में समस्त मामला अ० सा० 2, 3, 6 और 7 के साक्ष्य पर आधारित है। तथ्यों के अन्य गवाहों अर्थात् अ० सा० 1, 4 और 5 जो सह-ग्रामीण हैं ने अभियोजन के

मामले का समर्थन नहीं किया है। आगे निवेदन किया गया है कि यद्यपि अ॰ सा॰ 2 ने न्यायालय में स्वयं के घटना का चश्मदीद गवाह होने का दावा किया था किन्तु उसका ध्यान पुलिस के समक्ष किए गए इस प्रभाव के उसके पूर्व बयान की ओर आकृष्ट किया गया था कि उसने घटना के बारे में सुना था। यह निवेदन किया गया है कि आइ॰ ओ॰ का परीक्षण नहीं किया गया है और इस प्रकार अ॰ सा॰ 2 के बयान में विरोधाभाष को सिद्ध नहीं किया गया है। इस प्रकार, प्रतिवादी पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव कारित हुआ। आगे निवेदन किया गया है कि अ॰ सा॰ 7, जो वर्तमान मामले का घायल (सूचक) है, का साक्ष्य प्राथमिकी में दिए गए उसके पूर्व बयान के विरोध में है। यह निवेदन किया गया है कि सूचक ने प्राथमिकी में कथन नहीं किया है कि अपीलार्थी सं॰ 2 और 3 ने उसे लाठी से मारा था किन्तु घटना के नौ महीने बाद न्यायालय में अभिसाक्ष्य देते हुए उसने अभियोजन कथा को समृद्ध किया और अभिकथन किया कि अपीलार्थी सं॰ 2 और 3 द्वारा भी उसके ऊपर प्रहार किया गया था, अत: उसका समस्त साक्ष्य ठुकराए जाने लायक है। जहाँ तक अ॰ सा॰ 3 और 6 के बयान का संबंध है, यह निवेदन किया गया है कि उनका साक्ष्य प्राथमिकी में उसके द्वारा दिए गए अ॰ सा॰ 7 के साक्ष्य के विरोध में है। तद्नुसार, यह निवेदन किया गया है कि अपीलार्थीगण अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किए जाने के हकदार हैं। श्री कश्यप आगे निवेदन करते हैं कि अभिलेख पर उपलब्ध अभियोजन के साक्ष्य को स्वीकार करने पर भी, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307/34 के अधीन मामला नहीं बनता है। यह निवेदन किया गया है कि साक्ष्य और अभिलेख पर उपलब्ध अन्य सामग्रियों में यह आया है कि घटना सूचक के घर के अंदर हुई थी। साक्ष्य में यह भी आया है कि उपहति प्राप्त करने के बाद सूचक और उसकी पत्नी ने शोर मचाया और तब लोग एकत्रित हुए। अत: गाँववालों के आने तक अपीलार्थीगण के पास सूचक की हत्या का पूरा अवसर था यदि उनका ऐसा आशय था। यह निवेदन किया गया है कि सूचक के शरीर पर पायी गयी उपहतियाँ सरल प्रकृति की है और शरीर के महत्वपूर्ण अंगों पर उपहति नहीं है। यह इस बात को भी दर्शाता है कि अपीलार्थीगण का आशय सूचक की हत्या कारित करने का नहीं था। यह निवेदन किया गया है कि अधिकाधिक धाराएँ 323, 324, 342 और 448 के अधीन मामला बनता है। यह निवेदन किया गया है कि घटना की तिथि से अब तक 17 वर्ष से ज्यादा बीत चुके थे। अत: अपीलार्थीगण अपराधी परिवीक्षा अधिनियम के अधीन लाभ पाने के हकदार हैं। इस उद्देश्य के लिए श्री कश्यप ने **2004 (7) SCC 659** में प्रकाशित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया।

7. दूसरी ओर, सूचक के विद्वान अधिवक्ता, श्री पी॰ के॰ नायक और विद्वान ए॰ पी॰ पी॰, श्री प्रेम प्रकाश ने अपीलार्थीगण की ओर से उठाए गए निवेदन का विरोध किया और निवेदन किया कि चाकू से बार-बार प्रहार किया गया था और अपीलार्थीगण ने सूचक को लाठी से भी पीटा था। आगे निवेदन किया गया है कि अ॰ सा॰ 6 और 7 का विवरण चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा पूर्णत: संपुष्ट होता है। अत: भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307 के अधीन अपराध बनता है। यह निवेदन किया गया है कि चूँकि धारा 307 भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन महत्तम दंड आजीवन कारावास है, अत: अपराधी परिवीक्षा अधिनियम लागू नहीं होता है। यह भी निवेदन किया गया है कि आक्षेपित दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश में कोई अवैधता अथवा/और अनियमितता नहीं है, अत: इस न्यायालय के हस्तक्षेप की गुंजाइश नहीं है।

8. निवेदन सुनने के बाद, मैंने मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है और साक्ष्य का सावधानीपूर्वक संवीक्षण किया है। जैसा ऊपर ध्यान में लिया गया है, वर्तमान मामले में अ॰ सा॰ 1, 4,और 5 को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है। अ॰ सा॰ 2 और 3 जो सह-ग्रामीण है और सूचक के पड़ोसी हैं, ने कथन किया था कि हल्ला सुनकर वह घटनास्थल पर आए और देखा कि अपीलार्थी सं॰ 1 ने सूचक पर चाकू से उपहतियाँ कारित की जबकि अपीलार्थी सं॰ 2 और 3 ने उसे लाठी से मारा। यह तथ्य अ॰ सा॰ 6 और 7 के अभिसाक्ष्य द्वारा भी समर्थित है। आगे मैं पाता हूँ कि गवाहों के पूर्वोक्त

बयान अ॰ सा॰ 8 के साक्ष्य द्वारा पूर्णत: समर्थित है जिसने सूचक का चिकित्सीय परीक्षण किया था और तेज धार वाले हथियार द्वारा कारित तीन छिन्न उपहतियाँ और कठोर एवं भोथरे औजार से कारित चार उपहतियाँ पायी थी। इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि अभियोजन यह सिद्ध करने में सक्षम रहा है कि घटना की तिथि और समय पर अपीलार्थीगण सूचक के घर में घुसे और उसे पकड़ लिया और तब उस पर चाकू और लाठी से प्रहार किया।

9. किन्तु अभिलेख के परिशीलन से मैं पाता हूँ कि घटना दिनांक 15.6.1993 की रात्रि में सूचक के घर के अंदर हुई थी। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से आगे यह प्रतीत होता है कि उस समय केवल सूचक और उसकी पत्नी उपस्थित थे। सूचक द्वारा अपने फर्दबयान और साथ ही अपने बयान में भी यह कथन भी किया गया है कि उपहतियाँ प्राप्त करने के बाद उसने शोर मचाया और तब गाँववाले घटनास्थल पर आए। यह उल्लिखित करने योग्य है कि घटना के समय अपीलार्थी सं॰ 1 चाकू से लैस था जबकि अपीलार्थी सं॰ 2 और 3 लाठी लिए हुए थे। साक्ष्य यह भी दर्शाते हैं कि उपहतियाँ प्राप्त करने के बाद सूचक जमीन पर गिर गया और बेहोश हो गया। इस प्रकार मैं पाता हूँ कि ऐसा कोई मध्यवर्ती परिस्थिति नहीं है जो अपीलार्थीगण को सूचक की हत्या करने से रोकती थी यदि उनका ऐसा आशय था। इसके अतिरिक्त चिकित्सीय साक्ष्य के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि उसके शरीर के महत्वपूर्ण अंग पर कोई उपहति नहीं थी। मैं आगे पाता हूँ कि सारी उपहतियाँ सरल प्रकृति की है। यह दर्शाती है कि अपीलार्थीगण का आशय सूचक की हत्या करने का नहीं था। मामले के इस दृष्टिकोण में, अपीलार्थीगण के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307 के अधीन अपराध नहीं बनता है। चूँकि मैं पहले ही इस निष्कर्ष पर आया हूँ कि अपीलार्थीगण सूचक के घर में घुसे और उसे पकड़ लिया और तब अपीलार्थी सं॰ 1 ने उस पर चाकू से प्रहार किया जबकि अपीलार्थी सं॰ 2 और 3 ने उस पर लाठी से प्रहार किया। मैं पाता हूँ कि अपीलार्थी सं॰ 1 ने उस पर चाकू से प्रहार किया जबकि अपीलार्थी सं॰ 2 और 3 ने उस पर लाठी से प्रहार किया। मैं पाता हूँ कि अपीलार्थी सं॰ 1 के विरूद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 324 के अधीन अपराध और अपीलार्थी सं॰ 2 और 3 के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 323 के अधीन अपराध निर्मित होता है। मैं आगे पाता हूँ कि समस्त अपीलार्थीगण के विरूद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 342 और 348 के अधीन अपराध बनता है। मैं तद्नुसार, पूर्वोक्त सीमा तक दोषसिद्धि के निर्णय को परिवर्तित करता हूँ और पूर्वोक्त अपराधों के लिए अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध करता हूँ।

10. यह स्वीकृत स्थिति है कि घटना वर्ष 1993 में हुई थी, इस प्रकार 17 वर्ष पहले ही बीत गए है। आगे प्रतीत होता है कि दोनों पक्ष पड़ोसी हैं। जैसा ऊपर ध्यान में लिया गया है, सूचक के शरीर पर कारित उपहतियाँ सरल प्रकृति की है और शरीर के महत्वपूर्ण अंग पर नहीं है। यह दर्शाने हेतु अभिलेख पर ऐसा कुछ भी नहीं है कि अपीलार्थीगण का कोई दांडिक पूर्ववृत्त है। अत: मेरे दृष्टिकोण में यह सुयोग्य मामला है जिसमें अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के लाभ को अपीलार्थीगण को दिया जाए। तद्नुसार, मैं दंडादेश को अपास्त करता हूँ और अपीलार्थीगण को निर्देश देता हूँ कि 25000/-रुपयों का दो बंधपत्र प्रत्येक समान राशि के प्रतिभूति के साथ मुहल्ले में दो वर्षो तक शांति बनाए रखने के लिए विद्वान अवर न्यायालय के संतोषानुसार जमा करे। यदि अपीलार्थीगण मुहल्ले की शांति भंग करते हैं, विचारण न्यायालय को उनका बंधपत्र रद्द करने और उनके विरूद्ध सारवान दंडादेश पारित करने की छूट है।

11. परिणामस्वरुप, यह अपील दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश में पूर्वोक्त परिवर्तन के साथ खारिज की जाती है।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

संजीव नयन कुमार

बनाम

प्रीति कुमारी

First Appeal (SJ) No. 937 of 2006. Decided on 5th May, 2010.

वैवाहिक केस सं॰ 20 वर्ष 2000 में श्री विष्णु कांत सहाय, प्रथम अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 23.9.2006 के निर्णय और डिक्री (डिक्री दिनांक 4.12.2006 को हस्ताक्षरित की गयी थी) के विरूद्ध।

हिन्दु विवाह अधिनियम, 1955—धारा 9—दांपत्य अधिकारी की प्रत्यास्थापना–आवेदन की अस्वीकृति–पक्षों के बीच विवाह सिद्ध करने में वादी/अपीलार्थी विफल रहा–पुरोहितों के साक्ष्य द्वारा अभिकथित विवाह की तिथि और समय सिद्ध नहीं की जा सकी थी–वादी यह सिद्ध करने में विफल रहा कि दांपत्य संबंध की प्रत्यास्थापना का अधिकार देने के लिए वादी और प्रतिवादी के बीच विधिक विवाह है–पक्षों को विधिक रूप से विवाहित जोड़ी नहीं कहा जा सकता है–प्रत्यास्थापना के लिए मामला दाखिल करने के लिए वादी के पास कोई वैध वाद हेतुक नहीं था–अपील खारिज। (पैरा 16 से 18)

अधिवक्तागण.–Mr. Shashank Shekhar Pd., For the Appellant; None, For the Respondent.

प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति.–अपीलार्थी संजीव नयन कुमार के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया। प्रत्यर्थी की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ यद्यपि प्रत्यर्थी पर नोटिस तामील किया जा चुका था।

2. यह अपील वैवाहिक केस सं॰ 20 वर्ष 2000 में श्री विष्णुकांत सहाय, प्रथम अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, पलामू, डालटेनगंज द्वारा पारित दिनांक 23.9.2006 के निर्णय एवं डिक्री (डिक्री दिनांक 4.12.2006 को हस्ताक्षरित की गयी थी) के विरूद्ध दाखिल की गयी है जिस निर्णय के द्वारा हिन्दु विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 के अधीन अपीलार्थी द्वारा दांपत्य अधिकारों की प्रत्यास्थापना हेतु दाखिल वाद खारिज कर दिया गया था।

3. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि अपीलार्थी ने यह सिद्ध करने के लिए साक्ष्य दिया है कि अपीलार्थी संजीव नयन कुमार ने दिनांक 16.12.1999 को भीखमदास मंदिर, डालटेनगंज में प्रीति कुमारी के साथ विवाह किया था और इसे वादी गवाह अ॰ सा॰ 1 और अ॰ सा॰ 4 ने सिद्ध किया। अपीलार्थी द्वारा उक्त विवाह लातेहार विवाह पंजीकरण कार्यालय में पंजीकृत किया गया था जो अ॰ सा॰ 6 के साक्ष्य द्वारा सिद्ध किया गया था और इस प्रकार विद्वान विचारण न्यायालय ने वाद खारिज करके और प्रत्यास्थापना हेतु डिक्री पारित करने से इंकार करके विधि और तथ्य में गलती की।

4. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के परिशीलन के बाद, मैं पाता हूँ कि वादी-अपीलार्थी ने जिला न्यायाधीश, पलामू के न्यायालय में अपने दांपत्य अधिकारों की प्रत्यास्थापना हेतु वैवाहिक केस सं॰ 20 वर्ष 2000 दाखिल किया। अपने परिवाद में वादी का मामला यह है कि वादी और प्रतिवादी भारत के नागरिक है और वे पलामू जिला के डालटेनगंज की अधिकारिकता के अधीन रह रहे है और दिनांक 16.12.1999 को उन्होंने हिन्दु रीति रिवाज के अनुसार भीकमदास ठाकुरबाड़ी राम जानकी मंदिर, डालटेनगंज, पलामू में विवाह किया, जिसे बाद में दिनांक 8.5.2000 को विवाह पंजीकरण कार्यालय, लातेहार में पंजीकृत किया गया था।

प्रतिवादी वादी के साथ उसके निवास स्थान पर पत्नी के रूप में रह रही थी। दिनांक 19.12.1999 को, प्रतिवादी की माता अन्य संबंधियों के साथ उसके घर आयी और 'बिदाई' कराके उसे ले गयी, लेकिन जब वह वापस नहीं लौटी, तब एक कानूनी नोटिस भेजी गयी थी, तब वह दिनांक 7.2.2000 को वापस आयी थी और तत्पश्चात् दिनांक 8.5.2000 को उनका विवाह पंजीकृत किया गया था और पुनः दिनांक 2.6.2000 को उसकी माता की बीमारी के आधार पर प्रतिवादी के परिवार के सदस्यों द्वारा उसे अपने 'नैहर' वापस ले जाया गया था। तत्पश्चात्, उसे मालूम हुआ कि उसकी सास स्वस्थ है किन्तु अपने माता के प्रभाव के अधीन उसने (प्रतिवादी) वापस आने से इंकार कर दिया, अतः उसके दांपत्य अधिकार की प्रत्यास्थापना हेतु उसने वाद दाखिल किया।

5. यह प्रतीत होता है कि प्रतिवादी वैवाहिक वाद में उपस्थित हुई और प्रतिवादी के मुताबिक वादी और प्रतिवादी के बीच हिन्दु विधि से मंदिर में अथवा विशेष विवाह अधिनियम के अधीन कभी भी विवाह नहीं हुआ था और इस प्रकार दांपत्य अधिकार के प्रत्यास्थापन का दावा नहीं किया जा सकता है। प्रतिवादी ने कथन किया कि वह कभी भी वादी के साथ नहीं रही। उसने पैरा 9 में कथन किया कि वादी संजीव नयन कुमार गया का निवासी है और संबंध में वह प्रतिवादी की बड़ी बहन का सगा भगिना है और इस प्रकार प्रतिवादी उसकी मामी की तरह है और 'मामी' और 'भगिना' के बीच विवाह का प्रश्न ही नहीं है। चूँकि वादी की माता की मृत्यु के बाद उसके पिता ने दूसरा विवाह कर लिया था और उसकी सौतेली माँ ने बहुत ही दुर्व्यवहार किया, वह अपने मामा-मामी के पास डालटेनगंज रहने आया करता था। प्रत्यर्थी भी अपनी पिता की मृत्यु के बाद अपनी (प्रतिवादी की) बड़ी बहन के पास आती थी और रहती थी और उसने प्रतिवादी का लाभ उठाया जिसकी सहायता उसके बड़े जीजाजी कर रहे थे और उसके बड़े जीजा ने डालटेनगंज महाविद्यालय में उसके प्रवेश के लिए कुछ फोटो और प्रमाण पत्र दिया था जिसका गलत उपयोग वादी के साथ मंदिर में उसका विवाह दर्शाने के लिए आवेदन करने में और लातेहार में इसे पंजीकृत करने के लिया वादी द्वारा किया गया था। विवाह के पंजीकरण जिसे अभिकथित रूप से डालटेनगंज में किया गया था चूँकि जिला मुख्यालय होने के नाते डालटेनगंज में विवाह पंजीकरण कार्यालय के लिए प्रतिवादी के लातेहार जाने का प्रश्न ही नहीं है।

6. यह प्रतीत होता है कि दोनों पक्षों ने मामला लड़ा और अवर न्यायालय में साक्ष्य दिया और साक्ष्य के मुताबिक न्यायालय ने पाया कि वादी पक्षों के विवाह सिद्ध करने में विफल रहा है और इसलिए प्रार्थना खारिज कर दी गयी।

7. अभिवाकों के परिशीलन और साक्ष्य पर विचार करने के बाद, मैं पाता हूँ कि अपीलार्थी-वादी ने भीकमदास मंदिर में प्रतिवादी के साथ अपने विवाह के संबंध में दस गवाहों का परीक्षण करवाया। उसने अ॰ सा॰ 1 वाचस्पति पाठक और अ॰ सा॰ 4 ब्रज मोहन पांडे, 'पुजारी' का परीक्षण किया, जिन्होंने कथन किया कि उन्होंने मंदिर में विवाह करवाया।

8. अ॰ सा॰ 1 वाचस्पति पाठक ने कथन किया कि दिनांक 16.12.1999 को उसने मंदिर के पुजारी के साथ भीकमदास मंदिर, डालटेनगंज में विवाह करवाया किन्तु अपने प्रति-परीक्षण में उसने कथन किया कि वह विवाह की हिन्दी 'तिथि' नहीं दे सकता है। वह दूल्हे की ओर से किसी व्यक्ति का नाम देने में भी विफल रहा उसने कथन किया कि वह लड़के के पिता का नाम और लड़की के माता-पिता का नाम नहीं जानता है। उसने कथन किया कि वह नहीं जानता है कि विवाह में कोई ठाकुर (नाई) था या नहीं। अपने प्रति-परीक्षण में उसने कथन किया कि भीकमदास ठाकुरबाड़ी में विवाह का पंजीकरण भी रखा जाता है जहाँ दूल्हे और उसके अभिभावक ने हस्ताक्षर किया और तब एक प्रमाण पत्र जारी किया गया है। द्वितीय पुजारी अर्थात् अ॰ सा॰ 4 ब्रज मोहन पांडे ने भी कथन किया कि उसने

दिनांक 16.12.1999 को वादी और प्रतिवादी का विवाह करवाया और उसने विवाह का प्रमाण पत्र भी दिया था जिसपर संजीव नयन कुमार और प्रीति कुमारी द्वारा हस्ताक्षर किया गया था और उनको इसकी प्रतियाँ दी गयी थी। किन्तु अपने प्रति-परीक्षण में, उसने कथन किया कि उसने मंदिर के न्यास की ओर से नियुक्ति पत्र नहीं पाया था और वह कोई कागजात नहीं दर्शा सकता है कि वह भीकमदास मंदिर का पुजारी है। प्रति-परीक्षण के पैरा 2 पर उसने कहा कि उसके पास मंदिर में सपन्न विवाहों का रजिस्टर नहीं है रजिस्टर ट्रस्टी रखते हैं। प्रति-परीक्षण के पैरा 3 पर उसने यह भी स्वीकार किया कि झूठा विवाह कराने के लिए उसके विरूद्ध पहले एक दांडिक मामला संस्थापित किया गया था और उसे दोषसिद्ध किया गया था। उसने यह कथन भी किया कि वह युवती के माता-पिता का नाम नहीं जानता है।

9. मंदिर में विवाह के संबंध में दूसरा गवाह स्वयं वादी है। मंदिर में विवाह का कोई अन्य गवाह नहीं है। वादी ने तथ्य सिद्ध करने का प्रयास किया है कि उसने लातेहार के पंजीकरण कार्यालय के समक्ष विवाह के लिए आवेदन किया था। अपने साक्ष्य में, जब उसका परीक्षण अ॰ सा॰ 7 के रूप में किया गया था, उसने कथन किया कि वह वर्ष 1995 से प्रतिवादी प्रीति कुमारी से प्रेम करता था और जब दोनों पक्ष के परिवार के सदस्यों को प्रेम प्रसंग की जानकारी हुई तब उन्होंने उन दोनों का विवाह करने से इंकार कर दिया, तब वह अंततः दिनांक 15.12.1999 को डालटेनगंज न्यायालय गए और नोटरी पब्लिक के समक्ष दिनांक 15.12.1999 को शपथ पत्र दिया, तब दिनांक 16.12.1999 को भीकमदास राम जानकी ठाकुरबाड़ी मंदिर में उन्होंने विवाह किया और साथ रहने लगे और दिनांक 19.12.1999 को उसकी माता, बहन और जीजाजी द्वारा उसकी 'बिदाई' कराकर उसे ले जाया गया किन्तु 15 दिन बाद जब वह अपनी पत्नी को लाने प्रतिवादी के घर गया, उन्होंने उसे वापस भेजने से इंकार कर दिया। तब उसने सामाजिक कार्यकर्ता की सहायता से उसे वापस लाने का अनेक प्रयास किया और अंततः उसने दिनांक 22.1.2000 को अपने ससुराल वालों के विरूद्ध दांडिक मामला दर्ज किया। तत्पश्चात् दिनांक 7.2.2000 को वह अपने जीजाजी के साथ आयी और दिनांक 16.2.2000 को उसने लातेहार में विवाह पंजीकृत करवाया। किन्तु पुनः दिनांक 2.6.2000 को प्रीति कुमारी का भाई प्रकाश दयाल, उसके जीजाजी पूर्णोद किशोर सिन्हा, विनोद श्रीवास्तव और उसकी बहन मीना श्रीवास्तव माँ की बीमारी के बहाना के आधार पर उसे वापस ले गए। तत्पश्चात् दो दिन बाद, दिनांक 4.6.2000 को, वह पुनः अपने ससुराल गया और अपनी पत्नी की 'बिदाई' के लिए कहा, जिससे उन्होंने इंकार कर दिया, तब उसने दिनांक 8.6.2000 को अपने अधिवक्ता के माध्यम से नोटिस जारी किया और तब दिनांक 17.6.2000 को दूसरी नोटिस जारी की गयी थी। तब अंततः उसने परिवाद केस सं॰ 356 वर्ष 2000 दाखिल किया और दिनांक 2.9.2000 को उसने प्रत्यास्थापन के लिए यह मामला दर्ज किया। वादी का विस्तारपूर्वक प्रति-परीक्षण किया गया था। अपने प्रति-परीक्षण में, उसने इंकार किया कि इस मामला को दाखिल किए जाने के पहले प्रीति कुमारी ने उसके विरूद्ध कूट रचना का मामला दाखिल किया था। अपने प्रति-परीक्षण में उसने यह भी स्वीकार किया कि उसके पिता ने दूसरा विवाह किया था और उसकी दूसरी माता का नाम श्रीमती शीला अम्बष्ठ है। अपने प्रति-परीक्षण के पैरा 7 पर उसने स्वीकार किया कि उसके 'नाना' और 'नानी' डालटेनगंज में रहते हैं। अपने प्रति परीक्षण में उसने यह भी स्वीकार किया कि भुवनेश्वर प्रसाद वर्मा उसकी माता का सगा भाई है और उसकी पत्नी का नाम मीरा वर्मा है और प्रीति दयाल मीरा वर्मा की छोटी बहन है। उसने यह भी स्वीकार किया कि दस्तावेजों में प्रीति दयाल का प्रमाण पत्र नहीं है बल्कि दस्तावेजों पर प्रीति कुमारी के नाम से हस्ताक्षरित किया गया है। उसने यह भी स्वीकार किया कि भुवनेश्वर प्रसाद वर्मा अपने जीवनकाल में उसकी देख-रेख किया करता था। अपने प्रति-परीक्षण के पैरा 14 में उसने यह भी स्वीकार किया कि दिनांक 16.12.1999 को भीकमदास मंदिर में उसका केवल एक भाई गौरव नारायण अम्बष्ठ विवाह में

उपस्थित और प्रीति कुमारी के परिवार का कोई सदस्य उपस्थित नहीं था। उसने पैरा 20-21 पर यह कथन किया कि राशन कार्ड, वोटरलिस्ट इत्यादि में उसने प्रीति कुमारी का नाम दर्ज करवाया था।

10. यह प्रतीत होता है कि अन्य गवाह अ० सा० 2 प्रदीप कुमार वर्मा ने कथन किया कि वह लातेहार में दिनांक 8.5.2000 को विवाह में शामिल हुआ था किन्तु अपने प्रति-परीक्षण के पैरा 3 पर उसने स्वीकार किया कि विवाह पक्षों द्वारा भरे गए फॉर्म के मुताबिक हुआ था। उसने कथन किया कि वह प्रीति कुमारी के पिता अथवा जीजाजी को भी नहीं जानता है।

11. अ० सा० 3 अविनाश कुमार सिन्हा, जिसने भी दावा किया कि लातेहार रजिस्ट्री कार्यालय में दिनांक 8.5.2000 को पक्षों के बीच विवाह में वह शामिल हुआ था, किन्तु कथन किया कि वह नहीं जानता है कि संजीव नयन का पिता जीवित है या नहीं और न ही वह उसके भाई या बहन को जानता है। वह युवती के माता-पिता का नाम भी नहीं बता सकता है। उसने पैरा-3 पर कथन किया कि वह नहीं कह सकता है कि विवाह के समय दूल्हे के माता-पिता उपस्थित था या नहीं। पैरा 6 पर उसने कथन किया कि उसने विवाह में कोई भूमिका नहीं निभायी थी। उसने पैरा 7 पर यह भी कथन किया कि वादी संजीव नयन टेलीफोन बूथ चलाता है और गवाह प्रदीप वर्मा, अ० सा० 2, उसके साथ उक्त बूथ में काम करता है।

12. अ० सा० 5 मनोहर कुमार ने भी कथन किया है कि वह विवाह में शामिल था किन्तु अपने प्रति परीक्षण में उसने स्वीकार किया कि वह मुंगेर जिला का निवासी है और वह उस न्यायालय को नहीं जानता था जिसमें मामला लंबित था और न ही दिनांक 8.5.2000 के पहले वह युवती से मिला था। उसे लड़की के नाम की जानकारी संजीव नयन द्वारा बताए जाने पर हुई। उसने वादी की प्रेरणा पर रजिस्टर में हस्ताक्षर किया था। उसने पैरा 4 पर यह भी स्वीकार किया कि उसे विवाह की निजी जानकारी नहीं है और वह इस बारे में कुछ भी नहीं कह सकता है।

13. अ० सा० 6, मनोज कुमार, जिसने दिनांक 8.5.2000 को विवाह में उपस्थित होने का दावा किया है, ने अपने प्रति-परीक्षण में कथन किया कि दिनांक 8.5.2000 को दोनों पक्षों में विवाह हुआ था और वे अविवाहित थे और वह नहीं जानता है कि संजीव नयन गया का रहने वाला है और प्रीति डालटेनगंज की निवासी है। उसने स्वीकार किया कि आवेदन में प्रीति का पता डालटेनगंज दिया हुआ था और लातेहार में उसका कोई संबंधी नहीं था। पैरा 5 पर उसने कथन किया कि वह नहीं कह सकता है कि प्रीति कुमारी ने उस दिन क्या पहनी था। पैरा 5 पर उसने स्वीकार किया कि उसने रजिस्टर पर हस्ताक्षर किया क्योंकि उसके भाई मनोहर ने उसे ऐसा करने को कहा था।

14. अ० सा० 8 शिव रतन उपाध्याय ने कथन कि दिनांक 15.12.1999 को संजीव नयन कुमार और प्रीति कुमारी आए और उसकी उपस्थिति में सिविल न्यायालय में शपथ पत्र पर हस्ताक्षर किया। उनका हस्ताक्षर वकील अखिलेश्वर प्रसाद द्वारा पहचाना गया था किन्तु, अपने प्रति-परीक्षण में उसने कथन किया कि शपथपत्र पर दी गयी तिथि 15.12.1994 है और वह अखिलेश्वर प्रसाद वकील का निवास स्थान नहीं जानता है। उसने पैरा 4 पर यह भी स्वीकार किया कि प्रीति कुमारी के प्रमाण पत्र पर लिप्त लेखन है।

15. अ० सा० 9 अशोक कुमार है जो टंकक है एवं उसने कहा है कि उसी ने शपथपत्र टंकित किया था।

अ० सा० 10 कालू राम, जो नोटरी है, शपथपत्र पर हस्ताक्षर किया हुआ बताया जाता है, किन्तु अपने प्रति-परीक्षण में उसने कथन किया कि हस्ताक्षर लातेहार में दिनांक 16.1.2000 को किया गया था। उसने यह कथन भी किया है कि चूँकि युवती का फोटो भिन्न था अत: फॉर्म में नयन बाबू द्वारा

दो फोटो लगाया गया था। उसने यह भी स्वीकार किया कि काटकर तिथि 19 से 16 की गयी थी और ऐसा दो बार काटा गया था।

16. अत: वादी के साक्ष्यों से प्रतीत होता है कि वादी प्रतिवादी को पहले से जानता था जैसा उसने स्वीकार किया है जब अ॰ सा॰ 7 के रूप में उसका परीक्षण किया गया था। चूँकि वह उसकी अपनी 'मामी' की छोटी बहन थी और चूँकि उसकी माता की मृत्यु हो गयी थी, वह अपने मामा अर्थात् प्रतिवादी के जीजा जी के साथ रहने आया था और बाद में प्रतिवादी के पिता की मृत्यु पर, उसकी देख-भाल उसके जीजाजी द्वारा की जाती थी और वादी उससे मुलाकात करता था और उसके जीजाजी की प्रेरणा पर डालटेनगंज महाविद्यालय में उसके प्रवेश के लिए अनेक फोटोग्राफ आदि वादी संजीव को दिए गए थे और यह प्रतीत होता है कि फोटोग्राफ उसके पास थे। वादी ने गवाहों को पेश किया है कि उसका विवाह भीकमदास जानकी मंदिर में संपन्न हुआ था किन्तु यद्यपि गवाह अ॰ सा॰ 1 और अ॰ सा॰ 4 सिद्ध करने में विफल रहे हैं कि 'कन्यादान' हुआ था चूँकि वादी के गवाहों ने स्वीकार किया कि प्रीति के परिवार का कोई सदस्य मंदिर में उपस्थित नहीं था और स्वीकृत रूप से कुछ अनजान व्यक्तियों ने कन्यादान किया था, बल्कि मंदिर में उसकी उपस्थिति तक संदेहास्पद है चूँकि किसी गवाह ने प्रीति कुमारी की शिनाख्त नहीं की है और न ही विवाह के पहले उससे मिले हैं। स्वीकृत तौर पर प्रतिवादी का नाम प्रीति कुमारी नहीं है बल्कि प्रीति दयाल, पुत्री जगदीश्वरी दयाल है और भीकमदास मंदिर द्वारा दिए गए तथाकथित विवाह प्रमाण पत्र में वादी द्वारा दाखिल दस्तावेजों में से किसी में प्रीति दयाल का हस्ताक्षर अनुपस्थित है जिस पर प्रीति कुमारी द्वारा हस्ताक्षर किया गया है और शपथपत्र में भी हस्ताक्षर प्रीति कुमारी का है और वादी के गवाह अ॰ सा॰ 8 शिव रतन उपाध्याय ने पैरा 4 पर स्वयं स्वीकार किया कि प्रीति कुमारी के दोनों प्रमाण पत्रों में लिप्त लेखन है और प्रदर्श 5 को नंगी आँखों से देखने पर प्रतीत होता है कि प्रीति कुमारी के नाम पर लिप्त लेखन है। विवाह के फॉर्म में भी जिसे प्रदर्श-9 के रूप में दाखिल किया गया है, फॉर्म पर सटा प्रीति कुमारी के दो भिन्न फोटोग्राफ है। प्रीति कुमारी का कोई प्रमाण पत्र नहीं है और इस प्रकार मेरे मत में वादी यह सिद्ध करने में विफल रहा कि दांपत्य संबंध के प्रत्यास्थापन का कोई अधिकार देते हुए वादी और प्रतिवादी प्रीति कुमारी के बीच कोई विवाह विधिक रूप से हुआ था।

17. विचारण न्यायालय ने विवाद्यकों सं॰ III और IV, जो निम्नलिखित है:–

III. क्या पक्षों के बीच विवाह दिनांक 16.12.1999 को संपन्न हुआ था और दिनांक 8.5.2000 को पंजीकृत किया गया था?

IV. क्या वादी याचीगण और विपक्षी पक्षकार विधि के तौर पर विवाहित युगल है?

पर विचार करते हुए पैरा 36 पर इस अंतिम निष्कर्ष पर आया कि वादी पक्षों के बीच विवाह को सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है और निष्कर्ष दिया कि पक्षों के बीच दिनांक 16.12.1999 को कोई विवाह संपन्न नहीं हुआ था और न ही दिनांक 8.5.2000 को उसे पंजीकृत किया गया था और न ही उन्हें विधिक रूप से विवाहित युगल कहा जा सकता है। मैं ऊपर चर्चा किए गए निष्कर्ष में छेड़छाड़ करने का कोई आधार नहीं पाता हूँ। विचारण न्यायालय ने विवाद्यक सं॰ I और II का भी विनिश्चय किया जो निम्नलिखित है:–

I. क्या दांपत्य अधिकारों की प्रत्यास्थापना की याचिका पोषणीय है?

II. क्या वैवाहिक वाद दाखिल करने हेतु वादी के पास वैध वाद हेतुक है?"

और निष्कर्ष पर आया कि प्रत्यास्थापना का आवेदन पोषणीय नहीं है और न ही प्रत्यास्थापना का मामला दाखिल करने के लिए वादी के पास वैध वाद हेतुक है।

18. मैं इस अपील में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ, तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है।

माननीय ज्ञान सुधा मिश्रा, मुख्य न्यायाधीश एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

भारत कोकिंग कोल लि॰

बनाम

झारखंड राज्य, वाणिज्य आयुक्त के माध्यम से एवं अन्य

WP(T) No. 1216 of 2010. Decided on 21st April, 2010.

झारखंड वैल्यू ऐडेड टैक्स अधिनियम, 2005—धारा 46—डी॰ सी॰ सी॰ टी॰ द्वारा पारित आदेश पर बैंक खाता की कुर्की–याची सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रम है–वैल्यूऐडेड टैक्स हेतु मांगी गयी राशि का 50% याची द्वारा पहले ही भुगतान किया जा चुका है–याची के बैंक खाते की कुर्की का कोई कारण नहीं–कुर्की आदेश अभिखंडित–लंबित अपील चार सप्ताह के भीतर सी॰ सी॰ टी॰ (अपील) द्वारा विनिश्चित की जाएगी। (पैरा 4 से 6)

अधिवक्तागण.–M/s Binod Poddar, Vikas Poddar, For the Petitioner; Mr. Rajesh Shanker, For the Respondents.

आदेश

इसमें याची ने उस आदेश के अभिखंडन के लिए इस न्यायालय की शरण ली है जिसके द्वारा याची के बैंक खाते को प्रत्यर्थी सं॰ 4, वाणिज्य-कर के उप-कमिश्नर द्वारा झारखंड वैल्यू ऐडेड टैक्स अधिनियम, 2005 के अधीन कुर्क करने का आदेश दिया गया था। याची का मामला यह है कि वाणिज्य-कर के उप-कमिश्नर ने याची, जो एक सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रम है, के बैंक खाता को 1,46,44,485/- रुपयों के वैल्यू ऐडेड टैक्स 2005 का भुगतान नहीं करने के लिए, जो वित्तीय वर्ष 2007-08 में प्रोद्भूत हुआ था, कुर्क करने का आदेश दिया है। किन्तु याची ने इसे चुनौती दी और निवेदन किया कि राशि विवादित है और यद्यपि प्रत्यर्थी-प्राधिकारी ने वित्तीय वर्ष 2007-8 के लिए 2,65,27,469/-रुपये की राशि की मांग उठायी थी जिसमें से 1,18,82,984/-करोड़ रुपयों का भुगतान याची संगठन पहले ही कर चुका है, प्रत्यर्थी-प्राधिकारी ने बैलेन्स राशि 1,46,44,485/-रुपयों का भुगतान नहीं किए जाने के कारण याची-संगठन के बैंक खाता कुर्क कर दिया है और चूँकि यह राशि भी पहले ही जमा की जा चुकी है, प्रत्यर्थी को याची का बैंक खाता कुर्क करने का आदेश पारित नहीं करना चाहिए था। इस आदेश को अभिखंडित करने हेतु परमादेश जारी करना इप्सित किया गया था।

2. जब मामला हमारे पास विचारार्थ आया, प्रत्यर्थीगण की ओर से यह इंगित किया गया था कि झारखंड वैल्यू ऐडेड टैक्स अधिनियम, 2005 की धारा 46 के अधीन अपील करने का प्रावधान है और यह निवेदन किया गया था कि विवादित राशि के न्यायनिर्णयन हेतु अपीलीय फोरम के पास जाने के बजाय याची ने कुर्की के आदेश को अभिखंडित करने के लिए सीधा इस न्यायालय के पास आया है।

3. इस न्यायालय ने अपील दाखिल करने के लिए अपीलीय फोरम के पास जाने के लिए याची को सक्षम बनाने के लिए दिनांक 31.3.2010 के आदेश द्वारा 21 अप्रैल, 2010 तक अंतरिम सुरक्षा

प्रदान किया था और प्रत्यर्थी सं॰ 3 संयुक्त कमिश्नर, वाणिज्य-कर (अपील), धनबाद डिविजन, धनबाद को मामला शीघ्रतापूर्वक विनिश्चित करने का निर्देश दिया था। इसी बीच यह निर्देश भी दिया गया था कि दिनांक 21.4.2010 तक याची को बैंक खाता कुर्क करने हेतु आदेश प्रभावशील नहीं बनाया जाएगा।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अब सूचित किया गया है कि यद्यपि अपील अभी भी लंबित है, दो सप्ताह के भीतर इसको विनिश्चित किए जाने की संभावना है। अत: इस न्यायालय को वाणिज्य-कर उप-कमिश्नर द्वारा जारी कुर्की आदेश अभिखंडित कर देना चाहिए चूँकि विवादित राशि की संवीक्षा और न्यायनिर्णयण अभी भी किया जाना है।

5. पक्षों के अधिवक्ता को सुनने पर, हमने इस तथ्य को ध्यान में लिया है कि यद्यपि प्रत्यर्थी-प्राधिकारीगण ने याची सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रम से 2,65,27,469/-करोड़ रुपयों की मांग उठायी है, राशि का कम से कम 50%, जैसा इसमें ऊपर प्रत्यर्थी द्वारा नोट किया गया है जो एक करोड़ रुपये से अधिक है, और याची द्वारा वित्तीय वर्ष 2007-08 के लिए वैल्यू ऐडेड टैक्स के तौर पर जिसे उक्त वित्तीय वर्ष के लिए प्रत्यर्थी द्वारा विवादित किया गया है पर पहले ही भुगतान किया जा चुका है। किन्तु याची के अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि विवाद पूर्वोक्त वित्तीय वर्ष के परे भी जाता है।

6. चाहे जो भी हो, तथ्य बना रहता है कि आरंभ में 2 करोड़ रुपयों से अधिक के कुल मांग में से एक करोड़ रुपये से अधिक राशि के लिए वैल्यू ऐडेड टैक्स का भुगतान नहीं किए जाने पर विवाद उठाया गया है और चूँकि याची ने कम से कम 50% से अधिक राशि का पहले ही भुगतान कर दिया है, हम कोई कारण नहीं पाते हैं कि क्यों बैंक खाता कुर्क किया जाना चाहिए। अत: हम याची के बैंक खाता का कुर्की आदेश इन शर्तों पर अभिखंडित करते हैं कि अपील प्रत्यर्थी सं॰ 3 वाणिज्य-कर संयुक्त कमिश्नर (अपील), धनबाद डिविजन, धनबाद द्वारा आदेश की तिथि से चार सप्ताह की अवधि के भीतर निपटाया जाए और तत्पश्चात् यदि वैल्यू ऐडेड टैक्स के तौर पर प्रत्यर्थीगण को याची द्वारा भुगतान योग्य कोई राशि अभिनिर्धारित की जाती है और इसका भुगतान नहीं किया गया है, बैंक खाता की कुर्की सहित अन्य उपायों के लिए प्रत्यर्थीगण स्वतंत्र होंगे।

7. तद्नुसार, रिट याचिका निपटायी गयी मानी जाती है।

माननीय सुशील हरकौली, न्यायमूर्ति

प्रणब कुमार अम्बष्टा एवं अन्य (2056, 2083, 2091-2093, 2095, 2119, 2284, 2287 में)

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य (सभी में)

WP(S) Nos. 2095, 2056, 2083, 2091-2093, 2119, 2284, 2287 of 2002.

Decided on 30th April, 2010.

श्रम एवं औद्योगिक विधि–सेवा समाप्ति–वर्ष 1999 से दैनिक मजदूरी नियोजन के संबंध में याची की सेवा समाप्त कर दी गयी थी–पूर्व में खंडपीठ ने अभिनिर्धारित किया था कि आयु शिथिलीकरण प्रदान करते हुए नियुक्ति हेतु दैनिक मजदूरों पर विचार करने के लिए दिया गया निर्देश केवल उन दैनिक मजदूरों पर लागू होगा जो अभी भी राज्य सरकार की सेवा में कार्यरत

है, न कि उन पर जिनकी छँटनी कर दी गयी है अथवा जो सेवा में नहीं हैं–रिट याचिका दाखिल करने के ढाई वर्ष पहले ही याची की सेवा समाप्त कर दिए जाने के चलते वह निर्देशों में से किसी द्वारा आच्छादित नहीं होता है–नियमिती करण का प्रश्न उद्भूत ही नहीं होता है–याचिका खारिज। (पैरा 5, 6, 7, 11, 12 और 13)

निर्णयज विधि.–CWJC No. 3031/1999(R)—Distinguished; LPA No. 649/2002—Relied upon; (2000)9 SCC 416; (2007) 5 SCC 317; 2007 AIR SCW 6904; 2006(1) Supreme 640—Referred to.

अधिवक्तागण.–M/s M.K. Verma, M.M. Sharma, Lakhan Sharma, For the Petitioner; Mr. S.C.-II, For the Respondents.

निर्णय

रिट याचिका सं॰ 2095 वर्ष 2002 के याची को वर्ष 1984 में दैनिक मजदूर के रूप में नियुक्त किया गया था और वह सितम्बर 1999 तक सेवा में बना रहा जब उसकी सेवा समाप्त कर दी गयी थी और वह तब से कार्यरत नहीं है। यह रिट याचिका वर्ष 2002 में यह दावा करते हुए दाखिल की गयी थी कि उसे दैनिक मजदूर के रूप में रखे रहना चाहिए और नियमितीकरण हेतु उस पर विचार करना चाहिए।

2. याची ने सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 3031 वर्ष 1999 (आर) में पारित दिनांक 7.6.2001 के निर्णय पर विश्वास किया है जिसकी प्रति मुख्य रिट याचिका में परिशिष्ट-5 के रूप में संलग्न की गयी है। उस निर्णय द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश ने प्रत्यर्थी प्राधिकारी को उस रिट याची की सेवा आमेलित/नियमित करने का निर्देश दिया बशर्ते वह अपनी नियुक्ति पत्र के निबंधनों के अनुसार अभी कार्यरत हो। (जोर दिया गया)

3. विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 7.6.2001 के उक्त निर्णय में दो जगह दर्ज किया था कि उस मामले का याची दिनांक 15.5.1982 के प्रभाव से दैनिक मजदूरी के आधार पर नियुक्त किए जाने पर तृतीय वर्ग पद पर अभी भी कार्यरत था।

4. आदेश को एल॰ पी॰ ए॰ में मान्य ठहराया गया था और एस॰ एल॰ पी॰ को अकारण आदेश द्वारा सर्वोच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया था।

5. वर्तमान मुख्य मामले के तथ्य सुभिन्न है। वर्तमान मामले में, याची के सेवा स्वीकृत रूप से वर्ष 1999 से उसकी दैनिक मजदूरी नियोजन के संबंध में समाप्त कर दी गयी है जिसका अर्थ है कि वर्ष 1999 अवधि के लिए जब उसकी सेवा समाप्त कर दी गयी थी और वर्ष 2002, जब उसने रिट याचिका दाखिल की, के लिए ढिलाई स्पष्ट करने के अतिरिक्त उसे विधिक आधार भी दर्शाना होगा जिसपर दैनिक मजदूर के रूप में उसकी सेवा समाप्ति को अभिखंडित किया जा सकता था और उसे दैनिक मजदूर के रूप में पुनर्बहाल किया जा सकता था। केवल तत्पश्चात ही उसकी नियमितीकरण के प्रश्न का परीक्षण किया जा सकता था।

6. वस्तुत: भिन्न भिन्न अवमान मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश से उद्भूत होते दोनों 658 वर्ष 2002 से संबंधित एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 649 वर्ष 2002 में इस न्यायालय की खंडपीठ ने दिनांक 24.1.2005 के निर्णय द्वारा यह स्पष्टत: अभिनिर्धारित किया है कि आयु शिथिलीकरण प्रदान करते हुए नियुक्ति हेतु दैनिक मजदूरों पर विचार करने के लिए दिया गया निर्देश केवल उन्हीं दैनिक मजदूरों पर लागू होगा जो राज्य सरकार में अभी भी कार्यरत है, न कि उनपर जिनकी छंटनी कर दी गयी है/सेवा समाप्त कर दी गयी है।

7. अत: रिट याचिका दाखिल करने के ढाई वर्ष पहले ही याची की सेवा समाप्त कर दिए जाने के चलते उसे किसी निर्णय में दिए गए निर्देशों में से किसी के द्वारा आच्छादित नहीं कहा जा सकता है बल्कि इसके विपरीत ऐसे सेवामुक्त कर्मचारी पूर्व निर्णयों में काढ़े गए अपवाद द्वारा स्पष्टत: आच्छादित होते है जैसा इस आदेश में ऊपर उपदर्शित किया गया है।

8. अन्य संबंधित रिट याचिकाओं को याचीगण वर्तमान याची की भाँति संस्थित है क्योंकि उन सबों की सेवा उनकी अपनी अपनी रिट याचिकाओं के दाखिल किए जाने के पहले समाप्त कर दी गयी है।

9. याची के विद्वान अधिवक्ता ने **भारत संघ एवं अन्य बनाम देवीका गुहा एवं अन्य, (2000)9 SCC 416** में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि याची के विद्वान अधिवक्ता विधि के प्रति पूरी जानकारी रखने में विफल रहे है और उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय के उलट दिए गए निर्णय को उद्‌भुत किया है। **पोस्ट मास्टर जेनरल कोलकाता बनाम टूटू दास (दत्ता), (2007)5 SCC 317** में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को देखा जा सकता है जिसमें **देवीका गुहा (ऊपर)** मामले को उलट दिया गया।

10. यू॰ पी॰ राज्य विद्युत बोर्ड बनाम पूरण चन्द्र पांडेय के 2007 AIR SCW 6904 में प्रकाशित सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय एवं **कर्नाटक राज्य बनाम सी॰ ललिता, 2006 (1) SC 640** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी विश्वास किया गया है। उक्त उद्‌धृत निर्णय विधि की इस प्रतिपादना को निर्दिष्ट करते हैं कि समस्थित कर्मचारियों के बीच भिन्नता नहीं की जानी चाहिए।

11. जैसा ऊपर उल्लिखित किया गया है, यह देखते हुए कि रिट याचिकाओं के याचीगण उस रिट याचिका के याची के साथ संस्थित नहीं है जिन्हें विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अनुज्ञात किया गया था क्योंकि वह अभी भी सेवारत था जबकि इसमें समस्त याचीगण की सेवा रिट याचिकाओं के दाखिल किए जाने के काफी पहले समाप्त कर दी गयी थी।

12. अंतर्ग्रस्त ढिलाई के पहलू के अतिरिक्त कोई मजबूत विधिक आधार नहीं दर्शाया गया है जिसके आधार पर दैनिक मजदूर के रूप में इन समस्त याचीगण की सेवा समाप्ति अभिखंडित की जा सकती है और उन्हें दैनिक मजदूर के रूप में पुनर्बहाल किया जा सकता है। अत: उनकी नियमितीकरण पर विचार करने के बारे में प्रश्न उद्‌भूत ही नहीं होता है।

13. उक्त बताए गए कारणों से, ये सभी रिट याचिकाएं विफल होती है और इन्हें खारिज किया जाता है। व्यय का आदेश नहीं।

माननीय अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति

मेसर्स शंकर वायर प्रोडक्ट्स इंडस्ट्रीज, देवघर

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) No. 3928 of 2006. Decided on 26th April, 2010.

बाट एवं माप मानक प्रवर्तन अधिनियम, 1985—धारा 63—उस मान से अधिक मान के बाट एवं माप सामग्री को अभिकथित निर्माण के लिए नोटिस निर्गत, जिसके लिए उसे अनुज्ञप्ति प्रदान की गई थी–याची को निर्यात के प्रयोजन से उच्चतर मान के बाट एवं माप सामग्री के निर्माण की अनुज्ञा/अनुज्ञप्ति मंजूर किया गया था–आक्षेपित नोटिस तथ्यों को सत्यापित किए बगैर निर्गत किया गया था–इसके अतिरिक्त, आक्षेपित नोटिस को नियंत्रक, लीगल मेट्रोलॉजी द्वारा निर्गत नहीं किया जा सकता था क्योंकि वह स्वयं ही परिसर के निरीक्षण के एक पक्षकार थे–आक्षेपित नोटिस एवं पारिणामिक आदेश अभिखंडित–याचिका अनुज्ञात।
(पैरा 6 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. Indrajit Sinha, For the Petitioner; Mr. Rajesh Kumar Mahtha, For the Respondent Nos. 1 to 7; Mr. Manish Kumar, For the Respondent Nos. 8 to 10.

आदेश

पक्षों को सुना एवं उनकी सहमति से यह रिट याचिका इसी चरण पर निस्तारित की जा रही है।

2. याची, जो बाट एवं माप सामग्रियों का निर्माता है, दिनांक 6.6.2006 के परिशिष्ट-5 में अंतर्विष्ट नोटिस को जो उसे जारी की गयी थी, चुनौती देते हुए यह रिट याचिका दाखिल की है, जिसके द्वारा उससे 15 दिनों के भीतर कारण बताने को कहा गया था कि बाट एवं माप सामग्रियों के निर्माण का उसका लाईसेन्स क्यों नहीं रद्द कर दिया जाय, क्योंकि 22.5.2006 को उसके परिसर के निरीक्षण के दौरान, उसे उस बाट एवं माप सामग्रियों से उच्चतर मान के सामग्रियों का निर्माण करते हुए पाया गया था जिसके लिए उसे अनुज्ञप्ति प्रदान की गयी थी, जो कि अनुज्ञप्ति की शर्तों का उल्लंघन है।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री इन्द्रजीत सिन्हा निवेदन करते हैं कि दिनांक 22.5.2006 का अभिकथित निरीक्षण नियंत्रक, लीगल मेट्रोलॉजी, झारखंड सरकार की उपस्थिति में किया गया था एवं इसलिए, वे निरीक्षण से जुड़े होने के कारण अनुज्ञप्ति के रद्दकरण के लिए याची को कारण बताओ नोटिस निर्गत नहीं कर सकते थे, क्योंकि वे मामले में साक्षी बन गए थे। उन्होंने आगे निवेदन किया कि कारण बताओ नोटिस (परिशिष्ट-5) में यह वर्णन किया गया है कि याची को अविधिमान्य निर्माण में संलिप्त एवं साथ ही साथ उन बाटों एवं माप सामग्रियों के अवैध व्यापार करते हुए पाया गया था, परन्तु निरीक्षण रिपोर्ट जिसे परिशिष्ट-4 के तौर पर संलग्न किया गया है, यह नहीं दर्शाता है कि ऐसा कोई अभिकथन है कि याची उच्चतर मान के बाट एवं माप सामग्रियों की आपूर्त्ति का कारोबार करके या बेचकर अवैध व्यापार करता हुआ पाया गया था। वे आगे निवेदन करते हैं कि उच्चतर मान के बाट एवं माप सामग्रियों के निर्माण के क्रम में 500 Kg जो 100 Kg से अधिक है के लिए याची को दिनांक 4 मई, 2006 को उपभोक्ता मंत्रालय, खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण, भारत सरकार द्वारा एक अधिसूचना में अंतर्विष्ट आदेश निर्गत करके केन्द्र सरकार द्वारा अनुज्ञा/अनुज्ञप्ति मंजूर की गई थी। तद्नुसार, वह निवेदन करते हैं कि न तो वह बिना किसी वैध अनुज्ञप्ति के बाट एवं माप सामग्रियों का अवैध निर्माण कर रहा था और न ही वह केन्द्र सरकार द्वारा निर्गत अनुज्ञा/अनुज्ञप्ति का या अनुज्ञप्ति के निबन्धनों में से किसी के उल्लंघन में देश के भीतर उक्त बाट एवं माप सामग्रियों का अवैध कारोबार कर रहा था।

4. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रति शपथपत्र में किए गए कथनों पर विशेषकर पैराग्राफ सं॰ 10 से 13 तक पर भरेसा करते हुए निवेदन करते हैं कि निरीक्षण के दौरान याची को उच्चतर मान के बाटों एवं माप सामग्रियों की आपूर्त्ति का कारोबार करते हुए या बेचते हुए पाया गया था, जिसके लिए वह प्राधिकृत नहीं था, क्योंकि उच्चतर मानों के बाटों एवं माप सामग्रियों के निर्माण के लिए अनुज्ञा/अनुज्ञप्ति मात्र निर्यात के उद्देश्य से मंजूर की गयी थी न कि देश के भीतर उन वस्तुओं के विक्रय के लिए।

5. प्रति शपथपत्र में किए गए कथन बाट एवं माप सामग्रियों के निरीक्षक की निरीक्षण रिपोर्ट के प्रतिकूल हैं जो परिशिष्ट 4 में अंतर्विष्ट है।

6. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने एवं पक्षों के प्रासंगिक अभिवाकों एवं साथ ही साथ रिट याचिका के साथ संलग्न दस्तावेजों का अवलोकन करने के उपरांत, मैं पाता हूँ कि दिनांक 22.5.2006 को निरीक्षण रिपोर्ट में कहीं भी यह वर्णन नहीं किया गया है कि याची को उच्चतर मान के वाट एवं माप सामग्रियों को बेचते या आपूर्त्ति करते या कारोबार करते पाया गया था एवं इसलिए, उस सम्बन्ध

में किया गया अभिकथन, परिशिष्ट 5 में अंतर्विष्ट एक नोटिस निरीक्षण रिपोर्ट के अनुरूप नहीं हैं। यह भी प्रतीत होता है कि निरीक्षण रिपोर्ट में, यह वर्णन किया गया है कि निरीक्षण के दौरान, याची उच्चतर मान के वाट एवं माप सामग्री के निर्माण को प्राधिकृत करने वाला कोई दस्तावेज पेश नहीं कर सका था जबकि परिशिष्ट 13, उपभोक्ता मंत्रालय, खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण, भारत सरकार द्वारा निर्गत दिनांक 4 मई, 2006 की एक अधिसूचना से यह प्रतीत होता है कि याची को निर्यात के प्रयोजन से उच्चतर मान के वाट एवं माप सामग्रियों का निर्माण करने की अनुज्ञा/अनुज्ञप्ति मंजूर की गई थी।

7. इसलिए, ऐसी एक स्थिति में, मैं इस दृष्टिकोण का हूँ कि परिशिष्ट 5 में यथा अंतर्विष्ट आक्षेपित नोटिस तथ्यों का सत्यापित किए बगैर निर्गत की गई है। आगे, आक्षेपित नोटिस नियंत्रक, लीगल मेट्रोलॉजी, झारखंड सरकार द्वारा निर्गत नहीं की जा सकती थी, क्योंकि निरीक्षण रिपोर्ट एवं साथ ही आक्षेपित नोटिस के अनुसार, वे स्वयं ही परिसर के निरीक्षण के एक पक्षकार थे।

8. ऊपर कथित कारणों से, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है। परिशिष्ट 5 में यथा अंतर्विष्ट आक्षेपित नोटिस एवं साथ ही इसका पारिणामिक आदेश एतद् द्वारा अभिखंडित किए जाते हैं। लेकिन, सम्बन्धित प्रत्यर्थीगण को यह छूट दी जाती है कि अगर वे याची की अनुज्ञप्ति के रद्दकरण के लिए उसके विरूद्ध कोई कार्रवाई करना चाहते हैं, तो वे नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन करने के उपरांत विधि के अनुरूप कार्यवाही कर सकते हैं।

9. उक्त सम्प्रेक्षणों एवं निर्देशों के साथ यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

शिव शंकर डे

बनाम

दामोदर राम

W.P. (C) No. 2543 of 2009. Decided on 27th April, 2010.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908–आदेश VIII, नियम 1–विलम्ब के आधार पर लिखित कथन का अस्वीकरण–आदेश VIII, नियम 1 की प्रकृति आज्ञापक नहीं है अपितु यह प्रक्रियात्मक विधि है–न्यायालय को एक लिखित कथन दाखिल करने की प्रार्थना अस्वीकार करते समय अनिवार्य रुप से पक्षकार की पृष्ठभूमि, सामाजिक स्थिति और पक्षकार के साथ जुड़ी असुविधा को ध्यान में रखना है–आक्षेपित आदेश निरस्त–याची द्वारा लिखित कथन को 500 रुपये के व्यय के साथ अभिलेख पर लिया जाय। (पैरा 2 से 4)

निर्णयज विधि.–(2005) 2 SCC 480; (2005) 6 SCC 344—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mrs. Vandana Singh, For the Petitioner; M/s N. K. Sahani, Gouri Devi, For the Respondent.

आदेश

अभिधान वाद सं॰ 23 वर्ष 2007 में विद्वान सब-जज 1, बोकारो द्वारा पारित 19 फरवरी, 2009 के आदेश के विरुद्ध, भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान रिट याचिका

दाखिल की गई है जिसके द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VIII, नियम 1 के अधीन वर्तमान याची (मूल प्रतिवादी) द्वारा दाखिल लिखित कथन को विचारण न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया गया था क्योंकि यह कालबाधित है।

2. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनकर और मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखते हुए मैं निम्नांकित तथ्यों एवं कारणों से अभिधान वाद सं॰ 23 वर्ष 2007 में विद्वान सब-जज 1, बोकारो द्वारा पारित 19 फरवरी 2009 के आदेश को एतद द्वारा निरस्त एवं अपास्त करता हूँ:–

(i) मामले के तथ्यों से यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी, जो मूल वादी हैं, ने विद्वान सब-जज 1, बोकारो के न्यायालय में अभिधान वाद सं० 23 वर्ष 2007 संस्थित किया है और वर्तमान याची मूल प्रतिवादी है।

(ii) यह प्रतीत होता है कि मूल प्रतिवादी ने पूर्वोक्त वाद में 22 नवम्बर 2007 को विचारण न्यायालय के समक्ष अपनी उपस्थिति दर्ज करायी थी और तत्पश्चात्, 28 जनवारी 2008 को विचारण न्यायालय के समक्ष लिखित कथन दाखिल किया था।

(iii) यह प्रतीत होता है कि लिखित कथन स्वीकार नहीं किया गया है क्योंकि यह 90 दिनों से आगे की अवधि का है।

(iv) विचारण न्यायालय द्वारा इसे ध्यान में रखे जाने की आवश्यकता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता का प्रावधान, विशेषकर इसके आदेश VIII नियम 1 का प्रावधान आज्ञापक प्रकृति का नहीं है वल्कि यह प्रक्रियात्मक विधि है। न्यायालय को लिखित कथन दाखिल करने की प्रार्थना को अस्वीकार करते समय पक्षकार की पृष्ठभूमि, सामाजिक स्थिति और पक्षकार से जुड़ी असुविधा को ध्यान में रखना चाहिये था। इस झारखण्ड राज्य में लोग दूरस्थ स्थान से आते है। कभी–कभी उन्हें प्रक्रिया की जानकारी ही नहीं होती है। ऐसा होता है कि विधि एवं उसकी प्रक्रिया को न जानने के कारण उन्हें कुछ दिनों का बिलम्ब हो जाता है। (2005) 2 S.C.C. 480 में यथा रिपोर्ट किये गये कैलाश बनाम ननकू एवं अन्य के मामले, विशेषकर इसके पैरा संख्या 28 एवं 46 (iv) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जो अभिनिर्धारित किया गया है वह निम्नांकित रुप से पठित है:

'28. प्रक्रिया के सारे नियम न्याय की सहायता के लिए होते है। प्रक्रियात्मक विधि के रचयिता द्वारा प्रयुक्त भाषा उदार या कठोर हो सकती है, परन्तु यह तथ्य शेष रहता है कि न्याय के उद्देश्य को बढ़ाना प्रक्रिया को विहित करने का उद्देश्य होता है। प्रतिपक्षीय प्रणाली में, किसी भी पक्ष को न्याय प्रदान करने की प्रक्रिया में भाग लेने के अवसर से वंचित नहीं किया जाना चाहिऐ। जबतक कि संविधि की स्पष्ट एवं विनिर्दिष्ट भाषा द्वारा बाध्य न कर दिया जाय, सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों या किसी अन्य प्रक्रियात्मक अधिनियमन के प्रावधानों का अर्थान्वयन इस प्रकार नहीं करना चाहिऐ जिससे कि न्याय के उद्येश्यों को पूरा करने के लिए असाधारण परिस्थितियों का सामना करने में न्यायालय असहाय बन जाय। सुशील कुमार सेन बनाम बिहार राज्य में न्यायमूर्त्ति कृष्ण अैयर द्वारा किये गये संपरीक्षण समीचीन है (S.C.C. पृष्ठ 777, पैरा 5-6)

'कानून के हाथों न्याय का हनन होना एक न्यायाधीश के विवेक को विचलित करता है और विधि सुधारक से एक उत्तेजित प्रश्न को इंगित करता है।

कुछ प्रणालियों में प्रक्रियात्मक विधि इतने अधिक प्रभावी है कि यह तात्विक अधिकारों एवं तात्विक न्यायों को निःशक्त बना देती है। यह मानवीय नियम है कि प्रक्रिया विधिक न्याय की अनुचर होनी चाहिये न कि मालकिन, न्यायाधीशों में एक अवशिष्ट शक्ति निहित करने पर विचार किये जाने को बाध्य करती है जिससे कि

न्याय के अनुसार कार्य किया जा सके ताकि पूर्ण रुप से असमतामूलक परिणाम से बचा जा सके। .... न्यायशास्त्र का लक्ष्य न्याय है जो सामान रुप से प्रक्रियात्मक और साथ□साथ तात्विक होना है।

46 (iv) आदेश 8, नियम 1 सिविल प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत लिखित कथन दाखिल करने के लिए समय तालिका का प्रावधान करने का उद्येश्य सुनवाई में तेजी लाना है, इसको अवरुद्ध करना नहीं है। यह प्रावधान प्रतिवादी पर एक निर्योग्यता अधिरोपित करता है। यह समय बढ़ाने में न्यायालय की शक्ति पर एक प्रतिबन्ध नहीं लगाता है। यद्यपि नियम 1, आदेश 8 सिविल प्रक्रिया संहिता के परन्तुक की भाषा नकारात्मक रुप में लिपिबद्ध है, यह अननुपालन के कारण सामने आने वाले किसी दाण्डिक परिणाम को विनिर्दिष्ट नहीं करती। इस प्रावधान को प्रक्रियात्मक विधि के क्षेत्र में होने के कारण इसे निर्देशात्मक अभिनिर्धारित करना होगा और आज्ञापक नहीं। आदेश 8, नियम 1 सिविल प्रक्रिया संहिता द्वारा प्रावधान की गई समय तालिका से आगे जाकर लिखित कथन दाखिल करने के लिए समय का विस्तार करने में न्यायालय का शक्ति पूर्ण रुप से समाप्त नहीं कर दी गई है।' (बल प्रदान किया गया है।)

(v) (2005) 6 S.C.C. 344 में यथा रिपोर्ट किये गये सालेम अधिवक्ता संघ, तमिलनाडू बनाम भारत संघ के मामले, विशेषकर इसके पैरा सं० 20 एवं 21 में जो माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है वह निम्नांकित रुप से है:

'20 आदेश 8, नियम 1 में 'होगा' का इस्तेमाल अपने□आप में यह अभिनिर्धारित करने के लिए निश्चायक नहीं है कि यह प्रावधान आज्ञापक है या निर्देशात्मक। हमें उस उद्येश्य को अभिनिश्चित करना होगा जिसको इस प्रावधान द्वारा पूरा किया जाना आवश्यक है और इसकी रचना एवं संदर्भ को अभिनिश्चित करना होगा जिसमें यह अधिनियमित किया गया है। 'होगा' शब्द का इस्तेमाल सामान्य रुप से प्रावधान के आज्ञापक प्रकृति का संकेतक होता है परन्तु उस संदर्भ को ध्यान में रखते हुए जिसमें इसका इस्तेमाल किया गया है या विधायिका के आशय को ध्यान में रखते हुए इसका अर्थान्वयन निर्देशात्मक के तौर पर किया जा सकता है। प्रश्नाधीन नियम को न्याय के उद्येश्य को आगे बढ़ाना है और इसको निष्फल करना नहीं। न्याय के उद्येश्य को आगे बढ़ाने के लिए प्रक्रिया के नियम बनाये जाते है, न कि इसको निष्पफल करने के लिए। नियम या प्रक्रिया के वैसे अर्थान्वयन को वरीयता देनी होगी जो न्याय को प्रोत्साहित करते है और इसके हनन को रोकते है। प्रक्रिया के नियम न्याय के अनुचर है इसके मालिक नहीं। वर्तमान संदर्भ में कठोर व्याख्या करने से न्याय का हनन होगा।

21. इस प्रावधान का अर्थान्वयन करने में आदेश 8, नियम 10 से भी समर्थन मिल सकता है जो प्रावधान करता है कि जब कोई पक्ष, जिसके लिए नियम 1 या नियम 9 के अधीन एक लिखित कथन दाखिल करना आवश्यक है, न्यायालय द्वारा अनुमान्य या निर्धारित समय के भीतर इसे प्रस्तुत करने में विफल हो जाता है, न्यायालय उसके विरुद्व निर्णय उच्चारित करेगा या वाद के सम्बन्ध में कोई ऐसा आदेश करेगा जो वो उपयुक्त समझता हो। इस प्रावधान के अधीन लिखित कथन दाखिल करने में विफल होने पर न्यायालय को प्रतिवादी के विरुद्ध निर्णय सुनाने या वाद के सम्बन्ध में कोई ऐसा आदेश करने का विवेकाधिकार दिया गया है जिसे वे उपयुक्त समझे। प्रावधान के संदर्भ में, 'करेगा' शब्द के इस्तेमाल के बावजूद, लिखित कथन दाखिल न किये जाने के स्थिति में भी न्यायालय को प्रतिवादी के विरुद्ध निर्णय सुनाने या न सुनाने और इसके स्थान पर ऐसा आदेश पारित करने का विवेकाधिकार दिया गया है जिसे वह उपयुक्त समझे। आदेश 8, नियम 1 और नियम 10 के प्रावधान का अर्थान्वयन करने में सामंजस्यपूर्ण अर्थान्वयन के सिद्धान्त को लागू करने की आवश्यकता है। इसका प्रभाव यह होगा कि नियम 10, आदेश 8 के अधीन आदेश 8 नियम 1 में प्रावधान की गई 90 दिनों की अवधि के गुजर जाने के उपरान्त

ही न्यायालय को अपने विवेकाधिकार में प्रतिवादी को लिखित कथन दाखिल करने की अनुमति देने की शक्ति होगी। आदेश 8 नियम 10 में ऐसा कोई निर्बन्धन नहीं है कि 90 दिनों के बीत जाने पर अतिरिक्त समय प्रदान नहीं किया जा सकता। न्यायालय को वाद के सम्बन्ध में ऐसा आदेश करने की व्यापक शक्ति है जिसे वह उपयुक्त समझे। अतएव यह स्पष्ट है कि लिखित कथन दाखिल करने के लिए 90 दिनों की उपरी सीमा का प्रावधान करनेवाला आदेश 8 नियम 1 का प्रावधान निर्देशात्मक है। ऐसा कहकर हम यह स्पष्ट कर देना चाहते है कि लिखित कथन दाखिल करने में अवधि का विस्तार करने वाला आदेश सामान्य रुप से पारित नहीं किया जा सकता है। केवल असाधारण परिस्थितियों वाले मामले में समय का विस्तार किया जा सकता है। समय का विस्तार करते समय इस तथ्य को ध्यान में रखना होगा कि विधायिका ने 90 दिनों की उपरी समय□सीमा निर्धारित की है। समय को बढ़ाने में न्यायालय के विवेकाधिकार का इस्तेमाल इतने सामान्य रुप से एवं बारंबारिता के साथ नहीं होना चाहिये कि आदेश 8 नियम 1 द्वारा निर्धारित अवधि ही महत्वहीन हो जाये।'

(बल प्रदान किया गया है)

पूर्वोक्त निर्णय कि दृष्टि में भी सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 8 नियम 1 के प्रावधानों की प्रकृति आज्ञापक नहीं बल्कि प्रक्रियात्मक है।

vi. यह प्रतीत होता है कि एक से अधिक अवसरों पर एक पक्षीय आदेश पारित किये गये हैं इन सभी बातों ने विलम्ब कारित किया है और पूर्वोक्त वाद में एक पक्षीय आदेशों को वापस लेने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा पहले ही 3400 रुपये का व्यय अधिरोपित किया जा चुका है।

3. पूर्वोक्त तथ्यों, कारणों एवं न्यायिक उच्चारणों के एक संचयी प्रभाव के तौर पर मैं अभिधान वाद सं॰ 23 वर्ष 2007 में विद्वान सब-जज 1, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 19 फरवरी 2009 के आदेश को अपास्त और निरस्त करता हूँ और वर्तमान याची (मूल प्रतिवादी) द्वारा दाखिल लिखित कथन को 500 (पाँच सौ रुपये मात्र) के व्यय के साथ अभिलेख पर लिये जाने का आदेश दिया जाता है। आज से दो सत्पाह की एक अवधि के भीतर विचारण न्यायालय के समक्ष व्यय की यह राशि जमा की जायेगी जिसे विचारण न्यायालय के समक्ष उपयुक्त आवेदन करके मूल वादी द्वारा निकाले जाने की अनुमति होगी।

4. याची (मूल प्रतिवादी) के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह आश्वस्त किया गया है कि वह विचारण की सुनवाई में सहयोग करेंगे जिससे कि और विलम्ब के बिना विचारण पूरा हो सके। विचारण न्यायालय को यथाशीघ्र यथासम्भव अभिधान वाद सं॰ 23 वर्ष 2007 का सुनवाई करने एवं निस्तारण करने का निर्देश दिया जाता है और पक्षों को अनावश्यक स्थगन प्रदान किये बिना 30 मार्च 2011 को या इससे पहले ऐसा करना श्रेयष्कर होगा।

5. पूर्वोक्त संपरीक्षणों एवं निर्देशनों के साथ यह रिट याचिका एतद द्वारा अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

विजय बहादुर सिंह

बनाम

सेन्ट्रल ब्यूरो ऑफ इन्वेस्टीगेशन, राँची एवं अन्य

W.P. (Cr.) No. 121 of 2010. Decided on 4th May, 2010.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धाराएँ 120B, 409 एवं 420 सह-पठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धाराएँ 13 (1) (d), 13 (2) एवं 19—दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा

482—सुरक्षा अभिकरण के चयन में वित्तीय अनियमितता–यह संस्थान (NIFFT) का निदेशक है जो अभियोजन की मंजूरी प्रदान करने में सक्षम है–मंजूरी प्रदान करने वाला आदेश इस आधार पर आलोचना योग्य होने पर भी कि मंजूरी प्रदान करने वाला प्राधिकार अक्षम है, इसके साथ न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता जबतक कि यह नहीं दर्शाया जाय की ऐसी त्रुटि/अनियमितता के परिणामतः न्याय का हनन हुआ है–संज्ञान का आक्षेपित आदेश किसी हस्तक्षेप को आवश्यक नहीं बनाता–आवेदन खारिज। (पैरा 16 से 21)

अधिवक्तागण.–M/s V. P. Singh, A. K. Mishra, For the Petitioner; Mr. Rajesh Kumar, For the Respondent No.1; Mr. Rajiv Ranjan, For the Respondent Nos. 2 & 3.

आदेश

R. C. केस सं॰ 06 (A) वर्ष 2008-AHD-R में भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 120B, 409 एवं 420 के अधीन एवं साथ-साथ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 13(1)(d) के अधीन याची के विरुद्ध C.B.I. द्वारा दाखिल आरोप-पत्र को निरस्त करने के लिए और 17.12.2009 के आदेश को भी निरस्त करने के लिए यह रिट आवेदन दाखिल किया गया है जिनके अधीन भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 120B, 409 एवं 420 के अधीन एवं साथ-साथ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 (2) के साथ पठित धारा 13 (1) (d) के अधीन भी अपराधों के लिए याची के विरूद्ध संज्ञान लिया गया है।

2. इस मामले के दाखिले को सामने लाने वाले तथ्य ये हैं कि याची नेशनल इन्स्टीच्यूट ऑफ फॉउंड्री एवं फोर्ज टेक्नोलॉजी, राँची (संक्षेप में NIFFT) में वर्ष 1976 में प्रारम्भ में उच्च श्रेणी के लिपिक के तौर पर योगदान दिया था। समय के अनुक्रम में, याची को वर्ष 2004 में सहायक कुल सचिव (समूह 'A' कोटि) के पद पर प्रोन्नत किया गया था। जब याची ऐसा पद धारण किया हुए था, NIFFT की सम्पदाओं को सुरक्षा प्रदान करने के लिए वर्ष 2005-2006 में मेसर्स सिंह सिक्युरिटी एण्ड डिटेक्टीव सर्विसेज नामक फर्म को नियोजित किया गया था।

3. याची का मामला यह है कि जब उक्त सुरक्षा अभिकरण के निबंधनों की अवधि समाप्त हो गई, याची ने NIFFT के निदेशक के समक्ष एक नोट अग्रसारित किया उसमें उक्त सुरक्षा अभिकरण को बनाए रखने या अन्य अभिकरण के नियोजन के लिए आदेश पारित करने का आग्रह करते हुए जिस पर NIFFT के निदेशक ने एक अन्य सुरक्षा अभिकरण को नियोजित करने का विकल्प चुना और सुरक्षा अभिकरण का चयन करने के लिए एक समिति का गठन किया गया जिसका याची एक संयोजक था। समिति ने संकल्प अपनाने के उपरांत प्रयोजकों की सूची उपलब्ध कराने के लिए महानिदेशक, पुनर्बन्दोबस्त रक्षा मंत्रालय से आग्रह किया और एक सुरक्षा अभिकरण के नियोजन के लिए निबंधनों एवं शर्तों के सम्बन्ध में आवश्यक सूचना इप्सित भी किया। उक्त आग्रह का जवाब देते हुए महानिदेशक पुनर्बन्दोबस्त ने तीन सुरक्षा अभिकरणों के नाम भेजे। नोटिस किए जाने पर इनमें से केवल दो ने अपने कोटेशन प्रस्तुत किए। समिति ने उनके द्वारा प्रस्तुत कोटेशनों की संवीक्षा करने के उपरांत और विचार विमर्श करने के उपरांत NIFFT की सम्पदाओं की सुरक्षा प्रदान करने हेतु मेसर्स लायंस सिक्युरिटी एजेन्सी के नियोजन के लिए 11.10.2006 को अनुशंसा की जिसका निदेशक, NIFFT द्वारा अनुमोदन किया गया था और इसके उपरान्त ही 11.10.2006 को तीन महीनों के लिए मेसर्स लायंस सिक्युरिटी एजेन्सी को कार्य आदेश निर्गत किया गया था। उस अवधि के बीत जाने पर, 14.8.2007 को पक्षों के बीच हुए एक समझौते के अधीन उक्त सुरक्षा अभिकरण के निबन्धनों का एक वर्ष के लिए विस्तार किया गया था।

4. तथापि, C.B.I ने एक परिवाद प्राप्त करने पर याची एवं अन्य के विरूद्ध R. C. सं० 06(A) वर्ष 2008-AHD-R-Reg.के तौर पर एक मामला दर्ज किया उसमें यह अभिकथित करते हुए कि वर्ष 2005-06 के लिए NIFFT ने सुरक्षा सेवाएँ उपलब्ध कराने के लिए मेसर्स सिंह सिक्युरिटी एजेन्सी, राँची को नियोजित किया था और उक्त सुरक्षा अभिकरण को उसके नियोजन के दौरान कुल पारिश्रमिक का 3.5% सेवा प्रभार के तौर पर उपलब्ध किया गया था परन्तु जब उक्त सुरक्षा अभिकरण की अवधि समाप्त हो गई थी, याची ने स्क्रिनिंग समिति का प्रधान होने के नाते सुरक्षा सेवाएँ उपलब्ध कराने हेतु मेसर्स लायंस सिक्युरिटी एजेन्सी, राँची का चयन किया था जिसके द्वारा कुल पारिश्रमिक का 12% भाग सेवा प्रभार के तौर पर चुकाया जाना था यद्यपि इससे पहले सुरक्षा अभिकरण को 3.5% की दर से सेवा अधिभार का भुगतान किया गया था।

5. यह भी अभिकथित किया गया है कि यद्यपि D.G.R. द्वारा प्रायोजित फर्म 12% से 18% तक सेवा प्रभार का अधिकारी होता है परन्तु उसमें यह शर्त लगी होती है कि अभिकरण को अपने कर्मियों में से 90% कर्मियों के तौर पर भूतपूर्व सैनिकों को रखना होगा, परन्तु मेसर्स लायंस सिक्युरिटी एजेन्सी के मामले में भूतपूर्व सैनिक केवल 57% थे और फिर भी 12% की दर पर सेवा अधिभार का भुगतान किया गया और इसलिए सुरक्षा अभिकरण को 9,96,944/-रु० का अतिरेक भुगतान किया गया जिसके परिणामित: NIFFT को भारी क्षति उठानी पड़ी।

6. उक्त मामले का अन्वेषण किया गया और अन्वेषण के समापन पर अभियोजन की मंजूरी प्रदान करने के लिए CBI ने सक्षम प्राधिकार को लिखा परन्तु बोर्ड ऑफ गवर्नर के अध्यक्ष के दिनांक 13.10.2009 के पत्र में यथा अंतर्विष्ट अपने आदेश द्वारा याची के विरूद्ध अभियोजन के लिए मंजूरी देने से इन्कार कर दिया और इस निर्णय को बाद में बोर्ड ऑफ गवर्नर द्वारा अनुमोदित किया गया परन्तु इसके उपरान्त, प्रभारी, निदेशक, NIFFT, प्रत्यर्थी सं० 3 ने दिनांक 11.12.2009 के अपने एक आदेश द्वारा याची के विरुद्ध अभियोजन की मंजूरी प्रदान कर दी। तत्पश्चात् CBI ने 15.12.2009 को विशेष न्यायाधीश के समक्ष आरोप पत्र दाखिल किया जिसपर विद्वान विशेष न्यायाधीश ने दिनांक 17.12.2009 के अपने आदेश द्वारा भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 120B, 409 एवं 420 के अधीन एवं भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 13 (1) (d) के अधीन भी अपराधों के लिए याची एवं अन्य के विरूद्ध संज्ञान लिया गया।

7. आरोप-पत्र दाखिल किए जाने और संज्ञान लेने वाले आदेश से भी व्यथित होकर इनको निरस्त करने के लिए यह रिट आवेदन दाखिल किया गया है।

8. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री वी० पी० सिंह ने संज्ञान लेने वाले आदेश को मुख्यत: इस आधार पर आलोचना की कि बोर्ड ऑफ गवर्नर नियुक्ति प्राधिकार होने के नाते मंजूरी प्रदान करने मे सक्षम है परन्तु यह प्रभारी निदेशक है जिसने मंजूरी प्रदान की है और इस प्रकार, अकृतता है क्योंकि प्रभारी निदेशक को याची के नियुक्ति प्राधिकार न होने के कारण मंजूरी प्रदान करने का कोई अधिकार ही नहीं है।

9. विद्वान अधिवक्ता ने अपने इस अभिवाक् को सिद्ध करने के लिए की बोर्ड ऑफ गवर्नर नियुक्ति प्राधिकार है। परिशिष्ट-15 को निर्दिष्ट किया जो कि RTI के अधीन इप्सित की गई सूचना के अनुसरण में उप-सचिव (PAE) द्वारा उपलब्ध कराई गई सूचना है जिसमें यह सूचित किया गया है कि सहायक कुल सचिव के मामले में बोर्ड ऑफ गवर्नर नियुक्ति प्राधिकार होता है। उस सूचना को निर्दिष्ट करके इसपर पुन: जोर दिया गया की यह बोर्ड ऑफ गवर्नर ही है जो अभियोजन के लिए मंजूरी प्रदान करने में सक्षम है।

10. विद्वान अधिवक्ता ने इस बिन्दु पर भी बल दिया कि इससे पहले अध्यक्ष बोर्ड ऑफ गवर्नर ने इसी तथ्य पर मंजूरी प्रदान करने से इनकार कर दिया था जिस निर्णय को बाद में निदेशक मंडल द्वारा अनुमोदित किया गया था और मंजूरी प्रदान करने में सक्षम व्यक्ति द्वारा मंजूरी प्रदान करने से एक बार इनकार कर देने पर इन्हीं तथ्यों पर मंजूरी प्रदान करने का कोई विकल्प प्रभारी निदेशक के पास नहीं था और अतएव, निदेशक, निफ्ट द्वारा प्रदान की गई मंजूरी, जो मंजूरी प्रदान करने में सक्षम नहीं है, कुछ और नहीं बल्कि एक अकृतता है और इसलिए, मंजूरी के एक ऐसे आदेश, जो एक अकृतता है, के आधार पर संज्ञान लेने वाला कोई आदेश भी दोषपूर्ण एवं अवैधानिक है और इस कारण निरस्त किए जाने का अधिकारी है।

11. श्री सिंह ने इंगित किया कि मेसर्स लायंस सिक्युरिटी एजेन्सी के नियोजन का अन्तिम निर्णय निफ्ट के निदेशक का था और याची का नहीं और इस प्रकार, याची को अपराध कारित करने वाला नहीं कहा जा सकता जैसा की अभिकथित किया गया है।

12. निफ्ट की ओर से एक प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया है जिसमें निफ्ट कर्मचारी (आचरण) नियमावली के प्रावधान को निर्दिष्ट करके यह कहा गया है कि एक निदेशक के मामले में बोर्ड ऑफ गवर्नर के अध्यक्ष 'अनुशासनिक प्राधिकार' होता है जबकि अन्य सभी कर्मचारियों के मामले में यह प्राधिकारी निदेशक होता है और इस प्रकार, निदेशक द्वारा प्रदान की गई मंजूरी को कभी भी दोषपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

13. निफ्ट की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री राजीव रंजन निवेदन करते हैं कि 'अनुशासनिक प्राधिकार' को परिभाषित करने वाले सांविधिक नियमों की दृष्टि में निदेशक मण्डल के नियोक्ता प्राधिकार होने के बारे में परिशिष्ट–15 में यथा उपलब्ध कराई गई सूचना का कोई महत्व नहीं है और, इस प्रकार, याची इसका कोई लाभ नहीं ले सकता।

14. CBI की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री राजेश कुमार निवेदन करते हैं कि मंजूरी प्रदान करने वाले आदेश के किसी अनियमितता दोष या विलोप से ग्रसित होने के बावजूद भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 की उप-धाराएँ 3 एवं 4 में यथा अन्तर्विष्ट प्रावधान की दृष्टि में इसकी वैधता पर इनका कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं होगा, अतएव, संज्ञान लेने वाले आदेश के साथ इस न्यायालय द्वारा कोई हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है।

15. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनकर जो विवाद सामने आया है वह यह है कि यह बोर्ड ऑफ गवर्नर है या फिर निदेशक है जो अभियोजन के लिए मंजूरी प्रदान करने में सक्षम है।

16. एक तरफ RTI के अधीन दाखिल एक आवेदन पर उप-सचिव (PAE) द्वारा उपलब्ध कराई गई सूचना दर्शाती है कि यह बोर्ड ऑफ गवर्नर है जो सहायक कुल सचिव का नियुक्ति प्राधिकारी है। परन्तु दूसरी ओर, अनुशासनिक प्राधिकारी, जिसे निफ्ट कर्मचारीगण (आचरण) नियमावली एवं अनुशासन एवं अपील नियमावली के अनुसार शास्ति या सेवा समाप्ति अधिरोपित करने की शक्ति है, एक निदेशक के मामले में बोर्ड ऑफ गवर्नर का अध्यक्ष होता है जबकि अन्य सभी कर्मचारियों के मामले में निदेशक होता है। इसलिए RTI अधिनियम के अधीन दी गई किसी भी सूचना का सांविधिक नियमों पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ेगा। इस प्रकार, मैं प्रथम दृष्टया पाता हूँ कि यह संस्थान (NIFFT) का एक निदेशक है, जो अभियोजन के लिए मंजूरी प्रदान करने में सक्षम है।

17. अन्यथा भी, अगर मंजूरी प्रदान करने वाला आदेश (परिशिष्ट–2) किसी दोष, अवैधानिकता या अनियमितता से ग्रस्त भी है, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 की उप-धारा 4 के साथ पठित उप-धारा 3 में यथाा अन्तर्विष्ट प्रावधान की दृष्टि में इसमें न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है जो प्रावधान निम्नवत् पठित है:–

*19 (3) **दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) में किसी बात के होते हुए भी.**-(a) उप-धारा (1) के अधीन अपेक्षित मंजूरी में किसी अनियमितता, लोप या मंजूरी के कारण अपील-न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण, पुष्टिकरण या अपील में, विशेष न्यायालय द्वारा पारित कोई निष्कर्ष, दण्डादेश या आदेश तब तक परिवर्तित या उलटा नहीं जाएगा, जब तक कि उस न्यायालय की राय में उसके कारण यथार्थ में न्याय नहीं हो सका;*

(b) इस अधिनियम के अधीन की गयी किसी कार्यवाही को किसी न्यायालय द्वारा प्राधिकारी द्वारा दी गई मंजूरी में किसी अनियमितता या लोप या त्रुटि के कारण रोका नहीं जाएगा जब तक कि यह समाधान न हो जाए कि ऐसी अनियमितता, लोप या त्रुटि के परिणामस्वरूप न्याय नहीं हो सका है।

(c) इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही को किसी न्यायालय द्वारा किसी अन्य आधारों पर रोका नहीं जाएगा और किसी न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण के अधिकारों का प्रयोग किसी जाँच, सुनवाई, अपील या अन्य कार्यवाही में पारित किसी अन्तर्वर्ती आदेश के सम्बन्ध में नहीं किया जाएगा।

(4) उप-धारा (3) के अधीन अवधारणों के लिए, कि ऐसी मंजूरी के अभाव या किसी अनियमितता, लोप या त्रुटि के कारण न्याय नहीं हो सका है, न्यायालय इन तथ्यों को विचार में लेगा कि आपत्ति किसी कार्यवाही के दौरान उठायी नहीं जा सकती थी और उठायी गई थी।

***स्पष्टीकरण**.-इस धारा के प्रयोजनों के लिए□*

(a) ''त्रुटि'' में मंजूरी देने वाला प्राधिकारी की सक्षमता शामिल है;

(b) ''अभियोजन के लिए अपेक्षित मंजूरी'' में किसी विहित प्राधिकारी के आवेदन पर किया जाने वाला अभियोजन की आवश्यकता का सन्दर्भ अथवा किसी विहित व्यक्ति द्वारा दी गयी मंजूरी या इसी प्रकृति की अन्य अपेक्षा सम्मिलित है।

18. उपधाराओं 3 एवं 4 का संयुक्त पठन इस स्थिति को स्पष्ट कर देता है कि संहिता में कुछ भी निहित होने के बावजूद उप-धारा (1) के अधीन अपेक्षित मंजूरी में किसी त्रुटि, विलोप या अनियमितता के आधार पर अपील संपुष्टिकरण या पुनरीक्षण में एक न्यायालय द्वारा एक विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित किसी भी निष्कर्ष, दण्डादेश और आदेश को प्रत्यावर्तित या परिवर्तित नहीं किया जाएगा, जबतक उस न्यायालय की राय में उसके द्वारा न्याय का एक हनन न हो गया हो।

19. इसे नोट करना चाहिए कि उप-धारा 4 का स्पष्टीकरण A अनुबद्ध करता है कि त्रुटि में मंजूरी प्रदान करने में प्राधिकार की सक्षमता शामिल है जिसका मेरी राय में यह अर्थ हुआ कि मंजूरी प्रदान करने वाला आदेश इस आधार पर आलोचना योग्य होने के बावजूद की मंजूरी प्रदान करने में प्राधिकार अक्षम है, न्यायालय द्वारा इसका हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता जबतक की यह न दर्शाया जाए कि उक्त त्रुटि/अनियमितता के परिणामत: न्याय का हनन हुआ है। पूर्वोक्त प्रतिपादना को **राज्य, पुलिस इन्सपेक्टर बनाम टी० वेंकटेश मूर्ति (ऊपर)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित किया गया है जिस दृष्टिकोण को बाद में **म० प्र० राज्य बनाम बिरेन्द्र कुमार त्रिपाठी के मामले (ऊपर)** में दोहराया गया है।

20. वर्तमान मामले में कहीं पर भी ऐसा निवेदन या अभिवाक् नहीं किया गया है कि मंजूरी प्रदान करने वाले आदेश से न्याय का कोई हनन हुआ है। इस प्रकार, जिस आक्षेपित आदेश के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया है उसके साथ किसी भी हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है।

21. तद्नुसार, मैं इस आवेदन में कोई गुण नहीं पाता हूँ और, इस प्रकार, यह आवेदन खारिज किया जाता है।

22. इस आदेश से अलग होने से पहले यह सम्परीक्षित किया जाता है कि किसी बिन्दु पर दिया गया कोई भी सम्परीक्षण या निष्कर्ष पक्षों के मामले के प्रतिकूल नहीं होगा।

माननीय डी० के० सिन्हा, न्यायमूर्ति

मंजर हुसैन

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. Appeal No. 511 of 2002. Decided on 26th April, 2010.

एस० टी० सं० 300 वर्ष 2000 में अपर सत्र न्यायाधीश, एफ० टी० सी० सं० II, पूर्वी सिंहभूम, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 29.7.2002 और 3.8.2002 के क्रमशः दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरूद्ध।

(क) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 164—धारा 164 के अधीन दर्ज तथ्यों के बयान को उपयोग पुष्टि अथवा खंडन के लिए किया जा सकता है–किसी गवाह जो बाद में पक्षद्रोही हो गया था के बयान पर अभियुक्त की दोषसिद्धि अथवा दोषमुक्ति के संपोषण के लिए विचारण न्यायालय अपने निष्कर्ष को आधारित नहीं कर सकता है। (पैरा 5)

(ख) आयुध अधिनियम, 1959—धारा 25 (1-B)—आग्नेयास्त्र द्वारा की गयी हत्या–जुर्माना के साथ दोषसिद्धि एवं दंड अधिनिर्णीत–अभिग्रहण के गवाह अभियोजन के प्रतिकूल हो गए और अपीलार्थी द्वारा इंगित किए गए आग्नेयास्त्रों एवं कारतूसों के अभिग्रहण का समर्थन नहीं किया–अभियोजन यह सिद्ध करने में विफल रहा कि अपीलार्थी के संस्वीकृत बयान के अनुसरण में आग्नेयास्त्र और कारतूस बरामद किए गए थे ताकि धारा 25 (1-B) के अधीन अपराध आकृष्ट हो–दोषसिद्धि एवं दंडादेश अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैरा 5 से 9)

अधिवक्तागण.–M/s A.K. Chaturvedi, Md. Zaid Ahmad, For the Appellant; Mr. Tapas Roy, For the State.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र विचारण सं० 300 वर्ष 2000 में श्री अखिलेश्वर झा, अपर सत्र न्यायाधीश, एफ० टी० सी०–II, जमशेदपुर द्वारा दर्ज दिनांक 29.7.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 3.8.2002 के दंडादेश के विरूद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा एकमात्र अपीलार्थी को आयुध अधिनियम की धारा 25-1B के अधीन दोष सिद्ध अभिनिर्धारित किया गया था और तीन वर्षों की कठोर कारावास भुगतने और 1000/-रुपया का जुर्माना भुगतान करने और इसके व्यतिक्रम में तीन माह का सरल कारावास भुगतने का दंड दिया गया था।

2. संक्षेप में अभियोजन का मामला यह है कि सूचक अ० सा० 15 राहुल साव ने दिनांक 9.2.2000 को जुबली पार्क, जमशेदपुर में फर्दबयान दिया और अभिकथन किया कि उसका पिता हरि प्रसाद साव (मृतक) प्रात: 6 बजे अपनी मारूति एस्टीम कार से जुबली पार्क प्रात: भ्रमण के लिए गया था। कुछ देर बाद सूचक को टेलीफोन द्वारा सूचना मिली कि कुछ अनजान व्यक्तियों ने गोली मारकर उसके पिता की हत्या कर दी थी। ऐसी सूचना पाने पर वह तुरन्त जुबली पार्क गया और अपने पिता को रक्त रंजित पड़ा पाया जो उसके मस्तक पर लगी उपहतियों से बह रहा था, और पुलिस वहाँ पहले

ही आ चुकी थी। घटना के उद्‌गम को प्रकट करते हुए सूचक ने कथन किया कि उसका पिता हरि प्रसाद साव 'आकाश बिल्डर्स' गोलमुरी का निदेशक था और अन्य अभियुक्त व्यक्ति कृष्ण बिहारी सिन्हा, राकेश सिन्हा, अमरेश सिन्हा भी उक्त फर्म में निदेशक थे। विगत तीन माह में निदेशकों के बीच कुछ मतभेद उत्पन्न हुए थे जिस कारण उसके पिता और मामा प्रदीप चूड़ीवाला सहित एक दूसरे के विरुद्ध मामलों की एक श्रृंखला संस्थापित की गयी थी जिसमें उन्हें जमानत मिल गयी थी। सब-जज के न्यायालय के समक्ष उसके पिता-मृतक द्वारा टाइटल वाद सं॰ 102 वर्ष 2009 दाखिल किया गया था और उस वाद में उसके पिता ने अस्थायी व्यादेश प्राप्त कर लिया था। उसके पिता के विरुद्ध राकेश सिन्हा द्वारा एक पृथक जी॰ आर॰ सं॰ 2901 वर्ष 1999 (दांडिक मामला) संस्थापित किया गया था और उस मामले में भी उसके पिता और मामा ने जमानत प्राप्त कर लिया था। इसी क्रम में सूचक ने अभिकथन किया कि अभियुक्तगण ने 'आकाश बिल्डर्स' के कर्मचारियों को आंतकित किया था और अनेक तरीकों से उसके पिता को भी आतंकित किया था। अधिक विनिर्दिष्ट होते हुए, सूचक ने अभिकथन किया कि अभियुक्तगण ने उसके पिता को बेल्डीह क्लब में धमकाया था कि यह स्वयं को विवाद से दूर रखे जिसमें विफल होने पर उसे भी समाप्त कर दिया जाएगा। घटना की ऐसी श्रृंखला को देखते हुए सूचक के पास विश्वास करने का कारण था कि अभियुक्तगण कृष्ण बिहारी सिन्हा, राकेश सिन्हा, अमरेश सिन्हा दांडिक षड्‌यंत्र रच कर उसके पिता की हत्या करके अभिकथित घटना को अंजाम दिया था।

3. विद्वान अधिवक्ता श्री जैद अहमद ने निवेदन किया कि सूचक अ॰ सा॰ 15 के बयान के आधार पर केवल तीन अभियुक्तगण अर्थात्‌ कृष्ण बिहारी सिन्हा, राकेश सिन्हा और अमरेश सिन्हा के विरुद्ध प्राथमिकी संस्थापित की गयी थी। किन्तु अन्वेषण अधिकारी ने अन्वेषण के पश्चात्‌ मंजर हुसैन (अपीलार्थी), लियाकत अली और जावेद अख्तर के विरूद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन आरोप पत्र दाखिल किया और तीन शेष अभियुक्तगण कृष्ण बिहारी सिन्हा, राकेश सिन्हा और अमरेश सिन्हा और प्रदीप चूड़ी वाला के विरुद्ध अभिकथित अपराध के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302/120B के अधीन सामग्रियां एकत्रित की जा सकी थी। उसी आरोप पत्र में कथन किया गया था कि इसमें अपीलार्थी मंजर हुसैन के विरूद्ध आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपराध के लिए सामग्रियाँ थी। तद्‌नुसार, अपीलार्थी मंजर हुसैन और दो अन्य लियाकत अली और जावेद अख्तर के विरूद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन आरोप विरचित किए गए थे और अन्य चार अभियुक्तगण कृष्ण बिहारी सिन्हा, राकेश सिन्हा, अमरेश सिन्हा और प्रदीप चूड़ीवाला के विरूद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302/120B के अधीन पृथक आरोप विरचित किए गए थे। आगे, केवल अपीलार्थी मंजर हुसैन के विरूद्ध आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अनन्य आरोप विरचित किए गए थे। विचारण के क्रम में अभियोजन की ओर से 21 गवाह प्रस्तुत किए गए थे और परीक्षित किए गए थे और विस्तृत निर्णय के बाद समस्त अभियुक्तगण को दोषमुक्त कर दिया गया था सिवाए अपीलार्थी मंजर हुसैन के जिसे आयुध अधिनियम की धारा 25 (1-B) के अधीन अपराध के लिए दोषी अभिनिर्धारित किया गया था और तीन वर्षों का कठोर कारावास भुगतने और व्यतिक्रम के साथ 1000/-रुपया जुर्माना भुगतान का दंड दिया गया था किन्तु भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन आरोप से मुक्त कर दिया गया था।

4. विद्वान अधिवक्ता ने इस आधार पर आक्षेपित निर्णय का विरोध किया कि अन्वेषण के क्रम में अपीलार्थी मंजर हुसैन और जावेद अख्तर को गिरफ्तार किया गया था और अभिकथन किया गया था कि उस दोनों के संस्वीकृत बयानों पर चार जिंदा कारतूस भरा हुआ देशी रिवाल्वर बरामद किया गया था। आगे कथन किया गया था कि चार प्रयुक्त कारतूसों (खाली कारतूसों) को भी उनके बताए जाने पर बरामद किया गया था।

5. विद्वान अधिवक्ता ने स्पष्ट किया कि अभियोजन मामले के अनुसार, गवाह अ० सा० 9 जियाउर रहमान उर्फ बबन और अ० सा० 10 नसीमुद्दीन और किसी सनातन (अपरीक्षित) की उपस्थिति में देशी रिवाल्वर, चार जिंदा कारतूसों और चार खाली कारतूसों के अभिग्रहण की सूची तैयार की गयी थी जिस अभिग्रहण सूची (प्रदर्श-21) पर उन्होंने अपना हस्ताक्षर किया था। अभियोजन ने अभिग्रहण गवाहों जियाउर रहमान उर्फ बबन और नसीमुद्दीन को प्रस्तुत किया था जिनके बयान श्री के० के० सिंह, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी के समक्ष धारा 164 दं० प्र० सं० के अधीन दर्ज किए गए थे जिसमें कथन किया गया था कि उन्होंने अपनी उपस्थिति में आग्नेयास्त्रों और कारतूसों के अभिग्रहण को स्वीकार किया था किन्तु अपने सारभूत साक्ष्य में उनकी उपस्थिति में पुलिस द्वारा आग्नेयास्त्र अथवा कारतूस के किसी प्रकार के अभिग्रहण का समर्थन नहीं किया था और उन्हें पक्षद्रोही घोषित किया गया था और इस प्रकार इन परिस्थितियों के अधीन विद्वान अधिवक्ता के अनुसार अपीलार्थी मंजर हुसैन के विरुद्ध आग्नेयास्त्र एवं कारतूस का अभिग्रहण सिद्ध नहीं किया जा सका था। विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, जिनके समक्ष धारा 164 दं० प्र० सं० के अधीन इन दो गवाहों का बयान दर्ज किया गया था, को प्रस्तुत किया गया था और विचारण न्यायाधीश के समक्ष परीक्षित किया गया था, और विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी ने समर्थन किया कि इन दो गवाहों ने अपीलार्थी मंजर हुसैन के संस्वीकृति के बयान के अनुसरण में आग्नेयस्त्र और कारतूस को अभिग्रहण अपने अपने बयानों में स्वीकार किया था किन्तु आयुध अधिनियम की धारा 25 (1-B) के अधीन अभिकथित अपराध के लिए अपीलार्थी की दोषसिद्धि विधि के अधीन इन कारणों से संपोषणीय नहीं है क्योंकि दंडाधिकारी के समक्ष अ० सा० 9 और 10 के बयान निष्कर्षित साक्ष्य की प्रकृति के नहीं थे और इस संबंध में **1999 Cr. L.J. 1936** में प्रकाशित बॉम्बे उच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया गया है। समस्थित मामले में बॉम्बे उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने संप्रेक्षित किया था कि धारा 164 के अधीन दिया गया बयान, यदि सिद्ध कर भी दिया जाए, को केवल सारभूत साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। धारा 164 दं० प्र० सं० के अधीन बयान का इस्तेमाल उस व्यक्ति, जिसने इसे दिया है, के प्रतिपरीक्षण के लिए किया जा सकता है और परिणाम दर्शा सकते है कि गवाह का साक्ष्य झूठा है। किन्तु वह यह स्थापित नहीं करता है कि उसने धारा 164 के अधीन न्यायालय के बाहर में जो कथन किया है, वह सत्य है। अत: धारा 164 दं० प्र० सं० के अधीन दर्ज किसी गवाह, जो बाद में पक्षद्रोही हो गया था, के बयान पर किसी अभियुक्त की दोषमुक्ति और दोषसिद्धि के संपोषण के लिए विचारण न्यायालय अपना निष्कर्ष आधारित नहीं कर सकता है, और इसे सारभूत साक्ष्य के रूप में नहीं माना जा सकता है। न्यायिक दंडाधिकारी, जिनके समक्ष ऐसा बयान दर्ज किया गया था, का बयान भी विधिक अवस्था को समृद्ध नहीं कर सकता है और न्यायिक दंडाधिकारी के ऐसे बयान पर विचारण न्यायालय अभियुक्त की दोषसिद्धि आधारित नहीं कर सकता है।

6. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया अगला बिन्दु यह है कि आग्नेयास्त्र और कारतूस की अभिकथित बरामदगी अपीलार्थी मंजर हुसैन और एक अन्य अभियुक्त जावेद अख्तर के संयुक्त संस्वीकृति के बयान के अनुसरण में की गयी और दोनों पर आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपराध के लिए आरोप लगाया गया था किन्तु साक्ष्य के समान संवर्ग पर जावेद अख्तर को दोषमुक्त कर दिया गया था जबकि वर्तमान अपीलार्थी आरोप, जिसे आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन विरचित किया गया था, को संशोधित किए बिना वर्तमान अपीलार्थी को आयुध अधिनियम की धारा 25 (1-B) के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और इस तरीके से अपीलार्थी पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा था। उसका सामना सामग्रियों से नहीं कराया गया था, यदि उन्हें विचारण के दौरान अभिलेख पर लाया भी गया था, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन दर्ज उसके बयान में जो आयुध अधिनियम की धारा 25 (1-B) के अधीन दोषसिद्धि आकृष्ट कर सकती थी।

7. प्रत्यर्थी राज्य की ओर से विद्वान एपीपी श्री तापस राय को सुना गया जिन्होंने निष्पक्ष रूप से स्वीकार किया कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन आरोप के लिए अपीलार्थी को दोषमुक्त किया गया था किन्तु उसे आयुध अधिनियम की धारा 25 (1-B) के अधीन दोषी अभिनिर्धारित किया गया था और अभिग्रहण गवाह पक्षद्रोही हो गए थे।

8. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार रखते हुए, वर्तमान मामले में उठाया गया संक्षिप्त प्रश्न यह है कि क्या आयुध अधिनियम के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि न्यायोचित है जब अभिग्रहण गवाह अभियोजन के प्रतिकूल हो गए थे और अपीलार्थी द्वारा इंगित किए जाने पर आग्नेयास्त्र और कारतूसों के अभिग्रहण का समर्थन नहीं किया था। सर्वोच्च न्यायालय सहित सभी माननीय न्यायालय संगति में है कि धारा 164 दं॰ प्र॰ सं॰ के अधीन दर्ज गवाहों के बयान सारभूत साक्ष्य की प्रकृति के नहीं है और ऐसे बयानों पर दोषसिद्धि आधारित नहीं की जा सकती है जबतक अन्य सारभूत साक्ष्य द्वारा इसे पुष्ट न किया जाए। किन्तु वर्तमान मामले में अपीलार्थी मंजर हुसैन के संस्वीकृति बयान के अनुसरण में उनकी उपस्थिति में आग्नेयास्त्र एवं कारतूस के अभिग्रहण से अभिग्रहण गवाह अ॰ सा॰ 9 जियाउर रहमान उर्फ बबन और अ॰ सा॰ नसीमुद्दीन ने इंकार किया है और सनातन, जिसे भी अभिग्रहण गवाह बनाया गया था, कटघरे से अनुपस्थित रहा जिसकी वजह केवल अभियोजन को ही मालूम है। इस मामले में, न्यायिक दंडाधिकारी, जिनकी उपस्थिति में धारा 164 दं॰ प्र॰ सं॰ के अधीन अभिग्रहण गवाहों का बयान दर्ज किया गया था, का परीक्षण भी विचारण न्यायाधीश के समक्ष किया गया था और उन्होंने स्वीकार किया कि गवाहों ने उनकी उपस्थिति में आग्नेयास्त्र और कारतूस के अभिग्रहण का कथन किया था और यह भी स्वीकार किया था कि अभिग्रहण सूची तैयार की गयी थी किन्तु न्यायिक दंडाधिकारी का ऐसा बयान न तो सारभूत अथवा निष्कर्षित प्रकृति का था जो आयुध अधिनियम की धारा 25 (1-B) के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि की अपेक्षा करता है। अपीलार्थी पर इन कारणों से निश्चय ही प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा था कि यद्यपि आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन गंभीर अपराध के लिए आरोप विरचित किए गए थे किन्तु आयुध अधिनियम की धारा 25 (1-B) के अधीन दोषसिद्ध किया गया था जो एक हल्का अपराध है। यह इंगित किया गया था यद्यपि हत्या के आरोप के लिए अपीलार्थी सहित अन्य अभियुक्तगण की दोष मुक्ति के विरुद्ध राज्य ने अपील दायर किया था किन्तु उक्त अपील खारिज कर दी गयी थी।

9. इन परिस्थितियों में, मैं पाता हूँ कि अभियोजन अपीलार्थी के विरुद्ध विरचित धारा 25 (1-B) के अधीन आरोप सिद्ध करने में युक्ति युक्त संदेह के परे विफल रहा। मैं पाता हूँ कि अभिग्रहण गवाह पक्षद्रोही हो गए और अभियोजन के प्रतिकूल हो गए चुँकि अ॰ सा॰ 9 जियाउर रहमान और अ॰ सा॰ 10 नसीमुद्दीन ने अपनी उपस्थिति में अपीलार्थी द्वारा इंगित किए जाने पर आग्नेयास्त्र और कारतूस का अभिग्रहण सिद्ध नहीं किया था। तीसरा अभिग्रहण गवाह सनातन कटघरे से अनुपस्थित रहा। मैं पाता हूँ कि अपीलार्थी की संस्वीकृति बयान के अनुसरण में आग्नेयास्त्र और कारतूस बरामद किए गए थे ताकि आयुध अधिनियम की धारा 25 (1-B) के अधीन अपराध आकृष्ट हो सके, यह सिद्ध करने में अभियोजन बुरी तरह विफल रहा और दूसरे शब्दों में उक्त धारा के अधीन आरोप युक्तियुक्त संदेहे के परे सिद्ध नहीं किया जा सका था। उक्त कारणों से अपीलार्थी के विरूद्ध धारा 25 (1-B) के अधीन दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेशों में हस्तक्षेप की आवश्यकता है और इन्हें सत्र विचारण सं॰ 300 वर्ष 2000 के संबंध में अपास्त किया जाता है। तद्नुसार, यह अपील अनुज्ञात की जाती है और अपीलार्थी मंजर हुसैन को दोषमुक्त किया जाता है। इसे इस मामले में जमानत पत्र के बंधनों से आजाद किया जाता है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

नर्बदेश्वर प्रसाद

बनाम

राम किशोर मिश्र एवं अन्य

W.P. (C) No. 2975 of 2007. Decided on 7th May, 2010.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश XIV, नियम 1 और 2 सह-पठित आदेश VIII, नियम 6-A और 6-B—विवाद्यक की विरचना–प्रतिवादी द्वारा किए गए प्रतिदावा को अस्वीकार करने के लिए और इसका प्रारंभिक विवाद्यक के रूप में विनिश्चय करने के लिए याची की प्रार्थना अस्वीकार–प्रति दावा का अभिवाक् लिखित कथन में करना होगा–विचारण न्यायालय को इन आधारों के आलोक में वादी की आपत्तियों का परीक्षण करना चाहिए था कि क्या प्रति दावा परिसीमा द्वारा वर्जित है या नहीं, और न ही इसने इस विवाद्यक का परीक्षण किया कि विधि के प्रावधानों के अधीन और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में प्रतिवादी विलम्बित प्रति दावा स्थापित कर सकता है या नहीं–प्रतिदावा को स्वतंत्र वादपत्र के रूप में मानना होगा और यदि यह परिसीमा द्वारा वर्जित है, यह तत्काल अस्वीकार किए जाने योग्य होगा–आक्षेपित आदेश अपास्त। (पैरा 19 से 22)

निर्णयज विधि.–AIR 2003 SC 2508—Relied upon; AIR 2007 SC 10; AIR 1997 SC 3985; AIR 2000 Calcutta 17—Referred to.

अधिवक्तागण.–M/s A.K. Das, Chandrajit Mukerjee, For the Petitioners; Mr. Rohit Roy, For the Respondent No. 2.

आदेश

भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान रिट याचिका याची द्वारा अभिधान वाद सं॰ 77/2000 में अधीनस्थ न्यायाधीश-IV, राँची द्वारा पारित दिनांक 13.4.2007 के आदेश को अपास्त करने के लिए दाखिल की गयी है जिसके द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XIV, नियम 1 और 2 के अधीन वर्तमान याची द्वारा दाखिल याचिका खारिज कर दी गयी थी।

2. पक्षों के अधिवक्ता को सुना गया।

3. वादी/याची का मामला यह है कि उसने प्रत्यर्थी सं॰ 1 अर्थात् सचिव, पंदरा सहकारी गृह निर्माण समिति लि॰ राँची के साथ करार किया था जिसके अधीन याची को मौजा ललित ग्राम, काथीटाँड़, रातू स्थित घर को कुल 3,25,000/-रुपये प्रतिफल की राशि पर आबंटित करने पर सचिव सहमत हुए थे। अनुबद्ध प्रतिफल राशि के अग्रिम के तौर पर याची ने 26,200/-रुपयों का भुगतान किया और प्रत्यर्थी सं॰ 1 से आबंटित मकान का कब्जा प्राप्त किया। नियत प्रतिफल राशि के शेष का भुगतान समान मासिक किस्तों में वादी/याची द्वारा किया जाना था।

4. कुछ दिन बाद, प्रतिवादी सं॰ 2 अर्थात् वर्तमान प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने इसके ऊपर स्वामित्व का दावा करते हुए वाद संपत्ति में अपना दावा किया और इस आधार पर प्रतिवादी सं॰ 1 के बजाय उसको किस्तों का भुगतान करने की मांग करने लगा कि याची करार के अधीन बाध्य है जो याची ने तात्पर्यित रूप से उसके साथ किया था।

5. इन परिस्थितियों के अधीन वादी/याची ने करार, जिसे उसने अभिधान वाद सं॰ 77/2000 के तहत प्रतिवादी सं॰ 1 के साथ किया था, के विनिर्दिष्ट पालन हेतु वाद संस्थापित किया।

प्रतिवादी सं॰ 2 वाद में उपस्थित हुआ था और अपना लिखित कथन दिनांक 17.6.2002 को दाखिल किया। उसके लिखित कथन दाखिल करने के लगभग चार वर्ष बाद प्रतिवादी सं॰ 2 ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VIII नियम 6-A के अधीन इस आधार पर दिनांक 29.5.2006 को अपना प्रति दावा दाखिल किया कि वाद के संस्थापन के काफी पहले वाद हेतुक, जिसके लिए प्रति दावा दाखिल किया गया था, उद्‌भूत हुआ था और यह अभी भी जारी है।

6. वादी ने प्रति दावा की पोषणीयता पर आपत्ति करते हुए और इसे प्रारंभिक विवाद्यक के रूप में विनिश्चित करने के लिए विचारण न्यायालय से प्रार्थना करते हुए दिनांक 21.9.2006 को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XIV, नियम 1 और 2 के अधीन आपत्ति दाखिल की।

दिनांक 13.4.2007 के आक्षेपित आदेश द्वारा विचारण न्यायालय ने आदेश XIV, नियम 1 और 2 के अधीन वादी की याचिका को अस्वीकार कर दिया, अत: वर्तमान रिट याचिका दाखिल की गयी है।

7. जैसा वादी/याची के अभिवाकों से प्रतीत होता है और जैसा उसके अधिवक्ता द्वारा स्पष्ट किया गया है, वादी द्वारा प्रत्यर्थी सं॰ 2 के प्रति दावा के प्रति की गयी आपत्ति का आधार यह था कि प्रति दावा परिसीमा द्वारा वर्जित था और प्रति दावा में किया गया प्राख्यान अपने लिखित कथन में प्रतिवादी सं॰ 2 द्वारा किए गए प्रकथन के विपरीत था।

8. विचारण न्यायालय के आक्षेपित आदेश का विरोध करते हुए याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि विद्वान विचारण न्यायालय यह देखते हुए याची द्वारा की गयी आपत्तियों का अधिमूल्यन करने में विफल रहा है क्योंकि इसने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VIII, नियम 6A (1) के आज्ञापक प्रावधानों पर विचार नहीं किया है।

मामले के स्वीकृत तथ्यों को निर्दिष्ट करते हुए विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करेंगे कि अपने लिखित कथनों में प्रतिवादी सं॰ 2 ने कोई प्रति दावा नहीं उठाना चुना था। इसके बजाए, चार वर्ष बाद, जिस अवधि के दौरान प्रतिवादीगण के बचाव को बन्द कर दिया गया था और अभिलेख पर उपलब्ध अभिवाकों के आधार पर विचारण न्यायालय द्वारा विवाद्यकों की विरचना किए जाने पर वाद आगे बढ़ चुका था, प्रतिवादी सं॰ 2 द्वारा प्रति दावा दाखिल किया गया है। विद्वान अधिवक्ता जोड़ते हैं कि चूँकि प्रतिवादी सं॰ 2 ने पहले ही अपना बचाव प्रस्तुत कर दिया था, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VIII, नियम 6A (1) के अधीन प्रावधान उसे वाद में अपना प्रति दावा दाखिल करने से वर्जित करेंगे।

अपने तर्क के समर्थन में विद्वान अधिवक्ता **रमेश चन्द्र आर्दावातिया बनाम अनिल पंजवानी, AIR 2003 Supreme Court 2508** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट किया और विश्वास किया। **रोहित सिंह एवं अन्य बनाम बिहार राज्य, AIR 2007 SC 10** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय पर भी विश्वास व्यक्त किया गया है।

9. समानांतर स्तंभ में, प्रत्यर्थी सं॰ 2 द्वारा लिया गया दृष्टिकोण, जो इस रिट याचिका में प्रत्यर्थी प्रतिवाद कर रहा है, यह है कि याची का अभिवाक् कि प्रत्यर्थी सं॰ 2 द्वारा किया गया प्रति दावा समय वर्जित है, भ्रामक है। सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VIII, नियम 6A (1) के प्रावधानों को निर्दिष्ट करते हुए प्रत्यर्थी सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता तर्क करेंगे कि वाद में प्रतिवादी, अभिवाक के अपने अधिकार के अतिरिक्त, नियम 6 के अधीन मुजरा, वादी के दावा के विरूद्ध प्रति दावा के जरिए, वाद दाखिल किए जाने के पहले या बाद में लेकिन प्रतिवादी द्वारा अपना बचाव प्रस्तुत करने के पहले अथवा

अपने बचाव के लिए समय सीमा के अवसान के पहले वादी के विरूद्ध प्रतिवादी को प्रोद्भूत वाद हेतुक के संबंध में कोई अधिकार अथवा दावा स्थापित करता है, चाहे ऐसा प्रति दावा नुकसान के दावा की प्रकृति का हो अथवा नहीं। विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि प्रति दावा स्थापित करने के लिए वाद हेतुक वाद संस्थापित होने के पहले ही प्रतिवादी/प्रत्यर्थी सं॰ 2 को प्रोद्भूत हो चुका था और अभी भी जारी है। आदेश VIII नियम 6A के प्रावधानों में विहित समय प्रति दावा संस्थापित करने के लिए वाद हेतुक के प्रोद्भवन से संबंधित है। विद्वान अधिवक्ता आगे स्पष्ट करते हैं कि आवश्यक अपेक्षा यह है कि प्रति दावा दाखिल करने के लिए वाद हेतुक कम से कम प्रतिवादी द्वारा अपना लिखित कथन दाखिल करने से पहले उद्भूत होना चाहिए।

अपने तर्क के समर्थन में विद्वान अधिवक्ता **श्रीमती शांति रानी दास दीवानजी बनाम दिनेश चन्द्र डे, AIR 1997 SC 3985** में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त करते हैं।

10. याची के आधार कि विवाद्यकों की विरचना के बाद प्रति दावा उठाना अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है, को निर्दिष्ट करते हुए प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XIV नियम 2 (2) के प्रावधानों को निर्दिष्ट किएं और स्पष्ट करने का प्रयास किएं कि पूर्वोक्त प्रावधानों के अधीन, आपत्ति उठाने वाले पक्ष को उपदर्शित करना होगा कि या तो न्यायालय को अधिकारिता नहीं है अथवा विधि के प्रावधानों के अधीन वाद वर्जित है। केवल यह प्राख्यान कि प्रति दावा में किए गए प्रकथन लिखित कथन में अंतर्विष्ट बयानो के विरोध में है, को आपत्ति का मान्य आधार नहीं माना जा सकता है।

11. पक्षों के अधिवक्ता के प्रति निवेदनों से, यह प्रतीत होता है कि वादी/याची ने एक ही घर के लिए दो पृथक करार किया था। एक प्रतिवादी सं॰ 1/प्रत्यर्थी सं॰ 1 के साथ और दूसरा प्रतिवादी सं॰ 2/प्रत्यर्थी सं॰ 2 के साथ।

प्रतिवादी सं॰ 2 के अभिवाकों में विरोधाभास, जैसा वादी/याची इंगित करना चाहेगा, यह है कि जबकि लिखित कथन में प्रतिवादी सं॰ 2 गृह संपत्ति के संबंध में वादी के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए सहमत हुआ था, प्रतिदावा में प्रतिवादी सं॰ 2 विक्रय विलेख निष्पादित करने की अपनी पूर्व प्रतिबद्धता से तात्पर्यित रूप से मुकर गया है और वादी को वाद संपत्ति से वंचित करना इप्सित किया है।

12. अवर न्यायालय के आक्षेपित आदेश के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि प्रतिवादी सं॰ 2 द्वारा स्थापित प्रति दावा को अस्वीकार करने के लिए और विवाद्यक को प्रारंभिक विवाद्यक के रूप में विनिश्चित करने के लिए वादी की प्रार्थना इस आधार पर अस्वीकार कर दी गयी है कि याची द्वारा उठायी गयी आपत्तियाँ विधि एवं तथ्य दोनों के प्रश्नों को अंतर्ग्रस्त करता है और वादी ने अधिकारिता के आधार पर अथवा इस आधार पर कि प्रतिवादी का प्रतिदावा विधि के किसी विनिर्दिष्ट प्रावधान द्वारा वर्जित है, पोषणीयता का प्रश्न नहीं उठाया है और इस कारण प्रारंभिक विवाद्यक के रूप में प्रतिदावा की पोषणीयता का विनिश्चय करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु विचारण न्यायालय ने अन्य विवाद्यकों को विनिश्चित किए जाने के समय विनिश्चित करने हेतु विवाद्यक को छोड़ दिया।

13. पक्षों द्वारा उठाए गए विवाद के इर्द गिर्द घूमता प्रश्न यह है कि:–

(i) क्या प्रतिवादी सं० 2 द्वारा अपना बचाव प्रस्तुत कर दिए जाने के बाद आदेश VIII नियम 6A (1) के अधीन प्रतिवादी सं० 2 का प्रतिदावा अनुज्ञात किया जा सकता है?

(ii) क्या अपना लिखित कथन दाखिल करने की तिथि से लगभग चार वर्ष के अवसान के बाद प्रतिवादी सं० 2 के प्रतिदावा को अनुज्ञात किया जा सकता है जब ऐसा दावा परिसीमा द्वारा अभिकथित रूप से वर्जित है?

14. दोहराते हुए, स्वीकृत तथ्य ये हैं कि प्रतिवादी सं॰ 2, अपनी उपस्थिति दर्ज करने के बाद, दिनांक 17.6.2002 को अपना लिखित कथन प्रस्तुत किया था और तत्पश्चात् विचारण न्यायालय ने विवाद्यकों को विरचित किया था और वादी को अपना साक्ष्य देने की अनुमति देते हुए विचारण हेतु अग्रसर हुआ था।

लगभग चार वर्ष बाद अर्थात् दिनांक 29.5.2006 को, प्रतिवादी सं॰ 2 ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VIII, नियम 6A (1) के प्रावधानों के अधीन अपना आवेदन दाखिल करके प्रतिदावा उठाया है।

अपने लिखित कथन में मूलत: घोषित प्रतिवादी सं॰ 2 के अभिवाक् उसके द्वारा स्थापित प्रतिदावा के विरोध में है। यहाँ यह उल्लिखित किया जा सकता है कि वर्तमान रिट याचिका में विचारण न्यायालय का दिनांक 13.4.2007 का आक्षेपित आदेश स्थगित किया गया है। किन्तु वाद आगे बढ़ा है और दिनांक 30.9.2009 को बचाव साक्ष्य भी खत्म हो गया था। किन्तु अपने प्रतिदावा के समर्थन में साक्ष्य देने के लिए विचारण न्यायालय ने प्रतिवादी सं॰ 2 को अनुमति नहीं दी थी।

15. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VIII, नियम 6A और 6B का पठन निम्नलिखित है:–

*6-A. **प्रतिवादी द्वारा प्रति दावा.**-(1) वाद में प्रतिवादी नियम 6 के अधीन मुजरा के अभिवचन के अपने अधिकार के अतिरिक्त वादी के दावे के विरूद्ध प्रति दावे के रूप में किसी ऐसे अधिकार या दावे को, जो वादी के विरूद्ध प्रतिवादी को, वाद फाइल किए जाने के पूर्व या पश्चात् किन्तु प्रतिवादी द्वारा अपनी प्रतिरक्षा परिदत्त किए जाने के पूर्व या अपनी प्रतिरक्षा परिदत्त किए जाने के लिए परिसीमित समय का अवसान हो जाने के पूर्व, किसी वाद-हेतुक के बारे में प्रोद्भूत हुआ हो, उठा सकेगा चाहे ऐसा प्रति दावा नुकसानी के दावे के रूप में हो या नहीं:*

परन्तु ऐसा प्रति दावा न्यायालय की अधिकारिता की धन-सम्बन्धी सीमाओं से अधिक नहीं होगा।

(2) ऐसे प्रति दावे का प्रभाव प्रतीपवाद के प्रभाव के समान ही होगा जिससे न्यायालय एक ही वाद में मूल दावे और प्रति दावे दोनों के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय सुनाने के लिए समर्थ हो जाए।

(3) वादी को इस बात की स्वतंत्रता होगी कि प्रतिवादी के प्रति दावे के उत्तर में लिखित कथन ऐसी अवधि के भीतर जो न्यायालय द्वारा नियत की जाए, फाइल करे।

(4) प्रति दावे को वादपत्र के रूप में माना जाएगा और उसे वही नियम लागू होंगे जो वादपत्रों को लागू होते हैं।

*6.B. **प्रति दावे का कथन किया जाना.**-जहाँ कोई प्रतिवादी, प्रति दावे के अधिकार का समर्थन करने वाले किसी आधार पर निर्भर करता है वहाँ वह अपने लिखित कथन में यह विनिर्दिष्टः कथन करेगा कि वह ऐसा प्रति दावे के रूप में कर रहा है।*

16. विधि के उक्त प्रावधानों के पठन से प्रकट होगा कि सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश VIII, नियम 6A प्रावधानित करता है कि वाद में प्रतिवादी, अपने अभिवाक् के अधिकार नियम 6 के अधीन मुजरा, के अतिरिक्त वादी के दावा के विरुद्ध प्रति दावा के जरिए वाद दाखिल किए जाने के

पहले या बाद में लेकिन प्रतिवादी द्वारा अपना बचाव प्रस्तुत करने के पहले अथवा अपना बचाव प्रस्तुत करने के लिए समय सीमा के अवसान के पहले वादी के विरूद्ध प्रतिवादी को प्रोद्भूत वाद हेतुक के संबंध में कोई अधिकार अथवा दावा स्थापित कर सकता है। (जोर दिया गया)

रमेश चंद आर्दावातिया (ऊपर) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि प्रति दावा के जरिए अभिवाक् लिखित कथन दाखिल करने के अधिकार के साथ चलता है और प्रति दावा स्थापित करने का ऐसा अधिकार मुजरा किए गए अभिवाक् के अधिकार के अतिरिक्त है। अत: लिखित कथन में मुजरा अथवा प्रति दावा का अभिवाक् करना ही होगा।

रोहित सिंह (ऊपर) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि निसंदेह प्रति दावा लिखित कथन दाखिल किए जाने के बाद भी दाखिल किया जा सकता था किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि विवाद्यकों की विरचना के बाद साक्ष्य बंद किए जाने के बाद प्रति दावा उठाया जा सकता है।

17. आदेश VIII, नियम 6 के अधीन याचिका में अंतर्विष्ट प्रकथनों से प्रतीत होता है कि प्रतिवादी सं॰ 2 ने वाद संपत्ति के कब्जे की पुनर्स्थापना के लिए प्रति दावा इस आधार पर स्थापित किया है कि प्रतिफल राशि के बैलेन्स का भुगतान करने में विफल होकर वादी ने संविदा/करार भंग किया था। इस संदर्भ में वादी/याची की आपतियाँ यह थी कि करार के तात्पर्यित भंग पर आधारित प्रति दावा परिसीमा कानून के अधीन समय वर्जित था।

18. विरचित विवाद्यकों पर निर्णय उद्घोषित करने की विचारण न्यायालय की शक्तियाँ सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XIV, नियम 2 के प्रावधानों के अधीन अधिकथित की गयी है। सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XIV, नियम 2(1) और (2) का पठन निम्नलिखित है:–

> *2. **न्यायालय द्वारा सभी विवाद्यकों पर निर्णय सुनाया जाना.**–इस बात के होते हुए भी कि वाद का निपटारा प्रारम्भिक विवाद्यक पर किया जा सकेगा, न्यायालय उप-नियम (2) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए सभी विवाद्यकों पर निर्णय सुनाएगा।*
>
> *(2) जहाँ विधि विवाद्यक और तथ्य विवाद्यक दोनों एक ही वाद में पैदा हुए हैं और न्यायालय की यह राय है कि मामले या उसके किसी भाग का निपटारा केवल विधि विवाद्यक के आधार पर किया जा सकता है वहाँ यदि वह विवाद्यक–*
>
> *(a) न्यायालय की अधिकारिता, अथवा*
>
> *(b) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि द्वारा सृष्ट वाद के वर्जन, से सम्बन्धित है तो वह पहले उस विवाद्यक का विचारण करेगा और उस प्रयोजन के लिए यदि वह ठीक समझे तो, वह अन्य विवाद्यकों का निपटारा तब तक के लिए मुल्तवी कर सकेगा जबतक कि उस विवाद्यक का अवधारण न कर दिया गया हो और उस वाद की कार्यवाही उस विवाद्यक के विनिश्चय के अनुसार कर सकेगा।*

19. अभिवाक् किए गए तथ्यों के संप्रेक्षण पर, प्रतिदावा के प्रति अपनी आपत्तियों में और प्रतिवादी सं॰ 2 के प्रति दावा के पोषणीयता के विवाद्यक को प्रारंभिक विवाद्यक के रूप में विनिश्चित करने के लिए वादी ने अपनी प्रार्थना में अभिवाक् किया था कि परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों के अधीन प्रति दावा परिसीमा द्वारा वर्जित है और प्रति दावा के अभिवाक् लिखित कथन में प्रतिवादी के अभिवाकों से पूर्णत: विरोध में है। यह प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय ने वादी की आपत्तियों पर समुचित परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया है और एक संक्षिप्त विचार द्वारा उसका दावा अस्वीकार कर दिया है कि वादी ने ''अधिकारिता का आधार अथवा विधि के विनिर्दिष्ट प्रावधानों द्वारा प्रति दावा वर्जित होने का आधार'' नहीं उठाया है।

विचारण न्यायालय को वादी की आपत्तियों का इस आधार के आलोक में परीक्षण करना चाहिए था कि प्रति दावा परिसीमा द्वारा वर्जित है या नहीं और न ही इसने इस विवाद्यक का परीक्षण किया है कि क्या विधि के प्रावधानों और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में प्रतिवादी विलंबित प्रति दावा स्थापित कर सकता था।

20. ओरियन्टल सेरामिक प्रोड्क्टस प्रा॰ लि॰ बनाम कलकत्ता नगर निगम, AIR 2000 Calcutta 17 मामले में कोलकाता उच्च न्यायालय की पीठ ने अभिनिर्धारित किया है कि जहाँ कोई कारण नहीं दिया गया है कि क्यों प्रतिवादियों ने लिखित कथन दाखिल करते समय अथवा विवाद्यकों को स्थिर करने के पहले अथवा वादी के साक्ष्य को बन्द किए जाने के पहले प्रति दावा दाखिल नहीं किया था, प्रतिवाद अस्वीकार किए जाने योग्य है क्योंकि प्रति दावा का बचाव करने में, यदि इस इतने विलंबित चरण पर स्वीकार किया जाता है, याची पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

21. इसी निर्णय में संप्रेक्षणों के अनुसार, चुँकि प्रति दावा को स्वतंत्र वाद पत्र माना जाना है, यह प्रश्न कि क्या यह परिसीमा द्वारा वर्जित है, निसंदेह यह इस चरण पर जब इसे दाखिल किया गया है, विनिश्चय के लिए न्यायालय की अधिकारिता के अंतर्गत आता है और यदि ऐसे वाद-पत्र में किए गए निवेदनों के आधार पर यह परिसीमा के कानून द्वारा वर्जित प्रतीत होता है, यह सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VII, नियम 11(d) के अधीन अस्वीकार किये जाने योग्य होगा।

22. उक्त तथ्यों और परिस्थितियों और चर्चा के आलोक में मैं संतुष्ट हूँ कि विचारण न्यायालय का आक्षेपित आदेश विधि में संपोषित नहीं किया जा सकता है और इसलिए एतद् द्वारा इसे अभिखंडित किय जाता है। परिणामस्वरूप, याचिका अनुज्ञात की जाती है। किन्तु, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में व्यय का आदेश नहीं होगा।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल एवं प्रदीप कुमार, न्यायमूर्तिगण

शान्तुन मजुमदार

बनाम

उपाध्यक्ष, केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण, पटना एवं अन्य

CWJC No. 1847 of 2001. Decided on 26th April, 2010.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

सेवा विधि–हटाया जाना–सेवा से हटाये जाने का आदेश CAT द्वारा मान्य ठहराया गया–जाँच के परिणाम की प्रतीक्षा किए बगैर प्रत्यर्थी द्वारा बर्खास्तगी का आदेश पारित किया गया–अधिकरण ने इस आधार पर कार्यवाही की कि याची का आरंभिक नियुक्ति दो वर्षों के लिए परिवीक्षा पर था, जिसे बाद में विस्तारित किया गया था परन्तु चूँकि नियुक्ति परिवीक्षा पर अस्थायी आधार पर थी, अतः परिवीक्षा अवधि को संतोषजनक रूप से पूरा करने में विफलता आवेदक को कोई कारण बताओ नोटिस निर्गत किए बिना सेवा से बर्खास्तगी का दायी बनायेगा–अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित करने में अभिलेख की त्रुटि कारित की कि याची परिवीक्षा अवधि संतोषजनक रूप से पूरा करने में विफल रहा–अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित करने में विधि की त्रुटि भी कारित की है कि याची को सेवा से बर्खास्त करने के लिए कारण बताओ नोटिस दिया जाना भी आवश्यक नहीं था–याची परिवीक्षा अवधि के समापन के उपरांत भी सेवा में बना रहा–यह परिवीक्षा अवधि के दौरान या समाप्ति पर मात्र बर्खास्तगी का एक मामला नहीं था–आक्षेपित आदेश अपास्त–आवेदन अनुज्ञात।

(पैरा 4 एवं 9 से 13)

निर्णयज विधि.–(1999)2 SCC 21; (2000) 3 SCC 239; (2000) 5 SCC 250—Relied upon.

अधिवक्तागण.–M/s M.M. Pal, M. Palit, I. Bhaduri, For the Petitioner; M/s Manish Kumar, F. Rahman, For the Respondents.

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.–यह रिट याचिका O.A. No. 451 वर्ष 1997 में केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण, पटना द्वारा पारित दिनांक 18.12.2000 के निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध निर्दिष्ट है जिसके द्वारा अधिकरण ने आवेदन को खारिज किया था और अभिनिर्धारित किया था कि याची को सेवा से हटाते हुए प्रत्यर्थीगण द्वारा निर्गत दिनांक 25.3.1997 के आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

2. मामले के तथ्य संकीर्ण परिक्षेत्र में स्थित है:–

याची को दिनांक 10.9.92 के कार्यालय ज्ञापांक द्वारा 16.12.1992 के प्रभाव से भारतीय लाख रिसर्च इंस्टीच्यूट में प्रशासनिक अधिकारी के तौर पर नियुक्त किया गया था। प्रारम्भ में, याची को उसके पद पर स्थापन की तिथि से दो वर्षों की अवधि के लिए परिवीक्षा पर रखा गया था। नियुक्ति के निबन्धन के अनुसार, सक्षम प्राधिकारी के स्वविवेक पर परिवीक्षा की अवधि बढ़ाई जा सकती है। यह प्रतीत होता है कि दो वर्षों की परिवीक्षा अवधि के समाप्ति के उपरान्त उसे वर्ष 1995 में कुछ प्रतिकूल टिप्पणियों की संसूचना दी गयी थी, जिसे विस्तृत अभ्यावेदन स्वीकार करने के उपरान्त दिनांक 7.8.1996 के आदेश के माध्यम से हटा दिया गया था। 1996 में अधीनस्थों के साथ अभिकथित दुर्व्यवहार एवं वित्तीय अनियमितताओं के लिए याची से कारण बताओ का उत्तर देने को कहा गया था। मार्च 1996 में दिनांक 30.3.96 के कार्यालय आदेश के माध्यम से याची की परिवीक्षा अवधि एक वर्ष के लिए अर्थात् 14.12.95 तक के लिए बढ़ा दिया गया था। दिनांक 25.7.96 के कार्यालय आदेश द्वारा याची को स्थानान्तरित किया गया था एवं नेशनल रिसर्च सेन्टर, गुजरात में प्रशासनिक अधिकारी के तौर पर पदस्थापित किया गया था, इसी प्रकार, दिनांक 9.4.96 के आदेश के माध्यम से, याची के विरुद्ध लगाये गये आरोप पर निष्पक्ष जाँच संचालित करने के लिए एक जाँच समिति गठित की गयी थी। लेकिन, जाँच के परिणाम के प्रतीक्षा किये बगैर, याची के मामले को विभागीय प्रोन्नति समिति (D.P.C.) के समक्ष रखा गया था जिसने सेवा से उसे हटाये जाने की अनुशंसा की। इस प्रकार, बर्खास्तगी का आदेश दिनांक 25.3.97 के आदेश के माध्यम से प्रत्यर्थीगण द्वारा पारित किया गया था। उक्त आदेश को ऊपर वर्णित O.A. No. 451 वर्ष 1997 दाखिल करके अधिकरण के समक्ष याची द्वारा चुनौती दी गयी थी जो खारिज हुआ था अत: यह रिट याचिका दाखिल की गयी है।

3. अधिकरण ने इस आधार पर कार्यवाही की कि याची की आरम्भिक नियुक्ति दो वर्षों के लिए परिवीक्षा पर की गयी थी जिसका बाद में विस्तार किया गया था लेकिन चूँकि परिवीक्षा पर अस्थायी आधार पर नियुक्ति की गयी थी, इसलिए परिवीक्षा की अवधि संतोषप्रद रूप से पूरा करने में विफलता आवेदक को सेवा से बर्खास्तगी का दायी बना देगा। उसकी सेवायें सम्बन्धित नियोक्ता प्राधिकारी द्वारा परिवीक्षा के अवधि के दौरान कारण बताओ नोटिस दिये बगैर समाप्त की जा सकती थी। अधिकरण ने निम्नवत् अभिनिर्धारित किया:–

> *"13. यह इंगित किया जा सकता है कि सेवा में सम्पुष्टि केवल एक बार एंट्री ग्रेड पर की जाती है। एक अधिकारी, जिसने परिवीक्षा की अवधि सफलतापूर्वक पूरी की है उसपर सम्पुष्टि के लिए विचार किया जाता है। सम्पुष्टि का विशेष आदेश तभी निर्गत किया जाता है जब यह प्रत्येक दृष्टिकोण से स्पष्ट हो। वर्तमान मामले में, आवेदक को एक प्रशासनिक अधिकारी के ग्रेड में नियुक्त करने का निर्देश दिया गया था। उससे विनिर्दिष्ट अवधि के लिए परिवीक्षा प्रशिक्षण लेने की अपेक्षा की जाती थी। उसे परिवीक्षा अवधि के संतोषप्रद रूप से समाप्ति के उपरान्त ही सम्पुष्ट किया जाना था। लेकिन, वर्तमान मामले में, हम पाते हैं कि आवेदक परिवीक्षा अवधि सफलतापूर्वक*

पूरा करने में विफल रहा। ACR सहित उसके प्रदर्शन रिपोर्ट पर सम्यक् रूप से गठित DPC द्वारा विचार किया गया था जिसके अनुशंसा पर, उसकी सेवाओं को समाप्त किया गया था आवेदक ने बर्खास्तगी के आक्षेपित आदेश की इस आधार पर आलोचना की है कि उसे सेवाओं की समाप्ति के पहले कारण बताओ नोटिस नहीं दिया गया था एवं, इस प्रकार, नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन हुआ है। इस चरण पर यह इंगित किया जा सकता है कि विषय एक ऐसे परिवीक्षा अधिकारी से सम्बन्धित था, जिसे सेवा में सम्पुष्ट किया जाना शेष था, यह वैसे कर्मचारियों/अधिकारियों से भिन्न है जो सेवा में पहले ही सम्पुष्ट किये जा चुके हैं। ऐसे व्यक्तियों के लिए सेवा के समापन के विषय में कार्यवाही करने के लिए विहित प्रक्रिया अपनाते हुए एक विनिर्दिष्ट प्रावधान है, जिसमें कारण बताओ नोटिस जारी किये जाने के लिए प्रावधान इत्यादि शामिल है। लेकिन, एक परिवीक्षा अधिकारी के मामले में, ऐसा कोई भी विनिर्दिष्ट प्रावधान नहीं है। यह नियुक्ति के निबन्धनों एवं शर्तों द्वारा निर्देशित है। वर्तमान मामले में, दिनांक 10 सितम्बर, 1992 के नियुक्ति पत्र (उपाबन्ध-1) ने यह स्पष्ट किया था कि परिवीक्षा की अवधि संतोषप्रद रूप से पूरा करने में विफलता आवेदक को सेवा से बर्खास्त किये जाने का दायी बना देगा। परिवीक्षा की अवधि के दौरान नियोक्ता प्राधिकारी नोटिस दिये बगैर और इसके बदले में वेतन का भुगतान किये बगैर आवेदक की सेवायें समाप्त कर सकते हैं।

14. हमने 16.2.1996, 28.6.1996, 6.11.1996 एवं 14.2.1997 को की गयी प्रासंगिक DPC की कार्यवाहियों का परिशीलन किया है और पाते हैं कि आवेदक के मामले पर DPC के बैठकों में समय-समय पर विचार किया गया है। 16.2.1996 को आयोजित DPC की बैठक में यह अनुशंसा की गयी थी कि आवेदक के परिवीक्षा अवधि 14.12.1995 तक विस्तारित किया जाय। आवेदक के मामले पर 6.11.1996 को आयोजित बैठक में DPC द्वारा A.O. के पद पर सम्पुष्टि हेतु दोबारा विचार किया गया था एवं यह निर्णय लिया गया था कि आवेदक सहित इसमें वर्णित 3 प्रशासनिक अधिकारियों के प्रदर्शन पर विशेष एवं अद्यतन रिपोर्ट प्राप्त किया जाये एवं परिवीक्षा अवधि के क्लीयरेंस के प्रयोजन से उनकी फिटनेस/उपयुक्तता या अन्यथा का न्यायनिर्णयन के लिए अगले DPC के समक्ष रखा जाये। यह प्रतीत होता है कि विशेष रिपोर्ट, ACR इत्यादि के साथ मामले को पुनः 14.2.1997 को आयोजित DPC के बैठक में रखा गया था यह नोट किया गया था कि आवेदक को समय-समय पर भिन्न-भिन्न अधिकारियों के अधीन कार्य करने का अवसर दिया गया था परन्तु यह सम्प्रेक्षित किया गया था कि इसके एवं पूर्वतर DPC के अनुशंसा पर उसकी परिवीक्षा के विस्तार के बावजूद अधिकारी ने कोई सुधार नहीं किया है। ACR रिकार्डों, विशेष प्रदर्शन रिपोर्ट इत्यादि पर सम्यक् रूप से विचार करके DPC ने विहित सामान्य परिवीक्षा अवधि से दुगुनी अवधि पुरा करने के बाद भी शान्तनु मजुमदार A.O. (आवेदक) को उसकी परिवीक्षा की समाप्ति के लिए उपर्युक्त नहीं पाया। यह सम्प्रेक्षित किया गया था कि नियमावली के अन्तर्गत उसके मामले में चार वर्ष से अधिक का समय विस्तार नहीं दिया जा सकता है। इसलिए DPC ने उसे सेवा से बर्खास्त करने की अनुशंसा की जिसे सक्षम प्राधिकारी द्वारा स्वीकार कर लिया गया था एवं आवेदक को दिनांक 25.3.1997 के आक्षेपित आदेश (उपाबन्ध-10) के माध्यम से सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था।

15. मामले के उपरोक्त तथ्य दर्शाते हैं कि आवेदक के मामले पर उसके ACR के सन्दर्भ एवं साथ ही सम्यक् रूप से गठित DPC द्वारा विस्तार से विचार किया गया था जिसने आवेदक को सेवा से बर्खास्त करने की अनुशंसा की थी। यह इंगित किया जा सकता है कि नियमावली के अन्तर्गत DPC को एक विशेष भूमिका दी गयी है।

यह एक विशेषज्ञ निकाय है एवं इसके अनुशंसाओं को सम्यक् महत्व दिया जाना होता है जबतक की यह प्रमाणित न हो सके कि DPC की अनुशंसा दुर्भावना से की गयी है या यह विधि के किसी प्रावधान के विरूद्ध है। वर्तमान मामले में हम ऐसी कोई बात नहीं पाते हैं।

4. उपरोक्त निष्कर्ष से, प्रकटत: यह स्पष्ट है कि अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित करने में अभिलेख की त्रुटि कारित की है कि याची परिवीक्षा अवधि संतोषप्रद रूप से पूरा करने में विफल रहा। अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित करने में भी विधि की त्रुटि कारित की है कि याची की सेवाओं की समाप्ति के लिए कोई कारण बताओ नोटिस अपेक्षित नहीं था इस आधार पर कि नियुक्ति पत्र के निबन्धनों में परिवीक्षा अवधि संतोषप्रद रूप से पूरा करने में विफलता आवेदक को सेवा से बर्खास्तगी का दायी बना देगा।

5. वर्तमान मामले की ओर आते हुए, मैं कुछ ऐसे विनिश्चयों पर परिचर्चा करना चाहूँगा जहाँ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सिद्धान्त अधिकथित किया गया है।

6. वी॰ पी॰ आहूजा बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, (2000)3 SCC 239 के मामले में, तथ्य यह था कि अपीलार्थी को दिनांक 29.9.98 के आदेश द्वारा पंजाब कोऑपरेटिव कॉटन मार्केटिंग एण्ड स्पिनिंग मिल्स फेडरेशन लिमिटेड के स्थापन में मुख्य कार्यकारी के तौर पर नियुक्त किया गया था उसकी नियुक्ति के निबन्धनों में से एक यह था कि वह दो वर्षों की अवधि के लिए परिवीक्षा पर रहेगा जो प्रबन्धन के स्वविवेक पर आगे बढ़ाया जा सकता था। उसकी सेवाओं को दिनांक 2.12.1998 के आदेश द्वारा इस आधार पर समाप्त कर दिया गया था कि वह प्रशासनिक एवं तकनीकी तौर पर अपने कर्तव्यों के निर्वहन में विफल रहा था इस आदेश को रिट याचिका में उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गयी थी जिसे खारिज किया गया था। मामला अंतत: सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आया। अपील को अनुज्ञात करते समय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नवत् अभिनिर्धारित किया:–

"7. एक अस्थायी सेवक के समान एक परिवीक्षु भी कुछ सुरक्षा का हकदार होता है एवं उसकी सेवाओं को मनमाने ढंग से समाप्त नहीं किया जा सकता है और न ही उनकी सेवाओं को दण्डात्मक तरीके से नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का अनुपालन किए बगैर समाप्त किया जा सकता है।

8. उच्च न्यायालय एवं साथ ही इस न्यायालय के समक्ष पक्षकारों द्वारा दाखिल शपथपत्र उस पृष्ठभूमि को इंगित करते हैं जिसमें अपीलार्थी की सेवाओं को समाप्त करने वाला आदेश पारित किया गया। ऐसा एक आदेश जो प्रकटतः कलंकित करने वाला है, नियमित जाँच कराये बगैर और अपीलार्थी को सुनवाई का अवसर दिये बगैर पारित नहीं किया जा सकता था।

9. एक ''परिवीक्षु'' के सम्बन्ध में सम्पूर्ण निर्णयज विधि को इस न्यायालय द्वारा दीप्ती प्रकाश बनर्जी बनाम सत्येन्द्र नाथ बोस नेशनल सेंटर फॉर बेसिक साइंसेज में दिए गए एक हाल के निर्णय में पुनर्विलोकन किया गया था। यह निर्णय वर्तमान मामले में भी समान रूप से लागू होता है, विशेषकर, इस मामले में, आक्षेपित आदेश प्रकटतः कलंकित करने वाला है।''

7. कर्नाटक स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कॉरपोरशन एवं एक अन्य बनाम एस॰ मंजुनाथ, (2000)5 SCC 250 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने पूर्वतर निर्णय पर परिचर्चा करने के उपरांत निम्नवत् अभिनिर्धारित किया:–

''एक परिवीक्षु के अधिकारों पर शासित करने वाले सामान्य एवं बुनियादी सिद्धांतों की घोषणा करने वाले इस न्यायालय की संवैधानिक न्यायपीठ के एक से अधिक निर्णय के बावजूद इस विषय पर विधि परिवर्तित हो रही है जो सम्बन्धित सेवा नियमावली/विनियमों के विशिष्ट पैटर्न एवं इसमें निहित योजना पर निर्भर है।

व्यक्तिगत या मामलों के वर्गों में नियोक्ता एवं कर्मचारी के बीच सदैव मतभेद होता था।

10. दयाराम दयाल मामला एवं वसीम बेग मामला में रिपोर्ट किए गए दो हाल के निर्णयों में सम्पूर्ण निर्णयज विधि पर विस्तृत रूप से विचार करके सिद्धांतों का पुनर्विलोकन सूक्ष्मता से विष्लेषण एवं स्पष्ट करने का अवसर इस न्यायालय के समक्ष आया था। मामलों की एक पंक्ति में अभिनिर्धारित किया है कि अगर नियुक्ति के नियम अथवा आदेश में परिवीक्षा की एक अवधि विनिर्दिष्ट की जाती है एवं परिवीक्षा अवधि बढ़ाने की भी शक्ति प्रदान की जाती है एवं अधिकारी को परिवीक्षा की विहित समयावधि से परे कार्य करने की अनुज्ञा दी जाती है, तो उसे संपुष्ट किया गया समझा नहीं जा सकता है एवं परिवीक्षा के आरम्भिक एवं विस्तारित अवधि की समाप्ति के उपरांत अधिकारी की सेवा समाप्ति की शक्ति पर कोई वर्जन नहीं है। यह इस कारण से है कि परिवीक्षा की समाप्ति पर वह सारवान स्थायी नियुक्ति के लिए मात्र अर्हित या पात्र हो जाता है। मामलों की अन्य पंक्ति वे हैं जहाँ यद्यपि आरम्भिक परिवीक्षा एवं इसके विस्तार के लिए नियमावली में एक प्रावधान है, वहाँ ऐसे विस्तार की एक अधिकतम अवधि का भी प्रावधान किया गया है जिसके परे परिवीक्षा की अवधि का विस्तार अनुमान्य नहीं है। संवैधानिक पीठ ने जिसने पंजाब राज्य बनाम धरम सिंह में रिपोर्ट किए गए मामले पर विचार किया था, मामलों की अन्य पंक्ति के साथ विभेद करते हुए अभिनिर्धारित किया कि परिवीक्षा अवधि से परे एक परिवीक्षु के तौर पर सेवा में बने रहने की निरन्तरता की उपधारणा को परिवीक्षा के विस्तार के लिए अधिकतम समय सीमा नियत करके नकार दिया गया है। परिणामतः ऐसे मामलों में, अधिकतम अवधि की समाप्ति के उपरांत सेवा समाप्ति को, जहाँ तक परिवीक्षा का विस्तार किया जा सकता था, अवैध अभिनिर्धारित किया गया था, क्योंकि सम्बन्धित अधिकारी को सम्पुष्ट किया जा चुका समझा जाना चाहिए।

8. राधे श्याम गुप्ता बनाम यू॰ पी॰ स्टेट एग्रो इंडस्ट्रिज कॉरपोरेशन लि॰ एवं एक अन्य, (1999)2 SCC 21 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने सिद्धांत अधिकथित किया और इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:–

"34. परन्तु ऐसे मामलों में जहाँ सेवा समापन की कार्यवाही एक जाँच के उपरांत किया जाता है एवं साक्ष्य प्राप्त किया जाता है एवं एक निश्चित प्रकृति के अवचार के सम्बन्ध में निष्कर्षों को अधिकारी के पीठ पीछे प्राप्त किया जाता है एवं जहाँ ऐसी एक रिपोर्ट के आधार पर सेवा समाप्ति का आदेश निर्गत किया जाता है वहाँ ऐसा एक आदेश नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघनकारी होगा क्योंकि जाँच का उद्देश्य उसे दण्डित करने के उद्देश्य से अभिकथनों की सत्यता का पता करना है न कि आगे की नियमित विभागीय जाँच के लिए मात्र साक्ष्य एकत्रित करना। ऐसे मामलो में, सेवा समापन के अवचार पर आधृत के तौर पर माना जाएगा और दण्डात्मक होगा। स्पष्ट रूप से ये सभी ऐसे मामले नहीं है जहाँ नियोक्ता यह महसूस करे कि कर्मचारी के आचरण के विरुद्ध मात्र संदेह है परन्तु ऐसे भी मामले हैं जिसमें नियोक्ता ने जाँच अधिकारी के निश्चित एवं स्पष्ट निष्कर्षों को वास्तविक रूप से स्वीकार किया है, जो कर्मचारी के पीठ पीछे तैयार किया गया था, यद्यपि निष्कर्षों की ऐसी स्वीकृति को सेवा समापन के आदेश में अभिलिखित नहीं किया जाता है यही कारण है कि अवचार ऐसे मामलों में आधार होता है न कि मात्र मंशा।"

9. यह पता करने के क्रम में कि क्या याची की सेवा से बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश दण्डात्मक एवं कलंकयुक्त है या मात्र एक बर्खास्तगी, यहाँ पर कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों पर विचार करना उपयोगी है याची ने दो वर्षो की परिवीक्षा अवधि 16.12.1994 को पूरा किया। परिवीक्षा अवधि के समाप्ति के उपरान्त याची सेवा में बना रहा। मार्च 1996 में प्रत्यर्थी ने दिनांक 30.3.1996 के पत्र के

माध्यम से परिवीक्षा अवधि का विस्तार एक वर्ष के लिए 14.12.1995 तक कर दिया। अन्य शब्दों में, एक वर्ष की विस्तारित अवधि की 14.12.1995 को समाप्ति के उपरान्त याची सेवा में बना रहा यहाँ मैं इंगित करूँगा कि वर्ष 1996 में 14.12.1995 तक की परिवीक्षा अवधि का भूतलक्षी विस्तार देने का कारण क्या था यह सर्वोत्तम रूप से प्रत्यर्थीगण को ही ज्ञात है। चाहे जो भी हो, परिवीक्षा अवधि के विस्तार का उपरोक्त पत्र निर्गत करने से पहले याची को दिनांक 25.1.96 को एक आरोप ज्ञापांक का तामीला कराया गया था। उक्त ज्ञापांक द्वारा, याची को कारण बताने का निर्देश दिया गया था कि उक्त आरोपों के सम्बन्ध में उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाई प्रारम्भ क्यों न की जाये। बेहतर अधिमूल्यन के लिए दिनांक 25.1.1996 के पत्र को यहाँ पर नीचे उद्धृत किया जाता है:–

''कारण बताओ नोटिस

अधोहस्ताक्षरी के ध्यान में यह लाया गया है कि श्री एस० मजुमदार ने C.H.E.S., राँची में प्रशासनिक अधिकारी के तौर पर कार्य करते हुए वित्तीय अनियमिततायें कारित की, वरीयों एवं स्टेशन पर कार्यरत स्टॉफ के साथ दुर्व्यवहार किया। उक्त आरोपों में आयोजित प्रारंभिक जाँच में यह स्थापित किया गया है कि

(1) श्री एस० मजुमदार ने सक्षम प्राधिकारी अर्थात् निदेशक, IIHR, बेंगलोर के अनुमोदन के बिना 26, 776/- रु० के लागत पर गेस्टेटनर रोटरी डुप्लीकेटर मशीन के उपापन के लिए कार्रवाई प्रारम्भ की। डुप्लीकेटिंग मशीन का क्रय C.H.E.S., राँची के EFC में अनुमोदित नहीं किया गया था। क्रय प्रक्रिया अर्थात् कोटेशन की मांग, DGS & D दर का अभिनिश्चय एवं सांपतिक मद प्रमाणपत्र इस मामले में प्राप्त नहीं किया गया था। उन्होंने फॅर्म का भुगतान करने के लिए FVC विपत्र पर स्टेशन प्रमुख का हस्ताक्षर प्राप्त नहीं किया था।

(2) श्री एस० मजुमदार स्टॉफ सदस्यों पर कार्यालय अवधि के दौरान चीखने के आदी है जिसके द्वारा दूसरे लोगों का ध्यान हटता है एवं लाइब्रेरी सेक्शन, इत्यादि का कार्य प्रभावित होता है।

(3) श्री डी० बनर्जी कनीय स्टेनो को जो C.H.E.S., राँची 15.3.95 से 18.3.95 तक जाँच समिति में कार्य करने हेतु आए थे, 19.3.95 से 27.3.95 तक CHES, राँची में प्रतिधारित किया गया था एवं दुर्भावनापूर्ण आशय से प्रसंस्करण का कार्य सौंपा गया था।

(4) श्री एस० मजुमदार खरीददारी के लिए स्थानीय बाजार जाने के आदी हैं जिससे कार्यालय लंबित रहता है।

(5) श्री एस० मजुमदार ने प्रशासनिक अधिकारी के तौर पर नियमावली के उल्लंघन में अग्रिम में दिए गए रुपयों से स्टेशनरी सामग्रियों के बारम्बार खरीद की अनुमति दी थी।

चूँकि श्री एस० मजुमदार ने प्रशासनिक अधिकारी के तौर पर नियमावली का उल्लंघन किया था एवं वित्तीय अनियमितता, दुर्व्यवहार इत्यादि के अपने कृत्यों द्वारा मनमाने तौर पर कार्रवाई की थी, अतएव उन्हें एतद् द्वारा कारण बताओ नोटिस दिए जाने का निर्देश दिया जाता है कि उपर कथित आरोपों के सम्बन्ध में उसके विरूद्ध विभागीय कार्रवाई क्यों न की जाय। इस सम्बन्ध में उसका उत्तर इस नोटिस की प्राप्ति की तिथि से 15 दिनों के भीतर अधोहस्ताक्षरी तक पहुँच जाना चाहिए।

हस्ताक्षर

(आई० एस० यादव)

निदेशक''

10. याची ने कारण बताओ का विस्तृत उत्तर पेश किया परन्तु जाँच याची के पीठ पीछे संचालित किया गया था। बर्खास्तगी ज्ञापांक दिनांकित 25.3.1997 में बर्खास्तगी/याची के सेवा से हटाया जाना अन्य के साथ-साथ इस आधार पर था कि याची के कार्य का प्रदर्शन एवं आचरण संतोषजनक नहीं था। आरोपों में से एक यह था कि कंपनी के कारोबार के संचालन में याची का आचरण संतोषजनक नहीं था।

11. यहाँ यह वर्णन करना भी उपयोगी होगा कि दिनांक 9.4.1996 का एक अन्य कार्यालय आदेश निष्पक्ष जाँच संचालित करने के लिए प्रत्यर्थीगण द्वारा निर्गत किया गया था, जाँच समिति में दो अतिरिक्त सदस्यों को जोड़ा गया था एवं उक्त समिति ने याची के पीठ के पीछे अनुशासनिक प्राधिकारी के समक्ष जाँच रिपोर्ट पेश किया। इसलिए, यह स्पष्ट है कि जाँच याची के आचरण सहित उन आरोपों के सम्बन्ध में था जो बर्खास्तगी के आक्षेपित आदेश में वर्णित आधारों से प्रतिबिंबित होता है। मेरी राय में, इसलिए, याची के आचरण के सम्बन्ध में समिति द्वारा प्रस्तुत की गयी जाँच उसकी बर्खास्तगी के आदेश का आधार है।

12. स्वीकार्यतः, 16.12.1994 को दो वर्षों की परिवीक्षा अवधि की समाप्ति के उपरांत भी, याची सेवा में बना रहा एवं 14.12.1995 को फिर एक वर्ष पूरा किया एवं दोबारा एक वर्ष पूरा करने के उपरांत, प्रत्यर्थी ने एक वर्ष के लिए अर्थात् 14.12.1995 तक परिवीक्षा अवधि का विस्तार दिनांक 30.3.1996 के ज्ञापांक के माध्यम से किया। परिवीक्षा अवधि का विसतार पत्र निर्गत करने के पहले, प्रत्यर्थी ने उसी महीने अर्थात् दिनांक 18.3.1996 के ज्ञापांक के माध्यम से जाँच की कार्यवाही की। साथ-ही-साथ जुलाई, 1996 में याची एवं अन्य अधिकारियों को स्थानान्तरित किया गया था एवं याची को केन्द्रीय अनुसंधान संस्थान, गुजरात में प्रशासनिक अधिकारी के तौर पर पदस्थापित किया गया था। आश्चर्यजनक रूप से, बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश को याची के पीठ पीछे संचालित कराये गये जाँच के आधार पर कोई कारण बताओ नोटिस दिए बगैर प्रत्यर्थी द्वारा निर्गत किया गया था। घटनाओं का क्रम पर्याप्त तौर पर प्रमाणित करता है कि प्रत्यर्थी की कार्रवाई अवैध, दुर्भावनापूर्ण एवं बदले की भावनायुक्त है। यह परिवीक्षा अवधि के दौरान या पूरा होने पर मात्र बर्खास्तगी का मामला नहीं है। इसलिए, आक्षेपित आदेश विधि में पोषणीय नहीं हो सकता है।

13. इसलिए, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है एवं अधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित आदेश एवं साथ ही प्रत्यर्थीगण द्वारा पारित बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है।

प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति.—मैं सहमत हूँ।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

कौशल कुमार श्रीवास्तव उर्फ कुशल कुमार श्रीवास्तव

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. Rev. No. 795 of 2009. Decided on 4th May, 2010.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 457—अभिग्रहित कोयले की निर्मुक्ति हेतु की गयी प्रार्थना की अस्वीकृति—आक्षेपित आदेश केवल इस आधार पर पारित किया गया था कि जब छापा मारा गया था तब कोई वैध दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया गया था—सिवाय याची के किसी

ने भी अभिग्रहित कोयले की निर्मुक्ति का दावा नहीं किया–याची द्वारा दिए गए आधारों पर विचार करने की आवश्यकता है–क्षतिपूर्ति बंध-पत्र निष्पादित करने पर याची के पक्ष में कोयला निर्मुक्त किया जाएगा। (पैरा 3 से 6)

अधिवक्तागण.–Mr. Rajan Raj, For the Petitioner; None, For the State.

आदेश

वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण तोपचाँची पी॰ एस॰ केस सं॰ 34 वर्ष 2009 से उद्भूत जी॰ आर॰ केस सं॰ 996 वर्ष 2009 में, श्री ए॰ के॰ श्रीवास्तव, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 3.8.2009 के आक्षेपित आदेश के विरूद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा अभिग्रहित कोयले की निर्मुक्ति हेतु याची की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया गया था।

2. संक्षेप में अभियोजन का मामला यह है कि सूचक, तोपचाँची पुलिस थाना का सब-इंसपेक्टर, ने आरक्षी अधीक्षक, धनबाद के अनुदेश पर कतिपय कोल डिपो के परिसरों की तलाशी के लिए इंतजाम किया था। जब पुलिस दस्ता महूलीडीह कोल डिपो पहुँचा, पुलिस दल को देखकर वहाँ रहने वाले कुछ लोग भागने लगे। किन्तु उनमें से छ: को पकड़ लिया गया जबकि शेष अंधेरे का फायदा उठाकर भागने में कामयाब रहे। सभी पकड़े गए व्यक्तिगण ने अपनी पहचान प्रकट की और उनमें से कुछ के कब्जे से सेलफोन बरामद किया गया। महूलीडीह कोल डिपो के परिसर की तलाशी लेने पर 14 टन कोयला लदा एक ट्रक, दो खाली ट्रक और दो मोटरसाइकिल बरामद किया गया था। उक्त डिपो में कुल 75 टन कोयला भंडारित पाया गया था। सूचक के पता करने पर मालूम हुआ कि कोयला डिपो धनबाद के श्री सिंह और फूलवर के संतोष सिंह का था। ट्रक पर रखे गए अथवा परिसर में भंडारित किए गए कोयले के संबंध में कोई वैध कागजात प्रस्तुत नहीं किया जा सका था। अत: ट्रक सहित कोयले को अभिग्रहित किया गया था और सात नामित व्यक्तियों तथा दोनों ट्रक के चालकों के विरूद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 414/34 के अधीन अपराध के लिए दिनांक 2.4.2009 को मामला संस्थापित किया गया था। याची को प्राथमिकी में नामित नहीं किया गया था। संतोष सिंह के विरूद्ध अन्वेषण को लंबित दर्शाते हुए याची को छोड़कर समस्त अभियुक्तगण के विरूद्ध पूर्वोक्त धाराओं के अधीन अन्वेषण अधिकारी ने आरोप पत्र दाखिल किया।

3. विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची महूलीडीह, धनबाद स्थित मेसर्स जय माँ कोल ट्रेडिंग का स्वामी था उस परिसर से कोयले का व्यापार किया करता था जहाँ अभिग्रहण किया गया था और, इस प्रकार, वह अभिग्रहित कोयले का स्वामी था। विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया कि कोयले के समर्थन में याची के पास वैध कागजात थे और याची की इकाई सेल्स टैक्स विभाग के अधीन पंजीकृत था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि याची विभिन्न पंजीकृत एजेन्सियों से कोयले का यथार्थ खरीददार था। उसने मेसर्स बिन्द्रा इन्टरप्राइजेज से रसीद के विरुद्ध 59,151.04/-रुपया का भुगतान करके 19.280 एम॰ टी॰ कोयला खरीदा था; इसी प्रकार 51,132.65/-रुपया भुगतान करके मेसर्स महादेव एसोसियेट्स से 16.120 एम॰ टी॰ कोयला, 50,122.80/- रुपया भुगतान करके मेसर्स वसुन्धरा इन्टरप्राइजेज से 15.300 एम॰ टी॰ कोयला, 48,189.96/- रुपया भुगतान करके मेसर्स बान्द्रा फ्यूएल से 14.710 एम॰ टी॰ कोयला, 42,129.36/-रुपया भुगतान करके मेसर्स शिवम कोल इन्टरप्राइजेज से 12.860 एम॰ टी॰ कोयला, और 47,650.72/- रुपया भुगतान करके मेसर्स सालदार इंटरप्राइजेज से 14.780 एम॰ टी॰ कोयला खरीदा था और अन्य कई पंजीकृत कोयला डीलरों से वैध रसीद के विरूद्ध, इस दांडिक पुनरीक्षण का परिशिष्ट-4 श्रृंखला के रूप में उपाबद्ध, कोयला खरीदा था। विद्वान अधिवक्ता

ने आगे प्रतिवाद किया कि याची ट्रक के जरिए विभिन्न कोयला व्यवसायियों को ट्रांसपोर्टरों के माध्यम से कोयला भेजा करता था और इस संबंध में वह खरीद और बिक्री रजिस्टर भी रखा करता था जिसके समर्थन में याची ने उक्त रजिस्टरों, परिशिष्ट–5 श्रृंखला, की छाया प्रतिलिपियों को उपाबद्ध किया है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रतिवाद किया कि अभिकथित घटनास्थल याची की पट्टे पर ली गयी संपत्ति थी जिसे उसने अपना कोयला व्यवसाय चलाने के लिए 11 माह की अवधि के लिए किसी श्री दिनेश सिंह से प्राप्त किया था और वह मेसर्स जय माँ कोल ट्रेडिंग का प्रोप्राइटर था। याची ने न्यायिक दंडाधिकारी, धनबाद के समक्ष अभिग्रहित कोयले की निर्मुक्ति के लिए याचिका दाखिल की जिसे इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया था कि संबंधित अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा आरोप पत्र दाखिल किए जाने तक कोई वैध कागजात प्रस्तुत नहीं किया गया था। आक्षेपित आदेश में आगे संप्रेक्षित किया गया कि याची के दावा के समर्थन में केस डायरी में कोई सामग्री नहीं है कि वह उक्त डिपो, जहाँ से कोयला अभिग्रहित किया गया था, का वास्तविक स्वामी था और अभिग्रहित कोयले में से उसके पक्ष में निर्मुक्त किए जाने वाले कोयले की मात्रा इंगित करने में याची विफल रहा। अंत में विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि चूँकि याची पट्टे पर ली गयी संपत्ति का स्वामी था, अत: उसने सारे कोयले की निर्मुक्ति की प्रार्थना की थी जिसे मेसर्स जय माँ कोल ट्रेडिंग के नाम के अधीन उसके परिसर से अभिग्रहित किया गया था और जिसके लिए वह पर्याप्त राशि का प्रतिभूति बॉन्ड निष्पादित करने के लिए तैयार था और विचारण दंडाधिकारी के समक्ष याची को छोड़कर कोई अन्य दावेदार नहीं था और उसने कोयले की खरीद के सारे प्रासंगिक दस्तावेजों को प्रस्तुत किया था। वस्तुत: विद्वान अधिवक्ता ने स्पष्ट किया कि छापा के प्रासंगिक समय पर याची वहाँ नहीं था और यह कि प्रासंगिक दस्तावेज उसके कब्जे में थे जिन्हें इस दांडिक पुनरीक्षण के साथ दाखिल किया गया है। अभिग्रहित कोयला पुलिस द्वारा अभिग्रहण के बाद खुले आसमान के नीचे रखे जाने के कारण धूल और वर्षा से विनष्ट होने की प्रक्रिया में था और याची को गंभीर/सारभूत धनीय हानि पहुँचेगी यदि उसके पक्ष में अभिग्रहित कोयला निर्मुक्त करने का निर्देश नहीं दिया जाएगा। बुलाए जाने पर श्री राजन राज ने निवेदन किया कि कोयले की कीमत 2000/-रुपया प्रति एम॰ टी॰ था। राज्य वि॰ प॰ की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ।

4. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में लेते हुए, मैं आक्षेपित आदेश से पाता हूँ कि याची को छोड़कर किसी ने अभिग्रहित कोयले की निर्मुक्त का दावा नहीं किया। अभिग्रहित कोयले की निर्मुक्त के लिए याची की प्रार्थना विद्वान दंडाधिकारी ने केवल इस आधार पर अस्वीकार कर दी कि कोई वैध कागजात प्रस्तुत नहीं किया गया था जब मेसर्स जय माँ कोल ट्रेडिंग परिसर पर छापा मारा गया था जिसे याची का होने का दावा किया गया था और कोयले अभिग्रहित किया गया था जिसके बारे में याची ने स्पष्ट किया कि छापामार दस्ते को संतुष्ट करने के लिए सारे प्रासंगिक दस्तावेजों को प्रस्तुत करके उक्त परिसर में संचालित अभिकथित छापा के प्रासंगिक समय पर याची या उसका प्रतिनिधि मौजूद नहीं था।

5. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में लेते हुए, मैं पाता हूँ कि इस दांडिक पुनरीक्षण में याची ने प्रथम दृष्टया आधारों को प्रस्तुत किया है जिन पर कतिपय शर्तों के साथ विचार किए जाने की जरूरत है। अभिग्रहित वस्तुओं की निर्मुक्ति के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 457 के अधीन प्रावधान अधिकथित किए गए हैं।

6. परिणामस्वरूप, महूलीडीह धनबाद स्थित मेसर्स जय माँ कोल ट्रेडिंग परिसर से अभिग्रहित प्रश्नगत कोयले को तोपचाँची पी॰ एस॰ केस॰ सं॰ 34 वर्ष 2009 में न्यायिक दंडाधिकारी प्रथम श्रेणी, धनबाद को संतुष्ट करते हुए 5 लाख रुपये, इसी राशि की दो प्रतिभूतियों के साथ, का क्षतिपूर्ति बन्धपत्र निष्पादित करने पर याची कौशल कुमार श्रीवास्तव उर्फ कुशल कुमार श्रीवास्तव के पक्ष में निर्मुक्त किए

जाने का निर्देश दिया जाता है। विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी को अगले छह माह के भीतर निष्कर्षित करने के लिए विचारण को जल्द निपटाने का निर्देश दिया जाता है। तद्नुसार, यह दांडिक पुनरीक्षण अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति

मेसर्स नरभेराम लीजिंग कम्पनी प्रा॰ लि॰

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) Nos. 2327 with 2328 of 2003. Decided on 19th April, 2010.

बिहार मकान (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982—धारा 5—उचित किराए का नियतीकरण–उचित किराया नियत करता किराया नियंत्रक द्वारा पारित आदेश उप-कमिश्नर द्वारा अपास्त–किराया नियंत्रक ने अनेक कारकों पर विचार करने के बाद 28/- रु॰ प्रति वर्ग फीट की प्रचलित दर के विरूद्ध 15/- रुपया प्रति वर्ग फीट की दर से उचित किराया नियत किया–ऐसे नियतीकरण को गैरकानूनी नहीं कहा जा सकता है–आक्षेपित आदेश अपास्त–एस॰ डी॰ ओ॰ का आदेश अभिपुष्ट। (पैरा 14 से 17)

अधिवक्तागण.–Mr. Amar Kumar Sinha, For the Petitioner; Mr. Ananda Sen, For the Respondents; Mr. Nehala Sharmin, For the State.

आदेश

पक्षों को सुना गया।

2. इस तथ्य की दृष्टि में कि दोनो रिट याचिकाओं में अंतर्ग्रस्त तथ्य और बिन्दु एक ही और समरूप है, दोनों मामलों को साथ सुना गया है और इस सम्मिलित आदेश द्वारा निपटाया जा रहा है।

3. संक्षेप में तथ्य ये हैं कि दोनों रिट याचिकाओं का याची भूस्वामी है और निजी प्रत्यर्थीगण अर्थात् विजय मेहता एवं धीरेन मेहता व्यवसायिक भवन अर्थात् नरभेराम बिल्डिंग साकची, बुलवर्ड रोड (बिष्टुपुर मेन रोड), बिष्टुपुर, जमशेदपुर, पूर्वी सिंहभूम में स्थित दो किराए पर दिए गए परिसरों अर्थात् दुकान सं॰ 2 और दुकान सं॰ 3 के संबंध में उसके किराएदार है।

4. याची ने यह प्रार्थना करते हुए कि किराए पर दिए गए परिसर बिष्टुपुर, जमशेदपुर के व्यस्त बाजार क्षेत्र एवं व्यावसायिक केन्द्र में अवस्थित है और किराएदारों द्वारा इनका उपयोग व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए किया जा रहा है जबकि उनके द्वारा दिया जा रहा किराया बहुत कम है, एस॰ डी॰ ओ॰ के समक्ष बी॰ बी॰ सी॰ अधिनियम की धारा 5 के अधीन पूर्वोक्त दोनों दुकानों का उचित किराया नियत करने हेतु आवेदन दाखिल किया। वस्तुतः उस क्षेत्र में ऐसी जगह के लिए किराया 28/-रुपये प्रति वर्गफीट की दर से भुगतान किया जा रहा है। तद्नुसार, 28/- रुपये प्रति वर्ग फीट प्रतिमाह की दर से दोनों दुकान परिसरों का किराया नियत करने की प्रार्थना की गयी थी।

5. एस॰ डी॰ एम॰–सह–गृह किराया नियंत्रक ने बी॰ बी॰ सी॰ अधिनियम की धारा 5 के अधीन याची द्वारा दाखिल इन दो याचिकाओं को एच॰ आर॰ सी॰ मामलों के रूप में दर्ज किया। किराएदारों को नोटिस दी गयी और तत्पश्चात्, उन्होंने विशेष अधिकारी, जुगसलाई नगरपालिका, जमशेदपुर को स्थल जाँच करने और याची द्वारा दिए गए बयानों के बारे में रिपोर्ट करने का निर्देश दिया। विशेष अधिकारी ने दिनांक 6.7.2002 को अपना जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत किया जो रिट याचिका के परिशिष्ट-2

में अंतर्विष्ट है। उसने अपने रिपोर्ट में रिपोर्ट किया कि समान सुविधा के लिए क्षेत्र में प्रचलित किराया 28/-प्रति वर्ग फीट की दर से था। किन्तु रिपोर्ट में यह भी उल्लिखित किया गया था चूँकि एक मामले में अर्थात एच॰ आर॰ सी॰ केस सं॰ 72 वर्ष 1998 में उचित किराया 12/-रुपया प्रतिवर्ग फीट नियत किया गया है, अत: उन्होंने अनुशंसा की कि परिसरों का उचित किराया 14-18/- रु॰ प्रति वर्गफीट के बीच तय किया जा सकता है। जुगसलाई नगर पालिका, जमशेदपुर के विशेष अधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर विचार करने पर एस॰ डी॰ एम॰ ने परिशिष्ट-3 में अंतर्विष्ट दिनांक 18.7.2002 के अपने आक्षेपित आदेश द्वारा प्रश्नगत परिसरों की दोनों दुकानों का उचित किराया 15/-रुपये प्रति वर्ग फीट की दर से नियत किया।

6. किराया नियंत्रक द्वारा पारित आदेश से व्यथित होकर प्रत्यर्थीगण-किराएदारों ने उप-कमिश्नर, पूर्वी सिंहभूम, जमशेदपुर के समक्ष अपील दाखिल किया, जिसे एच॰ आर॰ सी॰ अपीलों के रूप में दर्ज किया गया था। रिट याचिकाओं के परिशिष्ट-4 में अंतर्विष्ट दिनांक 22.10.2002 के आक्षेपित आदेश द्वारा उप-कमिश्नर ने पक्षों को सुनने के बाद एस॰ डी॰ एम॰ द्वारा पारित आदेश अपास्त कर दिया और निम्नलिखित अभिनिर्धारित करते हुए मामला उसके पास वापस भेज दिया:–

(i) मेसर्स नरभेराम लीजिंग कम्पनी प्रा० लि० को परिसर को टिस्को द्वारा मोटर गैराज चलाने के लिए आबंटित किया गया था और 180/-रुपये प्रतिमाह किराये के तौर पर टिस्को को भुगतान किया जाता था।

(ii) मेसर्स नरभेराम लीजिंग कम्पनी प्रा० लि० के पट्टे के निबंधनों और शर्तों का उल्लंघन करके परिसर में दुकान का निर्माण करने के बाद अधिक किराया वसूल कर रहा है।

(iii) यश कमल कॉम्पलेक्स के किराया से तुलना करते हुए प्रश्नगत परिसर का उचित किराया नियत करना न्यायोचित नहीं था क्योंकि यश कमल कॉम्पलेक्स एक नवनिर्मित भवन है जिसमें हरेक प्रकार की सुविधाएँ है।

7. उक्त निष्कर्षों के आधार पर, उप-कमिश्नर ने सब डिविजनल अधिकारी को मामले पर फिर से विचार करने और नया आदेश पारित करने का निर्देश दिया। उन्होंने उप-कलक्टर, टाटा लीज को जाँच करने और कार्रवाई करने का निर्देश दिया कि क्या याची टिस्को के साथ पट्टे के निबंधनों का उल्लंघन कर रहा है।

8. अपीलीय प्राधिकारी अर्थात् उप-कमिश्नर द्वारा पारित आदेश से व्यथित होकर याची ने कमिश्नर, दक्षिणी छोटानागपुर डिवीजन के समक्ष पुनरीक्षण दाखिल किया। पुनरीक्षण न्यायालय ने उप-कमिश्नर अर्थात् अपीलीय प्राधिकार द्वारा पारित आदेश को अभिपुष्ट करते हुए परिशिष्ट-5 में अंतर्विष्ट दिनांक 25.2.2003 के आक्षेपित आदेश द्वारा दोनों पुनरीक्षण आवेदनों को खारिज कर दिया।

9. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री अमर कुमार सिन्हा ने निवेदन किया कि अपीलीय प्राधिकारी अर्थात् उप-कमिश्नर द्वारा पारित आक्षेपित आदेश उप-कमिश्नर के परिक्षेत्र, विस्तार और अधिकारिता के परे है। टिस्को के साथ पट्टे के निबंधनों और शर्तों के अभिकथित उल्लंघन के लिए याची के विरूद्ध कार्रवाई का निर्देश देने की अधिकारिता अथवा प्राधिकार उनको नहीं था। उन्होंने आगे निवेदन किया कि अनुमंडल अधिकारी के आदेश, जो विशेष अधिकारी, जुगसलाई नगरपालिका द्वारा प्रस्तुत जाँच रिपोर्ट पर आधारित थे, पूर्णत: कानूनी और वैध थे, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि समस्थित व्यावसायिक परिसरों का किराया 5-28/-रुपये प्रति वर्ग फीट था किन्तु चूँकि एक समान मामले में उचित किराया 12/-प्रतिवर्ग फीट नियत किया गया था, अत: उन्होंने 15/-रुपया प्रतिवर्ग फीट उचित किराया नियत किया था।

10. दूसरी ओर प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री आनन्द सेन ने निवेदन किया कि जहाँ तक 15/-प्रति वर्ग फीट की दर से किराया नियत करते हुए उप-कमिश्नर के आदेश के प्रथम अंश का संबंध है, यह न्यायोचित नहीं है क्योंकि विशेष अधिकारी के रिपोर्ट के अनुसार भी क्षेत्र में प्रचलित किराया 5-28/-प्रतिवर्ग फीट के बीच था और विशेष अधिकारी ने भवन अर्थात् यश कमल कम्पलेक्स में स्थित दुकानों से गलत तुलना की है क्योंकि यह सारी सुविधाओं के साथ नवनिर्मित कॉमप्लेक्स था और इसलिए यश कमल कॉम्पलेक्स में स्थित दुकानों का किराया स्वभाविक रूप से उच्चतर था क्योंकि भवन नया था और इसमें हरेक प्रकार की सुविधाएँ थी और इस प्रकार उप-कमिश्नर ने विधि के अनुरूप नया आदेश पारित करने के लिए मामला को एस॰ डी॰ ओ॰ के पास सही वापस भेजा है।

11. जहाँ तक उप-कमिश्नर के आदेश के द्वितीय अंश का संबंध है, जिसके द्वारा उप-कमिश्नर ने पट्टे के निबंधनों के अभिकथित उल्लंघन के लिए याची के विरूद्ध जाँच करने और कार्रवाई करने का निर्देश दिया था, श्री आनन्द सेन ने निवेदन किया कि वह आदेश के उस अंश का समर्थन नहीं कर सकते हैं क्योंकि यह बी॰ बी॰ सी॰ अधिनियम की धारा 5 के विचार-क्षेत्र और उप-कमिश्नर की अधिकारिता के परे था।

12. पक्षों के निवेदनों की दृष्टि में, वर्तमान रिट याचिकाओं में विचार किए जाने योग्य एकमात्र बिन्दु यह है कि क्या विशेष अधिकारी द्वारा प्रस्तुत जाँच रिपोर्ट के आधार पर एस॰ डी॰ ओ॰ सह-गृह किराया नियंत्रक द्वारा नियत किया गया उचित किराया विधिमान्य एवं वैध था एवं क्या अपीलीय प्राधिकारी गृह किराया नियंत्रक के आदेशों को अपास्त करने और पुनर्विचार के लिए मामला वापस भेजने में न्यायोचित थें।

13. विशेष अधिकारी द्वारा प्रस्तुत परिशिष्ट-2 अर्थात् जाँच रिपोर्ट के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि उसने भवन, जहाँ प्रश्नगत दुकान अवस्थित है, और व्यावसायिक यश कमल भवन का दौरा कर स्थल जाँच किया और दोनों पक्षों की उपस्थिति में जाँच और स्थानीय निरीक्षण करने पर उन्होंने पाया कि उस क्षेत्र में स्थित दुकानों का किराया 6-28/-रुपये प्रति वर्ग फीट के बीच था।

14. रिपोर्ट में उल्लिखित तथ्यों पर विचार करने के बाद विशेष अधिकारी ने 14-18/- रुपये प्रति वर्ग फीट के बीच किराया नियत करने की अनुशंसा की। उप-कमिश्नर के आदेश से प्रतीत होता है कि उन्होंने नियत किराया न्यायोचित नहीं पाया क्योंकि यश कमल कॉम्पलेक्स एक नवनिर्मित भवन था जबकि भवन जिसमें प्रश्नगत दुकान अवस्थित है, पुराना था और इसलिए वह इस निष्कर्ष पर आए कि पुराने भवन में अवस्थित दुकान का उचित किराया नियत करने के लिए दोनों भवनों के किराए की तुलना नहीं की जा सकती है। उन्होंने यह भी अभिनिर्धारित किया कि यश कमल भवन एक नया भवन है और उक्त भवन में सारे प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

15. उप-कमिश्नर के निष्कर्षों की शुद्धता का पता लगाने के लिए मैंने विशेष अधिकारी द्वारा प्रस्तुत जाँच रिपोर्ट, जो रिट याचिका के साथ उपाबद्ध है, और रिट याचिका के साथ उपाबद्ध अन्य दस्तावेजों का परिशीलन किया है और मैं पाता हूँ कि ऐसे निष्कर्ष पर आने के लिए उप-कमिश्नर के समक्ष अभिलेख पर कुछ भी उपलब्ध नहीं था। उप-कमिश्नर का ऐसा निष्कर्ष निश्चय ही अभिलेख पर उपस्थित सामग्री पर आधारित नहीं था। वह अपने स्वयं के निजी जानकारी के आधार पर अपील का निर्णय नहीं कर सकते थे।

16. मैं अनुमंडल अधिकारी अर्थात् किराया नियंत्रक के आदेश से आगे पाता हूँ कि उन्होंने अनेक कारकों पर विचार करके 15/-रुपया प्रति वर्ग फीट पर उचित किराया नियत किया है जो मेरे दृष्टिकोण में किसी भी कारण से गैर कानूनी, अवैध अथवा अन्यायोचित नहीं था।

17. ऊपर कथित कारणों से, इन दोनों रिट याचिकाओं को अनुज्ञात किया जाता है। एच॰ आर॰ सी॰ अपील सं॰ 25 वर्ष 2001-02 और एच॰ आर॰ सी॰ अपील सं॰ 24/2002-03 में दिनांक 22.10.2002 को उप-कमिश्नर द्वारा पारित आदेश और एच॰ आर॰ सी॰ पुनरीक्षण सं॰ 167/200 तथा 167A/2002 में दिनांक 25.2.2003 को कमिश्नर, दक्षिण छोटानागपुर डिवीजन द्वारा पारित आदेश को एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है और परिशिष्ट-3 में अंतर्विष्ट दिनांक 18.7.2002 का अनुमंडल अधिकारी का आदेश एतद्द्वारा अभिपुष्ट किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

शीतल प्रसाद सिन्हा एवं एक अन्य (385 में)

बिनोद प्रसाद (389 में)

बनाम

बिहार राज्य (दोनों में)

Cr. Appeal Nos. 385 with 389 of 2000 (R). Decided on 4th May, 2010.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 324 एवं 323—घोर उपहति–दोषसिद्धि एवं दंडादेश–अभियुक्तगण के शरीर पर पायी गयी उपहतियाँ अभियोजन द्वारा स्पष्ट नहीं की गयी–अभियोजन के ऊपर यह स्पष्ट करने की भारी जिम्मेदारी थी कि अपीलार्थीगण को उपहतियाँ कैसे प्राप्त हुई–प्रतिपक्ष के ऊपर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ा क्योंकि अपनी उपहतियों को स्पष्ट करने के लिए दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन उनसे कोई प्रश्न नहीं किया गया था–अभियोजन ने सच्चाई दबाने का प्रयास किया और नेक इरादों से सामने नहीं आया–विवेक का प्रयोग किए बिना अपीलार्थीगण को यांत्रिक रूप से दोषसिद्ध किया गया था–संदेह का लाभ देते हुए अपीलार्थीगण को दोषमुक्त किया गया। (पैरा 8 से 12)

अधिवक्तागण.–Mr. S. N. Roy (in both), For the Appellants; Mr. D. K. Prasad, (in both), For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–ये दोनों अपीलें सत्र विचारण सं॰ 329/93 में श्री विनोद कुमार सिन्हा, पंचम अपर सत्र न्यायाधीश, गिरिडीह द्वारा पारित दोषसिद्धि के सम्मिलित निर्णय और दंडादेश के विरूद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा अपीलार्थी बिनोद प्रसाद को भारतीय दंड संहिता की धारा 324 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और एक वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंड दिया गया था। इसी समय, दो अन्य अपीलार्थीगण शीतल प्रसाद सिन्हा एवं श्याम सुन्दर लाल उर्फ श्याम सुन्दर प्रसाद को भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और छह माह का कठोर कारावास भुगतने का दंड दिया गया था।

2. संक्षेप में, अभियोजन का मामला यह है कि सूचक अ॰ सा॰ 8 महेन्द्र प्रसाद सिन्हा ने धनवार पुलिस के समक्ष एक लिखित रिपोर्ट दाखिल किया जिसमें अन्य बातों के साथ यह अभिकथन किया गया कि जब दिनांक 21.2.1993 को प्रात: 7 बजे वह अपनी पत्नी और चचिया-श्वसुर त्रिपुरारी लाल के साथ धुरैता जा रहा था, उसकी मुलाकात अपीलार्थीगण सहित छह अभियुक्तगण से हुई जिन्होंने छड़, लाठी और भाला से उनपर प्रहार करना शुरू किया। घटना देखने पर सूचक का पिता बलदेव प्रसाद

सिन्हा वहाँ आया और हस्तक्षेप किया किन्तु अपीलार्थीगण ने उस पर भी प्रहार किया। हल्ला करने पर बेनी महतो सहित गवाह वहाँ आए और मामले को शांत किया तथा घायलों को हटाया गया था। लिखित रिपोर्ट पर छह नामित अभियुक्तगण के विरूद्ध धनवार पी॰ एस॰ केस सं॰ 17/93 संस्थित किया गया था एवं अन्वेषण के उपरांत उन सबों के विरूद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 147/148/149/323/324/307 के तहत अभिकथित अपराध के लिए आरोप पत्र दाखिल किया गया था। यह कथन किया गया है कि धनवार पी॰ एस॰ केस सं॰ 18/93 को उद्‌भूत करते हुए अपीलार्थी बिनोद प्रसाद सिन्हा द्वारा एक प्रति मामला दर्ज किया गया था जिसमें पुलिस ने वर्तमान मामले के गवाहों के विरूद्ध अभियुक्त के रूप में अनेक अपराधों के लिए आरोप पत्र दाखिल किया। घायल सूचक महेन्द्र प्रसाद सिन्हा का परीक्षण अ॰ सा॰ 6 डॉ॰ अरविन्द कुमार द्वारा किया गया था और उसकी खोपड़ी की खाल सहित शरीर के विभिन्न अंगों पर अनेक उपहतियाँ पायी गयी थी। भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 147/148/149/323/324/307 के अधीन आरोप विरचित करने के बाद सारे छह अभियुक्तगण अर्थात् बसंत लाल, शीतल प्रसाद सिन्हा, श्याम सुन्दर लाल, जगदीश प्रसाद, सुरेन्द्र लाल और बिनोद प्रसाद का विचारण किया गया था। किन्तु उनके विचारण पर अन्य तीन अभियुक्तगण बसंत लाल, जगदीश प्रसाद और सुरेन्द्र लाल को आरोप से दोष मुक्त कर दिया गया था जबकि अपीलार्थी बिनोद प्रसाद को भारतीय दंड संहिता की धारा 324 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और दो अन्य अपीलार्थीगण शीतल प्रसाद सिन्हा एवं श्याम सुन्दर लाल उर्फ श्याम सुन्दर प्रसाद को समरूप-साक्ष्य के आधार पर भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था, जैसा विद्वान अधिवक्ता ने इंगित किया।

3. समस्त अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रारम्भ में ही निवेदन किया कि भारतीय दंड संहिता की धारा 324 के अधीन दोषसिद्ध अपीलार्थी बिनोद प्रसाद एक वर्ष के कारावास के विरूद्ध 46 दिनों तक अभिरक्षा में बना रहा जबकि शीतल प्रसाद सिन्हा 102 दिनों तक न्यायिक अभिरक्षा में था और श्याम सुन्दर लाल उर्फ श्याम सुन्दर प्रसाद ने 113 दिनों के लिए अभिरक्षा में अपना निरोध पूरा किया था और इस तरीके से समस्त अपीलार्थीगण न्यायिक अभिरक्षा में दंड की पर्याप्त अवधि भुगत चुके हैं और इसलिए एकमात्र और संगत बचाव पर कि घटना अभियोजन द्वारा प्रस्तुत तरीके से घटित नहीं हुई थी क्योंकि अपीलार्थी बिनोद प्रसाद ने गवाहों के हाथों से स्वयं को हुई उपहतियों के विरूद्ध धनवार पी॰ एस॰ केस सं॰ 18/93 को उद्‌भूत करते एक प्रति मामला दर्ज किया था और दोनों पक्षों के सदस्यों ने उपहतियाँ प्राप्त की थीं, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम पर उनकी निर्मुक्ति के लिए विचार किए जाने की आवश्यकता है।

4. कुल मिलाकर दस गवाहों को प्रस्तुत किया गया था और अभियोजन की ओर से परीक्षण किया गया था और उनमें से अ॰ सा॰ 9 डी॰ एन॰ रजक अन्वेषण अधिकारी था, अ॰ सा॰ 6 डॉ॰ अरविन्द कुमार ने गवाहों की उपहतियों का परीक्षण किया था और अ॰ सा॰ 8 महेन्द्र प्रसाद सिन्हा मामले का सूचक था। अ॰ सा॰ 7 बलदेव प्रसाद सिन्हा और अ॰ सा॰ 8 महेन्द्र प्रसाद सिन्हा (सूचक) और घायल गवाहों ने भी अभिकथित घटना का चश्मदीद गवाह होने का दावा किया। अपीलार्थी बिनोद प्रसाद को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 315 के अधीन विचारण न्यायालय द्वारा अभिसाक्ष्य देने की इजाजत दी गयी थी और उसने कतिपय दस्तावेजों का मसलन लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श-A), प्राथमिकी (प्रदर्श-B) और औपचारिक प्राथमिकी (प्रदर्श-C) प्रस्तुत और सिद्ध किया था।

5. विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय का इस आधार पर विरोध किया कि सारी घटना के वास्तविक स्वरूप का पता लगाने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थीगण की ओर से प्रस्तुत प्रतिवादी विवरणों पर विचार नहीं किया गया था जिसमें यह अभिकथन किया गया था कि पक्षों के बीच यह खुली लड़ाई थी और बम भी फेंके गए थे। अपीलार्थी बिनोद प्रसाद के विरूद्ध विनिर्दिष्ट

अभिकथन किया गया था कि उसने बम फेंका था जिससे सूचक को किचियों द्वारा उपहति कारित हुई थी और तत्पश्चात सूचक बेहोश हो गया था और उसे धनबाद रेफरल अस्पताल ले जाया गया था जहाँ उसका उपचार किया गया था।

6. विचारण के दौरान अपीलार्थीगण की ओर से प्रस्तुत बचाव मामला अभियोजन मामला के विपरीत था। अपीलार्थी बिनोद प्रसाद जिसने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 315 के अधीन अभिसाक्ष्य दिया था, द्वारा कथन किया गया था कि दिनांक 21.2.1993 को जब वह अपने खेत में गेहूँ में पानी पटा रहा था, उसकी हत्या करने के आशय से गवाह त्रिपुरारी लाल ने उसपर बम फेंका था और बम की किर्चियों से उसे बायीं जांघ पर उपहतियाँ हुई थीं और इसी क्रम में अन्य गवाहों विजय लाल, महेन्द्र प्रसाद सिन्हा, बलदेव प्रसाद और सुरेन्द्र प्रसाद ने अनेक हथियारों से उस पर क्रूरतापूर्वत प्रहार किया और यह कि जब उसका पिता जगदीश प्रसाद और गवाह शीतल प्रसाद उसे बचाने आए, उनके शरीर पर भी उपहतियाँ कारित करते हुए उन पर क्रूरतापूर्वक प्रहार किया गया था। अपीलार्थी बिनोद प्रसाद ने आगे साक्ष्य दिया कि जब उसकी दादी सरस्वती ने हस्तक्षेप करने और मामला शांत करने का प्रयास किया, उनके द्वारा उसपर प्रहार किया गया जिसके चलते वह बेहोश हो गयी। उसने अपना लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श-A) प्रमाणित किया। वर्तमान मामले के गवाहों के हाथों उसके द्वारा प्राप्त उपहतियों के लिए धनबाद रेफरल अस्पताल में बिनोद प्रसाद का उपचार किया गया था और विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि इस पहलू को नजर अंदाज करके विचारण न्यायाधीश ने भारतीय दंड संहिता की धारा 324 के अधीन आरोप के लिए उसे दोषसिद्ध किया और अभिलेख पर उपस्थित साक्ष्य का अधिमूल्यन किए बिना और प्रति विवरण, जो गवाहों के द्वारा बताए गए उपदर्शित तरीके से अपीलार्थी बिनोद प्रसाद द्वारा प्राप्त उपहतियों से संपुष्ट किया गया है, को नजरअंदाज करते हुए भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन आरोप के लिए उसे विमुक्त कर दिया। वस्तुत: यह नजरअंदाज करते हुए कि अपीलार्थी ने भी उपहतियाँ प्राप्त की थी और अभियोजन के पास इसका कोई स्पष्टीकरण नहीं था, विचारण न्यायाधीश ने बचाव पक्ष के मामले को बिलकुल अनदेखा/अनसुना कर दिया था।

7. सूचक अ० सा० 8 महेन्द्र प्रसाद सिन्हा द्वारा चित्रित और साक्ष्य द्वारा प्रदर्शित वर्तमान मामले में अभियोजन का विवरण यह था कि अपीलार्थी विनोद प्रसाद ने सूचक पर बेम फेंका था और अ० सा० 6 डॉ० अरविन्द कुमार द्वारा उसकी उपहतियों का परीक्षण किया गया था जिन्होंने बम विस्फोट द्वारा कारित प्रतीत होती उसके शरीर पर अनेक जख्मों को पाया था। अन्य अपीलार्थीगण शीतल प्रसाद सिन्हा और श्याम सुन्दर लाल उर्फ श्याम सुन्दर प्रसाद के विरूद्ध विचारण के दौरान सामग्रियाँ प्रस्तुत की गयी थी कि अ० सा० 7 बलदेव प्रसाद सिन्हा ने दोनों अपीलार्थीगण द्वारा पहुँचायी गयी उपहतियाँ अपने मस्तक, कलाई, कान और बांये हाथ पर प्राप्त की थी। किन्तु अ० सा० 6 डॉ० अरविन्द कुमार ने बलदेव प्रसाद सिन्हा के शरीर पर इन उपहतियों को पाया था। उनकी उपहति रिपोर्टों द्वारा अ० सा० 7 बलदेव प्रसाद सिन्हा और अ० सा० 8 महेन्द्र प्रसाद सिन्हा के बयान संपुष्ट किया गया था।

8. मैं पाता हूँ कि अन्वेषण अधिकारी अ० सा० 9 डी० एन० रजक ने स्पष्टत: साक्ष्य दिया कि अ० सा० 6 डॉ० अरविन्द कुमार द्वारा संपुष्ट की गयी उपहतियाँ उसने जगदीश, शीतल और बिनोद के शरीर पर पाया था। फिर भी अभियोजन की ओर से कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया कि इन अपीलार्थीगण ने किस तरह ये उपहतियाँ पायी जिसको सिद्ध करने हेतु अभियोजन के ऊपर भारी जिम्मेदारी थी ताकि न्याय का उद्देश्य प्राप्त किया जा सके। मैं पाता हूँ कि इसका वचाव पक्ष पर काफी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और अपनी उपहतियों का स्पष्टीकरण देने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन उनसे कोई प्रश्न भी नहीं पूछा गया था। जो इस संदेह को उद्भूत करता है कि घटना अभियोजन द्वारा वर्णित

तरीके से घटित नहीं हुई थी। इसके अलावा, यह युक्तियुक्त निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है कि अभियोजन ने सच्चाई दबाने का प्रयास किया और नेक-इरादों से सामने नहीं आया।

9. विद्वान विचारण न्यायाधीश ने अ० सा० 3, 4 और 7 के साक्ष्य पर विश्वास करते हुए पैराग्राफ 66 में अंतर्विष्ट निर्णय में स्वीकार किया कि इसमें के अपीलार्थीगण ने उपहतियाँ प्राप्त की थी जिसे अन्वेषण अधिकारी (अ० सा० 9) और डॉक्टर (अ० सा० 6) के साक्ष्य द्वारा संपुष्ट किया गया था और यह कि अपीलार्थी बिनोद प्रसाद ने जो उपहतियाँ प्राप्त की थी वह बम की किरची द्वारा कारित प्रतीत होती है। अपीलार्थी बिनोद प्रसाद की दादी अर्थात् सरस्वती देवी के शरीर पर भी उपहतियाँ पायी गयी थी जो मस्तक, बांयी आँख और बांये हाथ पर विदीर्ण उपहतियाँ थी। विचारण न्यायाधीश संतुलन बनाने का प्रयास करते दिखाई देते हैं जब वें अपीलार्थीगण को इस आधार पर दोषसिद्ध करते हैं कि उन्होंने सरल उपहतियाँ पायी थी जबकि वर्तमान मामले के अभियोजन गवाहों ने गंभीर उपहतियाँ पायी थी जो उपदर्शित करता है कि न्यायिक विवेक का प्रयोग किए बिना और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य को तौले बिना अपीलार्थीगण को यांत्रिक रूप से दोषसिद्ध किया गया था। अपीलार्थीगण के शरीरों पर पायी गयी उपहतियाँ का अस्पष्टीकरण यह अभिनिर्धारित करने का पर्याप्त आधार है कि अभियोजन ने तात्विक तथ्य को दबाया जिसने अपीलार्थीगण के निष्पक्ष विचारण पर प्रतिकूल प्रभाव डाला और यह कि अपीलार्थी बिनोद प्रसाद ने इसी प्रकृति का एक प्रति मामला पहले ही दायर किया था।

10. उक्त बताए गए कारणों से, अभिकथित आरोप के लिए अभियोजन द्वारा प्रस्तुत तरीके से उसमें अपीलार्थीगण की भागीदारी और घटना के तरीके के बारे में युक्तियुक्त संदेह सृजित होता है।

11. यह सुनिश्चित कानून है कि जब कभी भी अभियोजन द्वारा प्रस्तुत घटना के तरीके और उसमें अभियुक्तगण की भागीदारी के बारे में संदेह सृजित होता है, यह हमेशा उनके पक्ष में जाता है और इस प्रकार उनको संदेह का लाभ देते हुए तीनों अपीलार्थीगण, अर्थात्, शीतल प्रसाद सिन्हा, श्याम सुन्दर लाल उर्फ श्याम सुन्दर प्रसाद और बिनोद प्रसाद को धनवार पी० एस० केस० सं० 17/93 से उद्‌भूत सत्र विचारण संख्या 329/93 में उनके विरूद्ध दर्ज दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को अपास्त करके उनको दोष से मुक्त किया जाता है।

12. तद्‌नुसार, दोनों अपीलें अनुज्ञात की जाती है और अपीलार्थीगण के जमानत बंधपत्र को उन्मोचित किया जाता है।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

शत्रुघ्न प्रसाद सिंह (87 में)

मेसर्स दामोदर वैली कॉरपोरेशन एवं अन्य (62 में)

बनाम

मेसर्स दामोदर वैली कॉरपोरेशन एवं अन्य (87 में)

शत्रुघ्न प्रसाद सिंह (62 में)

M.A. Nos. 87, 62 of 1998(R). Decided on 5th May, 2010.

माध्यस्थम् केस सं० 13 वर्ष 1980 में श्री शिव मूरत राम, सब जज-II, बेरमो, तेनूघाट द्वारा पारित दिनांक 22.12.1997 के निर्णय एवं आदेश के विरूद्ध।

माध्यस्थम् अधिनियम, 1940—धारा 13 एवं 30 —अधिनिर्णय को चुनौती–अधिनिर्णय पारित करने के लिए कोई कारण देना माध्यस्थ से अपेक्षित नहीं है–अधिनिर्णय में हस्तक्षेप करने के लिए न्यायालय के पास सीमित परिक्षेत्र है–अपीलार्थी-ठेकेदार के पक्ष में अधिनिर्णय पारित करने के लिए माध्यस्थ अपनी अधिकारिता में थें–डी॰ वी॰ सी॰ द्वारा दाखिल अपील खारिज। (पैरा 11 से 16)

निर्णयज विधि.–AIR 1965 SC 214; AIR 1994 SC 2562—Relied on; (2009) 10 SCC 259—Referred to.

अधिवक्तागण.–Mr. A. K. Sahani (in both), For the Appellants; M/s S.K. Ughal, T. Kabiraj (in both), For the Respondents-DVC.

प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति.–विविध अपील सं॰ 87 वर्ष 1998, जिसे अपीलार्थी शत्रुघ्न प्रसाद सिंह द्वारा दाखिल किया गया है और द्वितीय विविध अपील सं॰ 62 वर्ष 1998, जिसे अपीलार्थीगण मेसर्स दामोदर वैली कॉरपोरेशन एवं अन्य द्वारा दाखिल किया गया है। अपीलार्थी शत्रुघ्न प्रसाद सिंह द्वारा विपक्षी पक्षकार कम्पनी के विरूद्ध दावा दाखिल किया गया है।

2. दोनों अपीलें माध्यस्थम केस सं॰ 13 वर्ष 1980 में श्री शिव मूरत राम, सब-जज-II,बेरमो, तेनूघाट द्वारा पारित दिनांक 22.12.1997 के निर्णय और आदेश के विरूद्ध दाखिल की गयी है, जिस निर्णय द्वारा विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश ने माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 30 के अधीन अपीलार्थी शत्रुघ्न प्रसाद सिंह द्वारा दाखिल आपत्ति याचिका खारिज कर दी गयी थी और माध्यस्थ द्वारा दिए गए अतिशयोक्ति पूर्ण राशि को चुनौती देते हुए डी॰ वी॰ सी॰ द्वारा दाखिल आवेदन को सही पाया था और मूल दावे को 62,361/-रु॰ की राशि तक इसे घटा दिया था।

3. अपीलार्थी शत्रुघ्न प्रसाद सिंह के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि अधिनिर्णय दोषपूर्ण है क्योंकि कोई कारण नहीं दिया गया है, लेकिन विचारण न्यायालय ने इस पर विचार किए बिना अधिनिर्णय को संपुष्ट किया किन्तु गैर कानूनी तरीके से 5,12,000/-रुपये से 62,361/-रुपये तक अधिनिर्णय को संशोधित कर दिया जो इसकी शक्ति के परे था। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **सोमदत्त बिल्डर्स बनाम केरल राज्य, (2009)10 SCC Page 259** में प्रकाशित मामले के निर्णय में विश्वास व्यक्त किया है।

4. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी डी॰ वी॰ सी॰, जिसने प्रति अपील दाखिल किया है, के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि प्रत्यर्थीगण ने अधिनिर्णय को इस आधार पर चुनौती दी कि 5,12,000/-रुपये जिसका दावा आवेदक द्वारा कभी नहीं किया गया था को अधिनिर्णीत करने में माध्यस्थ अपने संदर्भ के परे चला गया है और इस प्रकार विद्वान विचारण न्यायालय ने अधिनिर्णय को सही संशोधित किया है।

5. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के बाद, मैं पाता हूँ कि अपीलार्थी-विपक्षी पक्षकार- 1 कम्पनी अर्थात् दामोदर वैली कॉरपोरेशन, जो संसद के अधिनियम (अधिनियम सं॰ XIV वर्ष 1948) द्वारा स्थापित सांविधिक निकाय है, और अन्य अपीलार्थीगण-विपक्षी पक्षकार (एम॰ ए॰ सं॰ 62 वर्ष 1998 में) जो इसके अधिकारी हैं, ने सी॰ टी॰ पी॰ सी॰ पर स्थायी दुकान और भंडार भवन को कैन्टीन में बदलने के लिए निविदा आमंत्रित किया था। अपीलार्थीगण-विपक्षी पक्षकार ने सम्यक् प्रक्रिया के बाद वादी-ठेकेदार शत्रुघ्न प्रसाद सिंह के पक्ष में उक्त निर्माण कार्य हेतु दिनांक 18.4.1975 के अपने पत्र के तहत आदेश जारी किया। तत्पश्चात्, उक्त आदेश जारी होने के ठीक दो माह बाद दामोदर घाटी निगम प्रबंधन ने उक्त स्थल पर उक्त कार्य-प्रोग्राम त्याग देने का निर्णय किया। अपीलार्थीगण-डी॰ वी॰ सी॰ ने वादी-ठेकेदार शत्रुघ्न प्रसाद सिंह को दिनांक 11.6.1975 के अपने पत्र द्वारा सूचित किया जिसे अपील के मेमो के परिशिष्ट-3 के रूप में चिन्हित किया गया है। आगे यह कथन किया गया है कि वादी-ठेकेदार को दी गयी सूचना करार के खंड 12 के मुताबिक

करार के निबंधनों के अनुरूप थी जिसे अपीलार्थी-डी॰ वी॰ सी॰ के अपील के मेमो के साथ दाखिल परिशिष्ट-4 के रूप में चिन्हित किया गया है जिसमें यह लिखा गया था कि यदि कार्य का परित्याग किया जाता है और समय पर इसका नोटिस लिखित रूप में दिया जाता है, ठेकेदार को किसी भुगतान अथवा मुआवजा का दावा करने का अधिकार नहीं होगा। किन्तु ठेकेदार ने पत्र पाने पर जवाब में 10,321/-रुपये मुआवजा का दावा करते हुए दिनांक 14.8.1975 को अपना पत्र भेजा जिसे अपील के मेमो के परिशिष्ट-5 के रूप में चिन्हित किया गया है।

6. चूँकि, कार्य आरंभ नहीं हुआ था और ठेकेदार ने बतौर प्रतिभूति राशि 676/-रुपया जमा किया था, इसे दिनांक 6 जून, 1978 के पत्र द्वारा ठेकेदार को वापस लौटा दिया गया था। तत्पश्चात, ठेकेदार द्वारा अंतिम मापी की गयी थी और ठेकेदार द्वारा की गयी मापी के मुताबिक 2762.61/-रुपये की राशि के लिए एक बिल बनाया गया था। तत्पश्चात्, वादी-ठेकेदार ने सब-जज, बेरमो, तेनुघाट के समक्ष माध्यस्थम् अभिधान वाद सं॰ 13 वर्ष 1980 दाखिल किया जिसमें पक्षों की सहमति से श्री कामेश्वर मिश्रा, अधिवक्ता को माध्यस्थम् नियुक्त किया गया था और मामला मध्यस्थतम् के लिए उनको निर्दिष्ट कर दिया गया था और ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने दिनांक 6.10.97 का अधिनिर्णय प्रस्तुत किया जिसको दोनों पक्षों द्वारा चुनौती दी गयी है।

7. दोनों पक्षों ने अधिनिर्णय को चुनौती दी और माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 की धारा 30 के अधीन अपनी-अपनी आपत्तियाँ दाखिल की। यह नोट करना महत्वपूर्ण है कि अधिनिर्णय पारित करते हुए विद्वान माध्यस्थ ने निष्कर्ष दिया था जो निम्नलिखित है:-

''मैं, कामेश्वर मिश्र, अधिवक्ता, बेरमो, तेनुघाट, एकमात्र माध्यस्थ ने पक्षों को नोटिस जारी किया। दोनों पक्षों ने सुनवाई में भाग लिया।

मैंने मेरे समक्ष प्रस्तुत संदर्भ का परिशीलन किया है। संदर्भ के अधीन मैंने दोनों पक्षों को प्रत्येक मामले पर सुना, परीक्षण किया और मेरे समक्ष प्रस्तुत बयानों और दस्तावेजों पर विचार किया।

मैं (कामेश्वर मिश्र, एकमात्र माध्यस्थ) एतद्द्वारा मुझको निर्दिष्ट किए गए मामले के संबंध में इस अंतिम अधिनिर्णय को लिखित रूप में पारित और प्रकाशित करता हूँ जो न्याय के उद्देश्य को प्राप्त करेगा।

(a) प्रतिवादी/विपक्षी पक्षकार/आपत्तिकर्ता-डी० वी० सी० वादी-दावेदार को 5,12,000/- रुपये की एकमुश्त राशि का भुगतान करेगा।

दिनांक 25.2.1980 से अर्थात् मामला संस्थापित किए जाने की तिथि से वादी/दावेदार को वास्तविक भुगतान किए जाने तक 12% प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज प्रतिवादी/विपक्षी पक्षकार भुगतान करेगा।

8. पहली आपत्ति, जो दावेदार-अपीलार्थी द्वारा की गयी है, यह है कि अधिनिर्णय सकारण अधिनिर्णय नहीं है। इस संबंध में यह विचार करना महत्वपूर्ण है कि क्या विधि में सकारण अधिनिर्णय देना माध्यस्थ से अपेक्षित है या नहीं?

9. जीवराजभाई उजमशी सेठ एवं अन्य बनाम चिन्तामनराव बालाजी एवं अन्य, AIR 1965 सुप्रीम कोर्ट 214 में प्रकाशित मामले में निम्नलिखित संप्रेक्षित किया गया था:-

''यह अनुमान लगाने की छूट न्यायालय को नहीं है, जहाँ माध्यस्थ द्वारा कोई कारण नहीं दिया गया है, कि अपने निष्कर्ष पर आने के लिए माध्यस्थ को किस बात ने प्रेरित किया। इस उपधारणा पर कि माध्यस्थ तर्क की किसी निश्चित प्रक्रिया द्वारा अपने निष्कर्ष पर आया होगा, न्यायालय यह विनिश्चित करने के लिए अग्रसर नहीं हो सकता है कि निष्कर्ष सही है या गलत। न्यायालय को यह छूट नहीं है कि वह उस मानसिक प्रक्रिया की जाँच करने का प्रयास करे जिसके द्वारा माध्यस्थ अपने निष्कर्ष पर पहुँचा है जहाँ इसे उसके अधिनिर्णय के निबंधनों द्वारा प्रकट नहीं किया गया है।''

10. बिजेन्द्र नाथ श्रीवास्तव (मृत) बनाम विजयनाथ श्रीवास्तव, विधिक प्रतिनिधि के माध्यम से, बनाम मयंक श्रीवास्तव एवं अन्य, AIR 1994 सुप्रीम कोर्ट 2562 में प्रकाशित मामले में पैरा–46 में यह संप्रेक्षित किया गया था कि समेकित एकमुश्त अधिनिर्णय को निश्चित करने की अनुमति माध्यस्थ को है।

11. मामले के उस दृष्टि में, मेरे मत में, इस निष्कर्ष पर आने के लिए कोई तर्क दिए जाने की अपेक्षा माध्यस्थ से नहीं की जाती थी कि कैसे उसके दावेदार–ठेकेदार के पक्ष में 5,12,000/-रुपये की राशि अनुज्ञात की है। विद्वान विचारण न्यायालय ने इस बिन्दु पर विधि की चर्चा करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के अनेक निर्णयों को पैरा 14 और 15 में निर्दिष्ट किया और पूर्वोक्त निर्णयों पर विचार करने के बाद विद्वान विचारण न्यायालय अपने निर्णय के पैरा 16 में निम्नलिखित निष्कर्ष पर आया कि ''ऊपर निर्दिष्ट किए गए निर्णय में प्रतिपादित विधि की प्रतिपादनाओं से यह पूर्णत: स्पष्ट है कि माध्यस्थ स्वयं को निर्दिष्ट किए गए पक्षों के बीच के विवाद का एकमात्र और अंतिम न्यायाधीश है और उसका अधिनिर्णय अंतिम है और निष्कर्षित है और उनदोनों पर बाध्यकारी है। माध्यस्थ के ऊपर बाध्यता है कि वह स्वयं द्वारा प्राप्त निष्कर्ष के लिए कारण दे। इस अधिनिर्णय में हस्तक्षेप करने के लिए न्यायालय के पास सीमित अवसर है। केवल माध्यस्थम अधिनियम की धारा 13 के अधीन प्रतिपादित आधार पर ही माध्यस्थ का अधिनिर्णय अपास्त किया जा सकता है।''

माध्यस्थम अधिनियम का धारा 30 निम्नलिखित है:–

''किसी अधिनिर्णय को निम्नलिखित आधारों में से एक या अधिक आधारों को छोड़कर अन्य आधार पर अपास्त नहीं किया जायेगा, अर्थात, (a) यह कि माध्यस्थ या निर्णायक ने स्वयं को या कार्यवाहियों को गलत प्रकार से संचालित किया है (b) यह कि अधिनिर्णय माध्यस्थम को अधिक्रमित करते हुए न्यायालय द्वारा एक आदेश निर्गत करने के उपरांत या धारा 35 के अंतर्गत माध्यस्थम कार्यवाहियों के अवैध हो जाने के उपरांत किया गया है; (c) यह कि अधिनिर्णय को अनुचित रूप से उपाप्त किया गया है या अन्यथा अवैध है।''

12. जहाँ तक अपीलार्थी की आपत्ति का संबंध है, विचारण न्यायालय ने सही–सही इसे अनुज्ञात किया है क्योंकि अधिनिर्णय पारित करने के लिए कारण देने की अपेक्षा माध्यस्थ से नहीं की जाती थी।

13. किन्तु डी॰ वी॰ सी॰ द्वारा की गयी आपत्ति पर विचार करते हुए जिन्होंने अपना निवेदन आधार सं॰ C तक सीमित रखा है 'कि अधिनिर्णय अनुचित रूप से किया गया है क्योंकि 5,12,000/- रुपये की एकमुश्त राशि अनुज्ञात करके माध्यस्थ निर्देश के निबंधनों के परे चला गया है। जबकि दावेदार द्वारा किया गया कुल दावा 12% की दर से ब्याज के साथ 62,351/- रुपया था और ऐसे निष्कर्ष पर आने के लिए कारण दिए बिना इसे बाद में 62,361/-रुपये में संशोधित कर दिया।''

14. ऊपर चर्चा किए गए इस न्यायालय और साथ ही विचारण न्यायालय की कानूनी स्थिति की दृष्टि में, विद्वान सब जज को अधिनिर्णय संशोधित करने की शक्ति नहीं थी, यदि माध्यस्थ ने स्वयं को अथवा कार्यवाही को गलत प्रकार से संचालित नहीं किया था, विचारण न्यायालय को या तो 5,12,000/- रुपये का अधिनिर्णय संपुष्ट करना चाहिए था अथवा संदर्भ के परे जाने के लिए समस्त अधिनिर्णय को अपास्त करना चाहिए था। चूँकि मामला पक्षों की सहमति से निर्दिष्ट किया गया था और यह भी प्रतीत होता है कि मुख्य दावा के बाद दावेदार ने दावा के संशोधन के लिए आवेदन दिया था और अभिधान (माध्यस्थम) वाद सं॰ 13 वर्ष 1980 में दिनांक 7.12.1993 को पारित आदेश द्वारा विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश ने दोनों पक्षों की सहमति से संशोधन को भी माध्यस्थ को निर्दिष्ट कर दिया था। मामले के उस दृष्टिकोण में, माध्यस्थ ने दोनों संशोधनों ओर मूल दावा पर विचार करने के बाद अपने स्वविवेक में 5,12,000/-रुपये का अंतिम अधिनिर्णय पारित किया था जिसे एक ओर तो विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश–II द्वारा आक्षेपित आदेश के माध्यम से संपुष्ट किया गया है और दूसरी ओर इसे संशोधित भी किया गया है जो विधि में दोषपूर्ण है।

15. तद्नुसार माध्यस्थ द्वारा पारित 5,12,000/-रुपये का अधिनिर्णय संपुष्ट किया जाता है क्योंकि अपीलार्थी-ठेकेदार के पक्ष में अधिनिर्णय पारित करते हुए माध्यस्थ अपनी अधिकारिता के अंतर्गत था। दूसरा अंश, जिसके द्वारा अधिनिर्णय 62,361/-रुपयों तक संशोधित किया गया है, अपास्त किया जाता है।

16. उक्त निष्कर्ष की दृष्टि में, विविध अपील सं॰ 87 वर्ष 1998 अनुज्ञात की जाती है और डी॰ वी॰ सी॰ अपीलार्थीगण द्वारा दाखिल विविध अपील सं॰ 62/98 खारिज की जाती है। पूर्वोक्त आदेश की दृष्टि में अधिनिर्णय को न्यायालय का नियम बनाया जाता है और परिवर्तित अधिनिर्णय के निबंधनों के अनुसार डिक्री तैयार की जाए।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

धनुषधारी राम उर्फ धनुषधारी महतो एवं एक अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W. P.(C) No. 325 of 2009. Decided on 21th April, 2010.

बिहार काश्तकार जोत (अभिलेखों का अनुरक्षण) अधिनियम, 1973—धारा 14—नामान्तरण के आदेश में हस्तक्षेप–जब कभी भी अधिकार, अभिधान एवं हित के बारे में पक्षों के बीच विवाद हो, पक्षों को सिविल न्यायालय जाना होगा–राजस्व अधिकारियों को सिविल न्यायाधीश की तरह अभिधान और हित विनिश्चित नहीं करना चाहिए–यह तथ्य कि पक्षों के बीच मौखिक बँटवारा विवादित है, का अधिमूल्यन किए बिना प्रत्यर्थी के पक्ष में अंचलाधिकारी द्वारा आदेश पारित किया गया–आक्षेपित आदेश अपास्त। (पैरा 4 एवं 5)

निर्णयज विधि.–2008 (2) JLJR 455; 2002 (3) JLJR 413; 2001 (1) JLJR 75—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Binod Kr. Dubey, For the Petitioners; J.C. to S.C. (L & C), For the State; Mr. Awani Kant Prasad, For the Respondents 5 to 7.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन नामान्तरण पुनरीक्षण सं॰ 1 वर्ष 2008 में दिनांक 8 नवम्बर, 2008 को उप-कमिश्नर, हजारीबाग द्वारा पारित उस आदेश के विरूद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा नामान्तरण अपील सं॰ 26 वर्ष 2006 में दिनांक 12 दिसम्बर, 2007 को उप-कलक्टर, भूमि सुधार, हजारीबाग द्वारा पारित आदेश अभिखंडित और अपास्त कर दिया गया है और नामान्तरण केस सं॰ 736 वर्ष 2006-07 में दिनांक 11 जुलाई, 2006 को अंचलाधिकारी, कटकमसन्डी, हजारीबराग द्वारा पारित आदेश को संपुष्ट किया गया है। इस प्रकार याचीगण ने अंचलाधिकारी, कटकमसन्डी, हजारीबाग और उप-कमिश्नर, हजारीबाग दोनों के आदेशों के विरूद्ध यह रिट याचिका दाखिल की है।

2. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जोरदार निवेदन किया गया है कि प्रश्नगत भूमि गाँव जालिमा, पी॰ एस॰ कटकमसन्डी, जिला-हजारीबाग स्थित खाता सं॰ 1, प्लॉट सं॰ 9, 0.49 एकड़ माप वाली भूमि है। याचीगण के पिता और प्रत्यर्थी सं॰ 6 और 7 के पिता प्रश्नगत संपत्ति के संयुक्त स्वामी थे। संयुक्त हिन्दू परिवार का विभाजन नहीं हुआ है। इस तथ्य के बावजूद, संयुक्त स्वामियों में से एक के विधिक उत्तराधिकारियों अर्थात् स्व॰ राम टहल महतो ने प्रत्यर्थी सं॰ 5 को संपत्ति बेच दी। इस प्रकार, प्रत्यर्थी सं॰ 5 के हक पूर्वाधिकारी प्रत्यर्थी सं॰ 6 और 7 है जो प्रश्नगत संपत्ति के संयुक्त स्वामियों में

से एक अर्थात् रामटहल महतो के पुत्र है। प्रत्यर्थी सं॰ 6 और 7 के नामों को नामान्तरित किए बिना अंचलाधिकारी ने राजस्व प्रविष्टियों में प्रत्यर्थी सं॰ 5 का नाम नामान्तरित कर दिया है। यह अंचलाधिकारी द्वारा पारित आदेश की गलती सं॰ 1 है। इस प्रकार, इसी प्रभाव की दूसरी गलती भी अंचलाधिकारी द्वारा की गयी है कि उन्होंने संयुक्त हिन्दू परिवार का बँटवारा उपधारित किया है। अंचलाधिकारी राजस्व अधिकारी होने के नाते सहदायिकों के बीच बँटवारा विनिश्चित नहीं कर सकते हैं। याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा बतायी गयी इस प्रभाव की तीसरी गलती भी है कि अंचलाधिकारी ने सहदायिकों के अंशों को भी उपधारित किया है। यह राजस्व अधिकारी के रूप में कार्यरत अधिकारी की शक्ति और अधिकारिता से परे है, क्योंकि यह सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 9 के अधीन सिविल न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया जाने वाला मामला है। मामले में सिविल विवाद अंतर्ग्रस्त है और याचीगण तथाकथित मौखिक बँटवारा से इन्कार करते हैं और इसलिए दिनांक 11 जुलाई, 2006 को अंचलाधिकारी द्वारा पारित आदेश (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-1) अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है। तत्पश्चात्, याचीगण ने नामान्तरण अपील सं॰ 26 वर्ष 2006 दाखिल किया और अपीलीय प्राधिकारी, अर्थात्, उप-कलक्टर, भूमि सुधार, हजारीबाग ने याचीगण के पूर्वोक्त तर्को का अधिमूल्यन किया है और संप्रेक्षित किया है कि प्रश्नगत संपत्ति का बँटवारा विवादित है और अंततः अंचलाधिकारी द्वारा पारित आदेश अभिखंडित और अपास्त कर दिया गया था और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा इसे सही निर्देश दिया गया है कि पक्ष सिविल न्यायालय की शरण में जाए। यह आदेश निजी प्रत्यर्थीगण द्वारा पुनरीक्षण में ले जाया गया था जहाँ इस सरल प्रतिपादना, जिसका अधिमूल्यन उप-कलक्टर भूमि सुधार, हजारीबाग द्वारा किया गया है, का समुचित अधिमूल्यन उप-कमिश्नर, हजारीबाग द्वारा नहीं किया गया है और उप-कमिश्नर, हजारीबाग द्वारा वही गलती की गयी है जो अंचलाधिकारी ने की है। सहदायिकों के बीच बँटवारा उपधारित किया गया है; सहदायिकों के अंशों को भी उपधारित किया गया है और उपकलक्टर, भूमि सुधार, हजारीबाग द्वारा पारित आदेश अभिखंडित और अपास्त कर दिया गया है। वस्तुतः न तो अंचलाधिकारी ने और न ही उप-कमिश्नर ने पूर्वोक्त प्रतिवादों का समुचित अधिमूल्यन किया है कि राजस्व कानूनों के अधीन कार्यरत अधिकारी बँटवारा उपधारित नहीं कर सकते हैं, सहदायिकों के अंशों को उपधारित नहीं कर सकते हैं और पक्षों को सिविल न्यायालय जाना होगा जैसा अवर अपीलीय न्यायालय ने कहा था और इस कारण यह न्यायालय उप-कमिश्नर, हजारीबाग द्वारा पारित आदेश को अभिखंडित और अपास्त कर सकता है और इस न्यायालय द्वारा दिए गए नियत समय के भीतर विधि के अनुरूप पुनरीक्षण को फिर से विनिश्चित करने का निर्देश उप-कमिश्नर, हजारीबाग को दिया जा सकता है।

3. मैंने प्रत्यर्थी सं॰ 5, 6 और 7 जो मुख्य प्रतिवादी पक्ष है, के विद्वान अधिवक्ता को सुना है। प्रत्यर्थी सं॰ 5, 6 और 7 के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि बँटवारा वाद सं॰ 53 वर्ष 1945, जिसे अंततः माध्यस्थ की नियुक्ति पर अंततः विनिश्चित किया गया था, के आधार पर प्रश्नगत संपत्ति के सहदायिकों के बीच पहले ही बँटवारा हो चुका है किन्तु प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निष्पक्षतः यह निवेदन किया गया है कि यह तथ्य है कि याचीगण के पिता और प्रत्यर्थी सं॰ 6 और 7 के पिता के बीच कोई भी बँटवारा नहीं हुआ था। प्रश्नगत भूमि दोनों पूर्वोक्त व्यक्तियों, अर्थात्, उगन महतो और राम टहल महतो के संयुक्त नाम में थी। प्रत्यर्थी सं॰ 5, 6 और 7 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी निष्पक्षतः निवेदन किया गया है कि प्रत्यर्थी सं॰ 6 और 7 का नाम कभी भी राजस्व प्रविष्टियों

में अन्त:स्थापित नहीं किया गया था और दिनांक 12 सितम्बर, 2005 के रजिस्टर्ड विक्रय-विलेख द्वारा उन्होंने प्रत्यर्थी सं॰ 5 को संपत्ति बेच दी है और तत्पश्चात प्रत्यर्थी सं॰ 5 ने राजस्व प्रविष्टियों में अपने नाम के नामान्तरण के लिए आवेदन दिया और उसका मामला नामान्तरण केस सं॰ 736 वर्ष 2006-07 के रूप में दर्ज किया गया था जिसे अंचलाधिकारी द्वारा अनुज्ञात किया गया था। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि प्रत्यर्थी सं॰ 5 का नाम नामान्तरित करने में अंचलाधिकारी ने कोई गलती नहीं की है क्योंकि प्रत्यर्थी सं॰ 6 और 7 ने रजिस्टर्ड विक्रय-विलेख के माध्यम से प्रत्यर्थी सं॰ 5 के पक्ष में संपत्ति बेच दी है और प्रत्यर्थी सं॰ 6 और 7 का पिता पहले से ही प्रश्नगत संपत्ति के स्वामियों में से एक था। उप-कलक्टर, भूमि सुधार, हजारीबाग द्वारा पारित अपीलीय आदेश को अभिखंडित और अपास्त करते हुए पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा इस तथ्य का समुचित अधिमूल्यन किया गया है और इस कारण यह रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है और अंचलाधिकारी, कटकमसन्डी, हजारीबाग द्वारा पारित आदेश और पुनरीक्षण प्राधिकारी अर्थात् उप-कमिश्नर, हजारीबाग द्वारा पारित आदेश तथ्यों और विधि के अनुरूप है।

4. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के परिशीलन के बाद, मैं निम्नलिखित कारणों से नामान्तरण पुनरीक्षण सं॰ 1 वर्ष 2008 (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-5) में दिनांक 8 नवम्बर, 2008 के उप-कमिश्नर, हजारीबाग द्वारा पारित आदेश एतद् द्वारा अभिखंडित और अपास्त करता हूँ:

(i) मामले के तथ्यों से यह प्रतीत होता है कि प्रश्नगत भूमि ग्राम-जलिमा, कटकमसन्डी, जिला-हजारीबाग स्थित खाता सं॰ 1, प्लॉट सं॰ 9, 0.49 एकड़ माप वाली भूमि है। यह भूमि दो व्यक्तियों, अर्थात्, उगन महतो और राम टहल महतो के नाम में थी। याचीगण उगन महतो के पुत्र हैं और प्रत्यर्थी सं॰ 6 और 7 राम टहल महतो के पुत्र हैं। उगन महतो और राम टहल महतो के बीच बँटवारा नहीं हुआ था। राजस्व प्रविष्टियों में बँटवारा के बारे में अभिलेख पर कुछ भी उपलब्ध नहीं है।

(ii) अब तथ्यों से यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी सं॰ 6 और 7 ने प्रश्नगत संपत्ति दिनांक 12 सितम्बर, 2005 के रजिस्टर्ड विक्रय-विलेख के माध्यम से प्रत्यर्थी सं॰ 5 को बेच दी गयी थी और, तत्पश्चात, प्रत्यर्थी सं॰ 5 ने राजस्व प्रविष्टियों में अपने नाम के नामान्तरण के लिए आवेदन दिया और अंचलाधिकारी, कटकमसन्डी, हजारीबाग के समक्ष नामान्तरण केस सं॰ 736 वर्ष 2006-07 के रूप में मामला दर्ज किया गया था।

(iii) यह प्रतीत होता है कि अंचलाधिकारी प्रत्यर्थी सं॰ 5 के पक्ष में नामान्तरण अनुज्ञात करते इस सीमा तक गया है कि उगन महतो और राम टहल महतो के बीच मौखिक बँटवारा 1969 में हुआ था। यह पूर्णत: प्रत्यर्थी सं॰ 6 और 7 द्वारा लगाए गए अभिकथनों के आधार पर है। इस मौखिक बँटवारे का कोई भी साक्ष्य नहीं है। याचीगण द्वारा इस तथ्य से इंकार किया गया है। मौखिक बँटवारे के बारे में विवाद के बावजूद अंचलाधिकारी ने मौखिक बँटवारा उपधारित किया और सहदायिकों के बीच अंशों को भी उपधारित किया। इसी प्रकार, भूमि मौखिक रूप से प्रत्यर्थी सं॰ 6 और 7 को अंतरित भी की गयी थी और तत्पश्चात्, प्रत्यर्थी सं॰ 5 का नाम अंत:स्थापित किया गया था, किन्तु अंचलाधिकारी द्वारा आदेश पारित करते हुए राजस्व प्रविष्टियों में प्रत्यर्थी सं॰ 6 और 7 का नाम अंत:स्थापित किए बिना, प्रत्यर्थी सं॰ 5 का नाम राजस्व प्रविष्टियों में प्रत्यक्षत: नामान्तरित किया गया था।

(iv) राजस्व कानूनों के अधीन कार्यरत अधिकारियों को ध्यान में रखना चाहिए कि जब कभी भी अधिकार, अभिधान और हित के बारे में पक्षों के बीच विवाद है, पक्षों को सिविल न्यायालय भेजना

होता है और सिविल न्यायाधीश की तरह राजस्व अधिकारीगण को पक्षों के अधिकार, अभिधान और हित को विनिश्चय नहीं करना चाहिए। पक्षों के बीच मौखिक बँटवारा विवाद में है। इस तथ्य का अधिमूल्यन किए बिना अंचल अधिकारी द्वारा प्रत्यर्थी सं॰ 5 के पक्ष में आदेश पारित किया गया है और इस कारण अंचलाधिकारी, कटकमसन्डी, हजारीबाग द्वारा दिनांक 11 जुलाई, 2006 को पारित आदेश, जो याचिका के मेमो के परिशिष्ट-1 पर है, अभिखंडित और अपास्त करने योग्य है।

(v) यह प्रतीत होता है कि वर्तमान याचीगण द्वारा उप-कलक्टर, भूमि सुधार, हजारीबाग के समक्ष नामान्तरण अपील सं॰ 26 वर्ष 2006 दाखिल की गयी थी, जिन्होंने दिनांक 12 दिसम्बर, 2007 का आदेश (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-4) पारित करते हुए अपील अनुज्ञात किया है और अवर अपीलीय प्राधिकारी द्वारा यह सही संप्रेक्षित किया गया है कि प्रश्नगत भूमि में अपने-अपने अंश के प्रभाजन के लिए पक्षों को सिविल न्यायालय जाना चाहिए। अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा यह भी सही संप्रेक्षित किया गया है कि संपत्ति का कब्जा भी विवाद में है और, इस प्रकार, पक्षों के बीच अनेक सिविल विवादों को ध्यान में रखते हुए अवर अपीलीय न्यायालय अर्थात् उप-कलक्टर, भूमि सुधार, हजारीबाग ने अंचलाधिकारी, कटकमसन्डी, हजारीबाग द्वारा पारित आदेश को सही अभिखंडित और अपास्त किया है और पक्षों को सिविल न्यायालय भेज दिया है।

(vi) इस आदेश अर्थात् अपीलीय आदेश के विरूद्ध उप-कमिश्नर, हजारीबाग के समक्ष नामान्तरण पुनरीक्षण सं॰ 1 वर्ष 2008 दाखिल किया जिन्होंने भी, इस तथ्य की कि मौखिक बँटवारा विवादग्रस्त है और संपत्ति का कब्जा भी विवादग्रस्त है, का अधिमूल्यन किए बिना अंचलाधिकारी, कटकमसन्डी, हजारीबाग द्वारा पारित आदेश को अभिपुष्ट करते हुए अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अभिखंडित और अपास्त कर दिया और, इस प्रकार, पुनरीक्षण प्राधिकारी ने तथ्यों और विधि में गंभीर गलती की है क्योंकि राजस्व अधिकारियों को पक्षों के बीच सिविल विवादों विशेषत: बँटवारा, बाँटी गयी संपत्ति में अंश, कब्जा आदि का विनिश्चय नहीं करना चाहिए।

याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने **मुंशी साव एवं अन्य बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य,** 2008 (2) JLJR पृष्ठ-455 में प्रकाशित मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है जिसके पैराग्राफ सं॰ 5 पर निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:–

> *"5. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और अभिलेख का परिशीलन किया है। अंचल अधिकारी के आदेश से यह स्पष्ट है कि उसने पक्षों के अंश का विनिश्चय किया है और पक्षों के परस्पर अंश के विनिश्चय के आधार पर नामान्तरण अनुज्ञात किया है। अंश का विनिश्चय अथवा अभिधान की घोषणा राजस्व प्राधिकारी के अधिकारिता के बाहर है। इस प्रकार, अंचलाधिकारी द्वारा पारित आदेश अधिकारिता के बिना है। अपीलीय और पुनरीक्षण प्राधिकारीगण ने सही अभिनिर्धारित किया है कि अभिधान के प्रश्न पर विचार करने और पक्षों के अंश का विनिश्चय करने की अधिकारिता अंचलाधिकारी को नहीं है। अपीलीय और पुनरीक्षण प्राधिकारीगण के आदेशों पर अच्छी तरह चर्चा की गयी है और पूरी तरह विचार किया गया है। आक्षेपित आदेश में कोई दुर्बलता या अवैधता नहीं है।''*

मोती चन्द खन्ना बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, 2002 (3) JLJR पृष्ठ-413 में प्रकाशित मामले में इस न्यायालय द्वारा विशेषत: पैराग्राफ सं॰ 5 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:–

"5. स्वीकृत रूप से बँटवारा वाद सं० 7/1955 में अंतिम डिक्री तैयार की गयी थी और उक्त बँटवारा वाद में प्रश्नगत भूमि याची को आबंटित की गयी थी और वर्तमान प्रत्यर्थी सं० 4 से 6 अथवा उनके हित खरीददार प्रतिवादीगण यानी प्रतिवादी सं० 9, प्रतिवादी सं० 20-D और प्रतिवादी सं० 22H थे। पूर्वोक्त भूमि के संबंध में उक्त अंतिम डिक्री निष्पादित की गयी थी और भूमि के कब्जे को सौंपा गया था। पूर्वोक्त डिक्री और सिविल न्यायालय द्वारा पारित आदेश के आधार पर वर्ष 1979 में याची के नाम जमाबंदी की गयी थी। अतः मेरे मत में, अपने अंश का दावा करते किसी बरेन पांडे की प्रेरणा पर दाखिल बँटवारा वाद के लंबित रहने के मुख्य आधार पर 12 वर्षों बाद उक्त जमाबंदी रद्द करने में अपर कलक्टर न्यायोचित नहीं था। यह उपधारित करते हुए भी कि बरेन पांडे सह-अंशधारी था और उसको बँटवारा वाद के पक्ष बनाए बिना डिक्री पारित की गयी थी, बँटवारा डिक्री को अपास्त, परिवर्तित अथवा पुनरीक्षित किया जा सकता है किन्तु जहाँ तक पूर्व के बँटवारा वाद में पारित अंतिम डिक्री का संबंध है, अंतिम डिक्री जिसके अनुसरण में कब्जा सौंप दिया गया था को अनदेखा करके अपर कलक्टर जमाबंदी किया जाना रद्द नहीं कर सकता था। इस तथ्य के अतिरिक्त यह सुनिश्चित है कि जाँच के पश्चात् खोली गयी जमाबन्दी, जो काफी दिनों तक बनी रही, को सक्षम अधिकारिता के सिविल न्यायालय से डिक्री अथवा आदेश प्राप्त किए बिना हितबद्ध व्यक्ति की प्रेरणा पर रद्द नहीं करना चाहिए था। दिलीप कुमार महतो (याची) बनाम बिहार राज्य एवं अन्य (प्रत्यर्थीगण) 2001 (1) JLJR Page 75 में प्रकाशित मामले में इस न्यायालय की पीठ द्वारा इस प्रश्न पर विचार किया गया था। यह अभिनिर्धारित एवं संप्रेक्षित किया गया थाः

''प्रत्यर्थीगण द्वारा यह विवादित नहीं किया गया है कि वर्ष 1978 में याची के पक्ष में नामान्तरण प्रभावकारी बनाया गया था और विगत 20 वर्षों से याची का नाम राजस्व अभिलेख में बना हुआ था और वह बिहार राज्य को लगान एवं कर का भुगतान कर रहा है। इन परिस्थितियों में, याची के नाम में चल रही जमाबन्दी के रद्दकरण के लिए आक्षेपित आदेश पारित करने में पुनरीक्षण प्राधिकारी न्यायोचित नहीं था। <u>अधिकाधिक, पुनरीक्षण प्राधिकारी प्रत्यर्थीगण को अपने अभिधान और कब्जे के न्याय निर्णयन के लिए सिविल न्यायालय जाने को कह सकता था।</u> यह सुनिश्चित है कि किसी खास व्यक्ति के नाम में वर्षों से चली आ रही जमाबन्दी किसी संक्षिप्त कार्यवाही में दावेदार की प्रेरणा पर रद्द नहीं की जा सकती है। समुचित अनुतोष के लिए दावेदार को सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय के पास जाना होगा। इस संबंध में, ''हरिहर सिंह बनाम अपर कलक्टर (1978 BBCJ-323) मामले और जमालुद्दीन अहमद बनाम एस० डी० ओ० खगड़िया एवं अन्य (1979 BBCJ-605) मामले में दो खंड पीठ के निर्णयों पर विश्वास किया जा सकता है। (जोर दिया गया)

इस प्रकार, पूर्वोक्त निर्णयों की दृष्टि में, दिनांक 8 नवम्बर, 2008 को उप-कमिश्नर, हजारीबाग द्वारा पारित आदेश याचिका के मेमो का परिशिष्ट-5 अभिखंडित और अपास्त करने योग्य है।

(vii) प्रत्यर्थी सं॰ 5, 6 और 7 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि वर्ष 1969 में कभी मौखिक बँटवारा हुआ था। जब इस न्यायालय ने प्रश्न उठाया कि क्या प्रत्यर्थी सं॰ 5, 6 और 7 के पास इस निवेदन के लिए कोई साक्ष्य है, उनका उत्तर था कि मौखिक बँटवारे के लिए उनके पास

कोई साक्ष्य नहीं है। इस प्रकार, तथ्य का अत्यन्त विवादित प्रश्न अंचलाधिकारी और उप-कमिश्नर, हजारीबाग द्वारा स्वीकार कर लिया गया है। आज भी, प्रश्नगत संपत्ति की राजस्व प्रविष्टियों के मुताबिक तथाकथित मौखिक बँटवारा, जो वर्ष 1969 में उगन महतो और राम टहल महतो, जो प्रश्नगत संपत्ति के संयुक्त स्वामी है, के बीच हुआ था, के बारे में इस न्यायालय को कुछ भी इंगित करने में प्रत्यर्थी सं० 5, 6, और 7 के विद्वान अधिवक्ता अक्षम रहे हैं।

5. पूर्वोक्त तथ्यों और कारणों के समेकित प्रभाव के कारण, मैं नामान्तरण पुनरीक्षण सं० 1 वर्ष 2008 (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-5) में दिनांक 8 नवम्बर, 2008 को उप-कमिश्नर, हजारीबाग द्वारा पारित आदेश को अभिखंडित और अपास्त करता हूँ और मैं एतद् द्वारा इस न्यायालय के आदेश की प्रति की प्राप्ति की तिथि से सोलह सप्ताह की अवधि के भीतर, जहाँ तक संभव और व्यवहारिक हो, उक्त पुनरीक्षण याचिका को विधि के अनुरूप नये सिरे से विनिश्चित करने का निर्देश उप-कमिश्नर, हजारीबाग को देता हूँ।

6. यह रिट याचिका तद्नुसार अनुज्ञात की जाती है और व्यय के आदेश के बिना निपटायी जाती है।

माननीय डी० एन० पटेल, न्यायमूर्ति

शांति देवी

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

Civil Review No. 101 of 2009. Decided on 19th April, 2010.

सेवा विधि–सेवा समाप्ति–आंगनबाड़ी सहायिका के पद से उप-कमिश्नर द्वारा दिए गए निर्देश के अनुसरण में सी० डी० पी० ओ० द्वारा आक्षेपित आदेश पारित–याची को न तो नोटिस और न ही सुनवाई का अवसर दिया गया–आक्षेपित आदेश अपास्त–प्रत्यर्थीगण को नया निर्णय लेने का निर्देश दिया गया। (पैरा 2 से 6)

अधिवक्तागण.–M/s Ritu Kumar, Ratna Prabha, For the Petitioner; J.C. to Sr. S.C.-I, For the State.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची दिनांक 27 जनवरी, 2006 को नियुक्त की गयी एक आंगनबाड़ी सहायिका है और लंबे अरसे से कार्यरत है। तत्पश्चात् उप-कमिश्नर, पलामू के कहने पर उसकी सेवाएँ अचानक समाप्त कर दी गयी थी जिन्होंने कोई नोटिस दिए बिना और याची को सुनवाई का अवसर दिए बिना दिनांक 26 दिसम्बर, 2008 को आदेश पारित किया था। उक्त आदेश डब्ल्यू० पी० (एस०) सं० 192 वर्ष 2009 की मूल याचिका के मेमो का परिशिष्ट-16 पर है। इस आदेश के आधार पर, बाल विकास प्रोजेक्ट अधिकारी, हरिहरगंज पलामू, ने दिनांक 30 दिसम्बर, 2008 को आदेश पारित किया, जो डब्ल्यू० पी० (एस०) सं० 192 वर्ष 2009 के मेमो का परिशिष्ट-15 है, जिसके द्वारा कोई भी नोटिस दिए बिना और याची को सुनवाई का अवसर दिए बिना याची की सेवाएँ समाप्त कर दी गयी थी एवं इसलिए एक रिट याचिका दाखिल की गयी थी, जिसे इस न्यायालय द्वारा दिनांक 12 मई, 2009 के आदेश के तहत अनुज्ञात किया गया था और केवल एक आदेश अभिखंडित और अपास्त किया गया था अर्थात् वह आदेश जिसे बाल विकास प्रोजेक्ट अधिकारी, हरिहरगंज, पलामू द्वारा दिनांक 30 दिसम्बर, 2008 को पारित किया गया था, जो मूल रिट याचिका के मेमो का परिशिष्ट-15

है, किन्तु यह आदेश दिनांक 26 दिसम्बर, 2008 को उप-कमिश्नर, पलामू द्वारा पारित आदेश (मूल याचिका के मेमो का परिशिष्ट-16) पर आधारित था और इसलिए उस आदेश को भी अभिखंडित किया जा सकता है ताकि दिनांक 26 दिसम्बर, 2008 को उप-कमिश्नर, पलामू द्वारा पारित पूर्व आदेश से प्रभावित हुए बिना बाल विकास प्रोजेक्ट अधिकारी, हरिहरगंज, पलामू द्वारा नया निर्णय लिया जा सके।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि प्रार्थना करने में एक त्रुटि हुई है और यद्यपि आदेश खुले न्यायालय में लिखाया गया था किन्तु इसे न्यायालय में नहीं लाया गया था। चाहे जो भी हो, परिशिष्ट-15 अभिखंडित और अपास्त कर दिया गया है और इसलिए परिशिष्ट-16 भी अभिखंडित और अपास्त करने योग्य है ताकि बाल विकास प्रोजेक्ट अधिकारी, हरिहरगंज, पलामू द्वारा नया निर्णय लिया जा सके।

3. मैंने प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को सुना है, जिन्होंने निवेदन किया है कि चूँकि बाल विकास प्रोजेक्ट अधिकारी, हरिहरगंज, पलामू द्वारा पारित परिशिष्ट 15 पर मौजूद आदेश इस न्यायालय द्वारा पहले ही अभिखंडित किया जा चुका है और यह आदेश उप-कमिश्नर, पलामू द्वारा पारित किया गया था एवं वह भी कोई नोटिस दिए बगैर और याची को सुनवाई का कोई अवसर दिए बगैर पारित किया गया था एवं इसलिए, यह भी अभिखंडित और अपास्त करने योग्य है परन्तु इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश में कोई त्रुटि नहीं है क्योंकि इसे याची द्वारा इंगित किया जाना चाहिए था जब मूल याचिका के मेमों के परिशिष्ट 16 पर मौजूद आदेश को अभिखंडित करने के लिए खुले न्यायालय में निर्णय लिखाया जा रहा था।

4. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखने के बाद, यह प्रतीत होता है कि दिनांक 30 दिसम्बर, 2008 के आदेश के तहत बाल विकास प्रोजेक्ट अधिकारी, हरिहरगंज, पलामू के आदेश द्वारा याची की सेवाएँ समाप्त कर दी गयी थी। इस आदेश को डब्ल्यू० पी० (एस०) सं० 192 वर्ष 2009 में चुनौती दी गयी थी। याचिका को दिनांक 12 मई, 2009 के आदेश के तहत अनुज्ञात किया गया था और दिनांक 30 दिसम्बर, 2008 के बाल विकास प्रोजेक्ट अधिकारी, हरिहरगंज, पलामू द्वारा पारित आदेश को अभिखंडित और अपास्त कर दिया गया था क्योंकि कोई नोटिस दिए बिना और याची को सुनवाई का अवसर दिए बिना याची की सेवाएँ समाप्त कर दी गयी थी।

5. अब मुश्किल यह है कि उप-कमिश्नर पलामू द्वारा दिनांक 26 दिसम्बर, 2008 को पारित एक आदेश था और तद्द्वारा बाल विकास प्रोजेक्ट अधिकारी, हरिहरगंज पलामू को निर्देश दिया गया था जिन्होंने दिनांक 30 दिसम्बर, 2008 का पारिणामिक आदेश पारित किया था और इसलिए, उप-कमिश्नर, पलामू द्वारा पारित आदेश भी अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है क्योंकि इसे भी कोई नोटिस दिए बिना और याची को सुनवाई का अवसर दिए बिना पारित किया गया था। इसे याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अंशत: अनजाने में और अंशत: तथ्य एवं विधि की गलत समझदारी के कारण इंगित नहीं किया गया था। फिर भी, यह तथ्य बना रहता है कि दिनांक 26 दिसम्बर, 2008 को उप-कमिश्नर, पलामू द्वारा पारित आदेश (परिशिष्ट-16) पारिणामिक आदेश का आधार था जिसे इस न्यायालय को अभिखंडित करना था और इसलिए मैं डब्ल्यू० पी० (एस०) सं० 192 वर्ष 2009 की मूल याचिका के परिशिष्ट-16 पर दिनांक 26 दिसम्बर, 2008 के उप-कमिश्नर, पलामू द्वारा पारित आदेश अभिखंडित और अपास्त करता हूँ।

6. यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और निपटायी जाती है और डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 192 वर्ष 2009 में दिनांक 12 मई, 2009 का आदेश पारित करते हुए इस न्यायालय द्वारा दिया गया निर्देश बना रहेगा जैसा यह है। इस न्यायालय के आदेश की प्रति की प्राप्ति की तिथि से 16 सप्ताह के भीतर प्रत्यर्थीगण द्वारा नया निर्णय लिया जाएगा। यह आदेश डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 192 वर्ष 2009 में पारित दिनांक 12 मई, 2009 के आदेश का अभिन्न अंग माना जाएगा।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

धीरेन्द्र कुमार सिंह उर्फ धीरेन्द्र सिंह

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. Rev. No. 1052 of 2009. Decided on 4th May, 2010.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 420/120B/409—लोक सेवक द्वारा छल, षडयन्त्र और न्यास का दांडिक भंग–उन्मोचन याचिका की अस्वीकृति–छात्रों को खाद्य वितरण में अभिकथित अनियमितता–याची के विरुद्ध प्रत्यक्ष अभिकथन नहीं किया गया और न ही उसने किसी अनियमितता से लाभ प्राप्त किया–किसी राशि अथवा गेहूँ के अभिकथित दुर्विनियोग अथवा गबन के साथ याची का संबंध इंगित करने में अभियोजन विफल रहा–अभिकथन प्रथम दृष्टया हेडमास्टर के विरुद्ध–इसके लिए याची (बी॰ डी॰ ओ॰) को जिम्मेदार अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है–आक्षेपित आदेश अपास्त–याची उन्मोचित। (पैरा 4)

अधिवक्तागण.–M/s Jai Prakash, Yogesh Modi, For the Petitioner; Mr. I. N. Gupta, For the State.

आदेश

वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण श्री ए॰ के॰ दूबे, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, राजमहल द्वारा पारित दिनांक 6.3.2009 के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध दाखिल किया गया है जिसके द्वारा बड़हरवा पी॰ एस॰ केस सं॰ 112 वर्ष 1998, तत्सम जी॰ आर॰ सं॰ 407 वर्ष 1998 में भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 420/120B/409 के अधीन अभिकथित अपराधों से उसके उन्मोचन के लिए याची की ओर से दाखिल याचिका खारिज कर दी गयी थी।

2. संक्षेप में अभियोजन का मामला यह है कि प्राथमिक विद्यालय, बड़हरवा के छात्रों को खाद्य वितरण के संबंध में गाँववालों द्वारा किए गए अभिकथन के बारे में जिला शिक्षा अधीक्षक, साहिबगंज ने प्रारंभिक जाँच की थी और पाया था कि बड़हरवा प्राथमिक विद्यालय के हेडमास्टर अभियुक्त वैद्यनाथ महतो ने प्रखंड से 9.06 क्विंटल गेहूँ प्राप्त किया था किन्तु छात्रों की 80% उपस्थिति के आधार पर केवल 4.05 क्विन्टल गेहूँ वितरित किया था और शेष 5.01 क्विंटल उसके द्वारा रख लिया गया था। सूचक ने अभिकथन किया कि 80% की सीमा तक उक्त विद्यालय में छात्रों की उपस्थिति का सत्यापन किए बिना उसने यह उपधारित करते हुए कि पोषक खाद्य की प्राप्ति के लिए 80% उपस्थिति की अपेक्षित मापदंड उन्होंने पूरा किया था, सभी छात्रों के लिए गेहूँ प्राप्त किया था। महतो द्वारा रखा गया स्टॉक रजिस्टर दर्शाता था कि उसने छात्रों के बीच इसके वितरण के लिए दिनांक 24.1.1997 को 4.05 क्विंटल गेहूँ उठाया था यद्यपि स्कूल रजिस्टर में दिनांक 6.11.1996 से 4.10.1997 तक एक दिन के लिए भी उसकी उपस्थिति चिन्हित नहीं की गयी थी। सूचक ने रिपोर्ट

में अभिकथन किया कि जून, 1996 में 172 छात्रों के लिए अनुशंसा की गयी थी जबकि केवल 136 छात्रों ने विद्यालय में अपेक्षित उपस्थिति पूरी की थी और दिनांक 7.12.1996 एवं दिनांक 14.12.1996 को गेहूँ को छात्रों को वितरित किया गया दर्शाया गया था, जबकि इस अवधि के दौरान उसे प्रखंड कार्यालय में तैनात/प्रतिनियुक्त किया गया था और इस तरीके से उसने खाद्य के वितरण में अनियमितता की थी और गैरकानूनी रूप से 5.01 क्विंटल गेहूँ का स्टॉक रख लिया था। सूचक की जाँच रिपोर्ट के आधार पर अभियुक्त वैद्यनाथ महतो, हेडमास्टर, प्राथमिक विद्यालय बड़हरवा (साहिबगंज) के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज की गयी थी। किंतु अन्वेषण के बाद अन्वेषण अधिकारी ने भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 420/120B/409 के अधीन अपराध के लिए वैद्यनाथ महतो, धीरेन्द्र कुमार सिंह (इसमें याची) और सुनन्दा नन्दी उर्फ सुनन्दा देवी के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया।

3. विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया कि मुख्य अभियुक्त अर्थात् तत्कालीन हेडमास्टर वैद्यनाथ महतो के विरुद्ध लगाए गए समस्त अभिकथन में याची की कोई भूमिका नहीं थी सिवाए इसके कि याची बी॰ डी॰ ओ॰ था जिसने उसे विगत दो वर्षों के लिए उक्त विद्यालय में प्रतिनियुक्त किया था जहाँ अभिकथित अनियमितता की गयी थी। वितरण के बाद अतिरिक्त बचे 5 क्विंटल गेहूँ को वापस करने का प्रस्ताव करके मुख्य अभियुक्त ने सद्भाव दर्शाया था किन्तु यह प्रस्ताव केवल एफ॰ सी॰ आई॰ के प्रबंधक को ज्ञात कारणों से अस्वीकार कर दिया गया था। संपूर्ण केस डायरी में कहीं भी यह अभिकथन नहीं किया गया था कि तत्कालीन हेडमास्टर द्वारा की गयी अनियमितता से याची ने लाभ उठाया था और विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी ने इस पहलू का अधिमूल्यन किए बिना याची के उन्मोचन के लिए याचिका खारिज कर दिया था यद्यपि उसके विरुद्ध कोई अभिकथन नहीं था। समस्थित सह अभियुक्त सुनन्दा नन्दी को दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 478 वर्ष 2009 में दिनांक 30.10.2009 को इस न्यायालय के आदेश द्वारा उसके दांडिक दायित्व से विमुक्त कर दिया गया था जो कुछ समय के लिए प्रभारी हेडमास्टर था, जबकि याची का बचाव बेहतर आधार पर है। भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 420/120B/409 को आकृष्ट करने के लिए याची ने न तो दुर्विनियोग न ही गबन और न ही छल किया था।

4. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आक्षेपित आदेश और इस न्यायालय द्वारा दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 478 वर्ष 2009 में दिनांक 30.10.2009 के आदेश (परिशिष्ट-2) का परिशीलन करने पर, मैं पाता हूँ कि याची के विरुद्ध कोई प्रत्यक्ष अभिकथन नहीं किया गया है या यह कि वह तत्कालीन हेडमास्टर वैद्यनाथ महतो द्वारा की गयी अनियमितता से किसी प्रकार लाभान्वित हुआ है सिवाय इसके कि सद्भाव में याची की प्रेरणा पर उसे प्रतिनियुक्त किया गया था जो प्रासंगिक समय पर बी॰ डी॰ ओ॰ था। मैं आगे पाता हूँ कि किसी राशि अथवा गेहूँ के अभिकथित दुर्विनियोग अथवा गबन के साथ याची का संबंध इंगित करने में अभियोजन विफल रहा। कतिपय अवैधता के लिए अभिकथन प्रथम दृष्टया हेडमास्टर के विरुद्ध था और इसके लिए याची, जो बी॰ डी॰ ओ॰ था, को जिम्मेदार नहीं अभिनिर्धारित किया जा सकता है। मैं इस दांडिक पुनरीक्षण में गुणागुण पाता हूँ, तद्नुसार इसे अनुज्ञात किया जाता है और बड़हरवा पी॰ एस॰ केस सं॰ 112 वर्ष 1998, तत्सम जी॰ आर॰ सं॰ 407 वर्ष 1999, में श्री ए॰ के॰ दूबे, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, राजमहल द्वारा दर्ज दिनांक 6.3.2009 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है। याची धीरेन्द्र कुमार सिंह उर्फ धीरेन्द्र कुमार को उसके दांडिक दायित्व से उन्मोचित किया जाता है।

माननीय प्रशान्त कुमार, न्यायमूर्ति

मिथलेश महतो एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (SJ) No. 845 of 2002. Decided on 1st April, 2010.

एस॰ टी॰ सं॰ 118 वर्ष 1993 में श्री अरुण कुमार दत्ता, चतुर्थ अपर सत्र न्यायाधीश, बेरमो, तेनुघाट द्वारा पारित दिनांक 4.12.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 148, 323 एवं 307—हत्या का प्रयास–दोषसिद्धि एवं दण्डाधिश–बम द्वारा हमला–अपीलार्थी के साथ सूचक की पुरानी दुश्मनी–चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा अभियोजन का मामला सम्पूष्ट नहीं हुआ–न्यायालय एकमात्र गवाह के परिसाक्ष्य पर अभियुक्त को दोषसिद्ध कर सकता है परन्तु यह कि उसका साक्ष्य पूर्णतः सत्य हो–सूचक का साक्ष्य दोष और संदेह से मुक्त नहीं है और यह दोषसिद्धि का एकमात्र आधार नहीं बन सकता है–आइ॰ ओ॰ का परीक्षण नहीं किया गया–किसी स्वतंत्र सम्पूष्टि की अनुपस्थिति में, केवल सूचक के साक्ष्य के आधार पर, अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि न्यायोचित नहीं है–दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैरा 8 से 11)

अधिवक्तागण.–Mr. Atanu Banerjee, For the Appellants; Mr. Md. Azimudin, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील एस॰ टी॰ सं॰ 118 वर्ष 1993 में चतुर्थ अपर सत्र न्यायाधीश, बेरमो, तेनूघाट द्वारा पारित दिनांक 4.12.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध है जिसके द्वारा और जिसके अधीन अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 148, 323 और 307 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 148 और 323 के अधीन प्रत्येक अपराधों के लिए एक वर्ष प्रत्येक के लिए कठोर कारावास भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307 के अधीन अपराध के लिए सात वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंड दिया गया था।

2. प्राथमिकी के मुताबिक संक्षेप में अभियोजन का मामला यह है कि सूचक जयलाल महतो खेरा महतो, अकल महतो, भूलू महतो, केशव सिंह के साथ मकौली कोलियरी से अपने घर लौट रहा था। आगे अभिकथन किया गया है कि जब सूचक सांय लगभग 7 बजे गोठावर पहुँचा, अचानक 7-8 व्यक्ति आए और बम फेंका। आगे कथन किया गया है कि सूचक ने दांए हाथ पर उपहतियाँ पाया और गिर पड़ा। तत्पश्चात् पूर्वोक्त व्यक्तियों ने उसे लोहे की छड़ से बार-बार प्रहार किया। उसने आगे कथन किया कि कुछ अभियुक्तगण द्वारा चमकायी गयी टॉर्च की रोशनी में उसने सरजू सिंह, किट्टी सिंह, माथुर सिंह और मिथलेश महतो को पहचाना। उसने आगे कथन किया कि सरजू सिंह ने उसकी हत्या करने के लिए उकसाया। तब अभिकथन किया गया है कि पूर्वोक्त व्यक्तियों ने अकल महतो पर भी छड़ से प्रहार किया जिसके चलते उसने उपहतियाँ पायी। आगे कथन किया गया है कि हल्ला सुनने पर गाँव वाले आए और तब अभियुक्तगण भाग गए।

3. पूर्वोक्त बयान के आधार पर भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 147, 148, 149, 307, 323 और 341 के अधीन और विस्फोटक पदार्थ अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन भी नवाडीह पी॰ एस॰ केस सं॰ 29 वर्ष 1991 अपीलार्थीगण के विरुद्ध संस्थापित किया गया। यह प्रतीत होता है कि अन्वेषण के बाद पुलिस ने भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 147, 148, 149, 307, 323, 341 के अधीन अपीलार्थीगण के

विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया, किन्तु विस्फोटक पदार्थ अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन कोई आरोप पत्र दाखिल नहीं किया गया था। यह प्रतीत होता है कि तत्पश्चात् मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया क्योंकि भा० दं० सं० की धारा 307 के अधीन अपराध अनन्य रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारण योग्य था। तत्पश्चात् भा० दं० सं० की धाराएँ 147, 148, 149, 323, 324 और 342 के अधीन आरोपों को विरचित किया गया और अपीलार्थीगण को स्पष्ट किया गया जिसके प्रति उन्होंने निर्दोष होने का अभिवाक् किया और विचारण का दावा किया। तत्पश्चात् अभियोजन ने अपने मामले के समर्थन में छह गवाहों का परीक्षण किया था। अभियोजन की सुनवाई पूरी होने के बाद अपीलार्थीगण का बयान दं प्र० सं० की धारा 313 के अधीन अभिलिखित किया गया जिसमें उनका प्रतिवाद पूरे इंकार का है। वचाव पक्ष ने भी अपने मामले के समर्थन में एक गवाह का परीक्षण किया। यह प्रतीत होता है कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर विचार करने के बाद विद्वान अवर न्यायालय ने पूर्वोक्तानुसार अपीलार्थी को दोषसिद्ध एवं दंडित किया जिसके विरुद्ध वर्तमान अपील दाखिल की गयी है।

4. अवर न्यायालय के निर्णय का विरोध करते हुए अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि वर्तमान मामले में अ० सा० 2 जागेश्वर महतो का दावा कि उसने घटना को अपनी आँखों से देखा है, सही नहीं है। अत: उसका साक्ष्य स्वीकार नहीं किया जा सकता है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि अ० सा० 3 सोहन महतो ने अभियोजन के मामले का समर्थन नहीं किया है और कथन किया कि उसने अभियुक्तगण को पहचाना नहीं था। अ० सा० 1 अकल महतो ने भी अभियोजन के मामले का समर्थन नहीं किया। इस प्रकार समस्त मामला अ० सा० 4 जयलाल महतो (सूचक और घायल) के एकमात्र परिसाक्ष्य पर निर्भर करता है। यह निवेदन किया गया है कि जयलाल महतो द्वारा सुनाया गया घटना का तरीका चिकित्सीय साक्ष्य से समर्थित नहीं है। यह निवेदन किया गया है कि जयलाल महतो का अपीलार्थीगण मिथलेश महतो, सरजू सिंह और किट्टी सिंह के साथ खराब संबंध था। आगे निवेदन किया गया है कि अपीलार्थी ने स्वीकार किया है कि उसकी सह-ग्रामीणों से कोई दुश्मनी नहीं थी किन्तु इसके बावजूद अभियोजन के मामले के समर्थन में कोई आगे नहीं आया है। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि अ० सा० 4 का साक्ष्य पूर्णत: विश्वसनीय नहीं है, अत: उसका साक्ष्य इन अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि का आधार नहीं बन सकता है। अत: निवेदन किया गया है कि अपीलार्थीगण अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त होने के हकदार है।

5. विद्वान अपर पी० पी० ने निवेदन किया कि अ० सा० 4 ने कथन किया था कि उसपर अपीलार्थीगण द्वारा लोहे के छड़ से प्रहार किया गया था जिसके चलते उसने मस्तक और दांए हाथ पर उपहति प्राप्त किया। इस प्रकार, अवर न्यायालय ने उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों के लिए अपीलार्थीगण को सही दोषसिद्ध किया है। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि आक्षेपित निर्णय में इस न्यायालय का हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है।

6. निवेदन सुनने के बाद, मैंने मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है और सावधानीपूर्वक साक्ष्य का संवीक्षा किया है। जैसा ऊपर ध्यान में लिया गया है, वर्तमान मामले में, अभियोजन ने छह गवाहों का परीक्षण किया है। अ० सा० 1 अकलू महतो को पक्षद्रोही घोषित किया गया है क्योंकि उसने अभियोजन के मामले का समर्थन नहीं किया है। अ० सा० 2 जागेश्वर महतो ने कथन किया घटना की तिथि पर वह सांय लगभग 5.30 बजे अपने बाड़ी में खेती कर रहा था। उसने आगे अभिसाक्ष्य दिया कि उस समय उसने हल्ला सुना और अपनी बाड़ी के बाहर आया और देखा कि अपीलार्थीगण उसके बड़े भाई जयलाल महतो पर लोहे की छड़ और बम से प्रहार कर रहे थे। यह उल्लेखनीय है कि सूचक अ० सा० 4 ने अपने फर्दबयान और (अभिसाक्ष्यों में कथन किया था कि घटना सांय लगभग 7 बजे घोथवार में हुई थी जो उसके गाँव गूंगरडीह से आधा किलोमीटर पर स्थित है। अत: अ० सा० 2 का दावा कि उसने सांय 5.30 बजे अपनी बाड़ी से बाहर आने के बाद घटना देखा विश्वास पैदा नहीं करता है। प्रथमत: अ० सा० 2 द्वारा दिया गया घटना का समय सही नहीं है। अभियोजन मामले के अनुसार

घटना सायं 7.30 बजे घटित हुई थी। द्वितीयत: सायं लगभग 7 बजे घटना को आधा कि॰ मी॰ की दूरी से देखना संभव नहीं है। इसके अलावा, सूचक ने दावा किया कि उसने अपीलार्थीगण को टॉर्च की रोशनी में पहचाना। यह दर्शाता है कि घटना के समय घटना स्थल पर रोशनी नहीं थी। अत: अ॰ सा॰ 2 के लिए अपीलार्थीगण को आधा कि॰ मी॰ की दूरी से पहचानना संभव नहीं है। इस प्रकार, मैं पाता हूँ कि अ॰ सा॰ 2 विश्वसनीय गवाह नहीं है, अत: उसका साक्ष्य अस्वीकार किए जाने योग्य है।

7. अ॰ सा॰ 3 सोहन महतो ने कथन किया था कि घटना के समय उसने मकौली की ओर से आती विस्फोट की आवाज सुनी थी। उसने आगे अभिसाक्ष्य दिया कि वह घटनास्थल पर गया और जयलाल महतो को जमीन पर पड़ा पाया और 2-3 व्यक्ति घटना स्थल से भाग रहे थे। तब उसने अभिसाक्ष्य दिया कि वह उनलोगों को पहचान नहीं सका था। अत: अ॰ सा॰ 3 का साक्ष्य अभियोजन का सहायक नहीं है।

8. अ॰ सा॰ 4 जयलाल महतो मामले का सूचक और घायल है। यह उल्लेखनीय है कि वह अपीलार्थी मिथलेश महतो के साथ पुरानी दुश्मनी स्वीकार करता है। उसने यह भी स्वीकार किया कि घटना के पहले अपीलार्थीगण सरजू सिंह, किट्टी सिंह ने उसे धमकाया था। उक्त परिस्थितियों के अधीन उसके साक्ष्य का सावधानीपूर्वक संवीक्षा अपेक्षित है। अ॰ सा॰ 4 ने कथन किया कि जब वह मकौली कोलियरी से अपने घर लौट रहा था गोठवार, गूंगरडीह में अपीलार्थीगण 3-4 अनजान व्यक्तियों के साथ लोहे की छड़ से लैस होकर वहाँ आये और जमीन पर बम पटका। वह आगे कथन करता है कि बम की किरची से उसे कंधे में उपहति प्राप्त हुई। तत्पश्चात्, सरजू सिंह के उकसाने पर अपीलार्थीगण ने लोहे की छड़ से उस पर प्रहार किया जिसके चलते उसे कंधे, मस्तक और पीठ पर उपहतियाँ प्राप्त हुई। वह आगे कथन करता है कि अपीलार्थीगण ने घटना के दौरान अकल महतो पर भी प्रहार किया। इस संबंध में, यह उल्लिखित करना प्रासंगिक है कि इस मामले में अकल महतो का परीक्षण अ॰ सा॰ 1 के रूप में किया गया था। उसने पक्के तौर पर कथन किया कि उसे घटना की जानकारी नहीं थी। यह उल्लेखनीय है कि अभियोजन ने अभिलेख पर अ॰ सा॰ 4 (जयलाल महतो) का उपहति रिपोर्ट लाया है जिसे प्रदर्श-2 चिन्हित किया गया है। डॉक्टर ने अ॰ सा॰ 4 के शरीर पर निम्नलिखित उपहतियां पायी है:–

(i) दांयी बांह से कलाई तक खरोंच। उपहति की प्रकृति सरल है और जलते पदार्थ द्वारा कारित है।

(ii) स्काल्प के बीच 4 " x 1" x 1/2" का कटा जख्म। उपहति की प्रकृति सरल है और तेज धार वाले हथियार द्वारा कारित है।

अत: प्रदर्श-2 के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि डॉक्टर ने बम की किरची द्वारा कारित कोई उपहति और वह भी अ॰ सा॰ 4 के कंधे पर, नहीं पाया है। डॉक्टर ने ठोस और भोथरें पदार्थ अर्थात् लोहे की छड़ द्वारा कारित सूचक (अ॰ सा॰ 4) के मस्तक, कंधे और पीठ पर कोई उपहति नहीं पाया है। डॉक्टर ने पक्के तौर पर कथन किया है कि अ॰ सा॰ 4 के स्काल्प पर पायी गयी उपहति तेज धार वाले हथियार द्वारा कारित की गयी थी। अ॰ सा॰ 4 ने कथन नहीं किया है कि उस पर तेजधार वाले हथियार द्वारा प्रहार किया गया था। अत: अ॰ सा॰ 4 द्वारा कथन किया गया घटना का तरीका चिकित्सीय साक्ष्य से समर्थित नहीं है।

9. जैसा ऊपर ध्यान में लिया गया है, वर्तमान मामला अ॰ सा॰ 4 के एकमात्र परिसाक्ष्य पर निर्भर करता है। यह सुनिश्चित है कि न्यायालय एकमात्र गवाह के परिसाक्ष्य पर अभियुक्त को दोषसिद्ध कर सकता है परन्तु यह कि उसका साक्ष्य किसी कलंक अथवा संदेह से मुक्त और पूर्णत: सत्य तथा स्वीकार योग्य हो। समान रूप से यह भी सुनिश्चित है कि एकमात्र चश्मदीद गवाह का साक्ष्य ऐसे

सटीक गुणवत्ता का हो कि न्यायालय केवल उसके परिसाक्ष्य पर दोषसिद्धि आधारित करना सुरक्षित पाता हो। वर्तमान मामले में, जैसा ऊपर ध्यान में लिया गया है, यह स्वीकृत दशा है कि अ॰ सा॰ 4 का अपीलार्थीगण के साथ बिगड़ा संबंध था। यह भी ध्यान में लिया गया था कि अ॰ सा॰ 4 द्वारा कथित घटना का तरीका चिकित्सीय साक्ष्य से समर्थित नहीं होता है। उक्त परिस्थिति के अधीन यह नहीं कहा जा सकता है कि अ॰ सा॰ 4 का साक्ष्य किसी कलंक अथवा संदेह से मुक्त है। उक्त परिस्थिति के अधीन अ॰ सा॰ 4 का साक्ष्य दोषसिद्धि का एकमात्र आधार नहीं बन सकता है।

10. वर्तमान मामले में, आइ॰ ओ॰ का परीक्षण नहीं किया गया है। अ॰ सा॰ 4 ने कथन किया कि आइ॰ ओ॰ ने रक्त रंजित वस्त्रों को अभिग्रहित किया था और अभिग्रहण सूची अकल महतो और जागेश्वर महतो की उपस्थिति में तैयार की गयी थी। अत: आइ॰ ओ॰ के अपरीक्षण के कारण अभिग्रहण सूची और अभिग्रहित वस्तुएं न्यायालय में प्रस्तुत नहीं की गयी है। अत: अ॰ सा॰ 4 का बयान सत्यापित नहीं किया गया है कि उसका बयान सत्य परक है या नहीं। आरोप पत्र में, कॉलम-6 पर लखन महतो, बेनी महतो और भीम महतो तथ्य के गवाह के रूप में दर्शाए गए है किन्तु उनका परीक्षण नहीं किया गया है। अत: किसी स्वतंत्र सम्पोषण की अनुपस्थिति में, केवल अ॰ सा॰ 4 के साक्ष्य के आधार पर अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि न्यायोचित नहीं है। तद्नुसार, मैं अवर न्यायालय के आक्षेपित निर्णय में तात्विक अनियमितताएँ पाता हूँ।

11. परिणामस्वरूप, यह अपील अनुज्ञात की जाती है। दोषसिद्धि का आक्षेपित निर्णय और दंडादेश अपास्त किया जाता है। अपीलार्थीगण को उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थीगण जमानत पर है। तद्नुसार, उन्हें उनके जमानत पत्र के दायित्वों से उन्मोचित किया जाता है।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

सुरेन्द्र नन्द झा उर्फ सुरेन्द्र नाथ झा

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) No. 6226 of 2009. Decided on 21th April, 2010.

मोटर यान अधिनियम, 1988—धाराएँ 80 एवं 89 सह-पठित बिहार मोटर यान नियमावली, 1992 का नियम 111 (4)—परिसीमा अधिनियम, 1963—मोटर यान चलाने के अनुमति पाने के लिए आवेदन की अस्वीकृति–13 दिनों की परिसीमा के आधार पर ट्रांसपोर्ट अपील की अस्वीकृति–आवेदन की अस्वीकृति तथ्यों और विधि से असंबद्ध थी और नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का घोर में उल्लंघन था–इसके अलावा अपील दाखिल करने में 13 दिन का विलम्ब बीमारी के कारण हुआ था–विलम्ब माफ करने का यह युक्तियुक्त आधार है–विलम्ब माफ किया गया–अपील को गुणागुण पर निपटाना होगा। (पैरा 3 एवं 4)

अधिवक्तागण.–Mr. Anil Kumar Jha, For the Petitioner; J.C. to G.P.-I, For the Respondents.

आदेश

याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि ट्रान्सपोर्ट अपील सं॰ 3 वर्ष 2009 दाखिल करने में हुआ 13 दिन का विलम्ब राज्य परिवहन अपीलीय अधिकरण, झारखंड, राँची द्वारा माफ नहीं किया गया है और उन्होंने दिनांक 23 मार्च, 2009 के आदेश के तहत, जो याचिका के मेमों का परिशिष्ट-2 है, वर्तमान याची द्वारा दाखिल परिवहन अपील सं॰ 3 वर्ष 2009

अस्वीकार कर दिया है। याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि याची ने दिनांक 17 नवम्बर, 2008 को मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 80 के अधीन मोटर वाहन चलाने के लिए अनुमति प्राप्त करने के लिए आवेदन दिया था। उसका आवेदन राज्य परिवहन प्राधिकार, झारखंड, राँची द्वारा दिनांक 21 नवम्बर, 2008 को खारिज कर दिया गया था। उक्त खारिजी तथ्यों और विधि से असंबद्ध है और नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन में है और इसलिए मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 89 के अधीन ट्रान्सपोर्ट अपील सं॰ 3 वर्ष 2009 वर्तमान याची द्वारा दर्ज की गयी थी। अपील दाखिल करने के लिए परिसीमा की अवधि 30 दिन है किन्तु अपील 6 मार्च, 2009 को दाखिल किया गया था और जैसा कि आक्षेपित आदेश में कहा गया है, राज्य परिवहन प्राधिकार, झारखंड, राँची द्वारा पारित आदेश की प्रमाणित प्रतियाँ प्राप्त करने के बाद 13 दिन का विलम्ब हुआ है। यह तथ्य कि विलम्ब क्षमा आवेदन में बताया गया कारण, जो याची की बीमारी है, परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अधीन विलम्ब माफ करने का युक्तियुक्त कारण है, का अधिमूल्यन किए बिना विलम्ब माफ नहीं किया गया है। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि बिहार मोटर यान नियमावली, 1992 के नियम 111 (4) को देखते हुए, परन्तुक वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू किए जाने योग्य नहीं है क्योंकि याची का मामला मोटर वाहन चलाने के लिए अनुमति प्राप्त करने का है और इसलिए परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 29 (2) के मुताबिक विलम्ब माफ करने के लिए परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 4 से धारा 24 तक लागू करने योग्य है। राज्य परिवहन अपीलीय अधिकरण, झारखंड, राँची द्वारा मामले का यह पहलू अनदेखा कर दिया गया है और इसलिए विलम्ब माफ नहीं करने का दिनांक 23 मार्च, 2009 का आक्षेपित आदेश 13 दिन के विलम्ब को माफ करते हुए अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन भी किया गया है कि याची को सुनवाई का पर्याप्त अवसर दिए जाने के बाद अनुबंधित समय के भीतर गुणावगुण पर परिवहन अपील सं॰ 3 वर्ष 2009 को विनिश्चित करने का निर्देश राज्य परिवहन अपीलीय अधिकरण, झारखंड, राँची को दिया जाए।

2. मैंने प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुना है जिन्होंने निवेदन किया है कि याची विलम्ब का स्पष्टीकरण देने में विफल रहा है और इसलिए परिवहन अपील सं॰ 3 वर्ष 2009 दाखिल करने मे हुए विलम्ब की अवधि को माफ नहीं किया गया है। अपील दाखिल करने के लिए विधि के अधीन विहित अवधि तीस दिन है। राज्य परिवहन प्राधिकार, झारखंड, राँची ने मोटर वाहन चलाने के लिए अनुमति प्राप्त करने के लिए दिनांक 21 नवम्बर, 2008 को दिए गए आवेदन पर अस्वीकृति का आदेश पारित किया है और अपील अत्यन्त विलम्ब से दाखिल की गयी है; अतः राज्य परिवहन अपीलीय अधिकरण, झारखंड, राँची द्वारा विलम्ब माफ नहीं किया गया है। तेरह दिनों के विलम्ब को माफ करने के लिए दिए गए आवेदन को अस्वीकार करने में राज्य परिवहन अपीलीय अधिकरण, झारखंड, राँची ने कोई गलती नहीं की है और, इसलिए, वर्तमान याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

3. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखते हुए, मैं मुख्यतः निम्नलिखित तथ्यों और कारणों से राज्य परिवहन अपीलीय अधिकरण, झारखंड, राँची द्वारा पारित दिनांक 23 मार्च, 2009 के आदेश (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-2) एतद् द्वारा अभिखंडित और अपास्त करता हूँ:–

(i) यह प्रतीत होता है कि मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 80 के अधीन मोटर वाहन चलाने के लिए अनुमति प्राप्त करने के लिए वर्तमान याची ने दिनांक 17 नवम्बर, 2008 को आवेदन दिया था।

(ii) यह भी प्रतीत होता है कि याची द्वारा दाखिल पूर्वोक्त आवेदन को राज्य परिवहन प्राधिकार, झारखंड, राँची ने दिनांक 21 नवम्बर, 2008 को खारिज कर दिया था और याची का मत है कि यह खारिजी तथ्यों और विधि से असंबद्ध है और नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का घोर उल्लंघन में है और याची ने अपील करके उक्त आदेश को चुनौती दिया है।

(iii) आगे यह प्रतीत होता है कि मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 89 के अधीन याची ने राज्य परिवहन अपीलीय अधिकरण, झारखंड, राँची के समक्ष परिवहन अपील सं० 3 वर्ष 2009 दाखिल किया था।

(iv) यह प्रतीत होता है कि राज्य परिवहन प्राधिकार, झारखंड, राँची द्वारा पारित आदेश की प्रति प्राप्त करने के तीस दिन के भीतर अपील दाखिल किया जाना चाहिए था किन्तु अपील 6 मार्च, 2009 को दाखिल की गयी थी और राज्य परिवहन अपीलीय अधिकरण, झारखंड, राँची द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को देखने पर प्रतीत होता है कि केवल तेरह दिनों का विलम्ब हुआ था।

(v) वर्तमान याची (मूल अपीलार्थी) द्वारा दिए गए कारणों को देखने से यह प्रतीत होता है कि अपील दाखिल करने में बीमारी के कारण तेरह दिन का विलम्ब हुआ है। राज्य परिवहन अपीलीय अधिकरण, झारखंड, राँची को तेरह दिन का विलम्ब माफ कर देना चाहिए था। याची द्वारा दिया गया कारण विलम्ब की माफी के लिए युक्तियुक्त कारण है। यह प्रतीत होता है कि अपीलीय अधिकरण ने यांत्रिक रूप से, विवेक का इस्तेमाल किए बिना आदेश पारित किया है। अपील दाखिल करने में नागरिक द्वारा कारित तेरह दिन का विलम्ब और वह भी बीमारी के कारण अपीलीय अधिकरण द्वारा माफ कर दिया जाना चाहिए था। अपीलीय अधिकरण ने भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दांडिक मामलों के अनेक निर्णयों को निर्दिष्ट किया है जो उपयोगी और प्रासंगिक नहीं है। बिहार मोटर यान नियमावली, 1992 के नियम 111(4) सह-पठित परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 29 (2) के प्रावधानों को देखते हुए परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 4 से धारा 24 तक मोटर यान अधिनियम की धारा 89 के अधीन दाखिल परिवहन अपील पर लागू किए जाने योग्य है जब मोटर वाहन चलाने के लिए अनुमति प्राप्त करने के लिए दिया गया आवेदन राज्य परिवहन प्राधिकार, झारखंड, राँची द्वारा खारिज कर दिया गया है।

4. पूर्वोक्त तथ्यों और कारणों के समेकित प्रभाव के कारण मैं परिवहन अपील सं॰ 3 वर्ष 2009 दाखिल करने में हुआ विलम्ब को माफ करता हूँ और राज्य परिवहन अपीलीय अधिकरण, झारखंड, राँची को निर्देश देता हूँ कि वह परिवहन अपील सं॰ 3 वर्ष 2009 को उसके गुणागुण पर और परिशिष्ट-2 पर दिनांक 23 मार्च, 2009 के पूर्वोक्त आदेश से प्रभावित हुए बिना शीघ्रतापूर्वक जहाँ तक संभव और व्यवहारिक हो, 30 दिसम्बर, 2010 तक अथवा इसके पहले सुने और निपटाए।

5. यह याचिका एतद् द्वारा अनुज्ञात की जाती है और निपटायी जाती है।

माननीय ज्ञान सुधा मिश्रा, मुख्य न्यायाधीश एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य

बनाम

महेश्वर प्रसाद

L.P.A. No. 308 of 2000. Decided on 1st April, 2010.

लेटर्स पेटेन्ट के खंड-10 के अधीन एक अपील के मामले में।

सेवा विधि–सेवानिवृत्ति–जन्म तिथि–एकल न्यायाधीश द्वारा सेवानिवृत्ति का आदेश अपास्त–जब प्रबंधन के पास प्रबंधन द्वारा अनुज्ञात परिशुद्धि आदेश के विपरीत किसी कर्मचारी को सेवानिवृत्त करने का कोई कारण है, इस संबंध में कर्मचारी को नोटिस दिया जाना होगा–प्रबंधन इस बहाने पर किसी कर्मचारी को अचानक सेवानिवृत्त नहीं कर सकता है कि अनेक वर्षों पहले उसकी जन्मतिथि गलत रूप से परिशुद्ध की गयी थी–याची को कारण बताओ, और सुनवाई का अवसर दिए बिना अधिवर्षिता का आदेश पारित किया गया–अधिवर्षिता का आदेश अभिखंडित करने में एकल न्यायाधीश पूर्णतः न्यायोचित था–अपील खारिज।
(पैरा 7 से 10)

अधिवक्तागण.–Mr. A.K. Pandey, For the Appellants; Mr. Dhananjay Kr. Pathak, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) केस सं॰ 2179 वर्ष 2006 में पारित दिनांक 9.1.2009 के उस निर्णय और आदेश, जिसके द्वारा रिट याचिका अनुज्ञात की गयी थी, और प्रत्यर्थीगण द्वारा जारी रिट याचिका के परिशिष्ट-2 में अंतर्विष्ट दिनांक 11.10.2002 का आक्षेपित आदेश जिसके द्वारा याची को दिनांक 31.10.2000 के प्रभाव से सेवा से सेवानिवृत्त घोषित किया गया है, अभिखंडित और अपास्त कर दिया गया था, के विरुद्ध दाखिल की गयी है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने इसमें के प्रत्यर्थीगण-अपीलार्थीगण को उसकी जन्मतिथि 31.10.1942 मानते हुए याची के समस्त सेवानिवृत्ति देयों की निर्मुक्त करने का निर्देश दिया और दिनांक 1.10.2002 से 31.10.2002 तक की अवधि जो स्पष्टत: केवल एक माह की अवधि थी के लिए वेतन के बकाए का भुगतान करने का निर्देश भी दिया। आगे, इसमें के प्रत्यर्थीगण-अपीलार्थीगण को याची के सेवानिवृत्ति/पेंशन लाभों, जिसे वह दिनांक 31.10.2000 से 30.9.2002 तक पहले ही प्राप्त कर चुका था, को वसूल नहीं करने का निर्देश जारी किया गया था।

2. इस अपील को दाखिल किए जाने की ओर ले जाते प्रासंगिक तथ्य उपदर्शित करते हैं कि प्रत्यर्थी चतुर्थवर्गीय पद पर खलासी के रूप में दिनांक 19.9.1962 को अपीलार्थी-बिहार राज्य विद्युत बोर्ड (अब झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड) की सेवा में आया था और सेवा में उसके प्रवेश के समय उसकी जन्मतिथि 21.10.1940 दर्ज की गयी थी। इसमें का याची-प्रत्यर्थी अपनी जन्म तिथि के संबंध में प्रविष्टि से व्यथित था क्योंकि उसके अनुसार इसे गलत रूप से दर्ज किया गया था। अत: वह अपनी जन्मतिथि 19.10.1942 के रूप में सुधारे जाने के लिए संबंधित प्राधिकारी के पास गया और तत्पश्चात् उसने वर्ष मार्च, 1970 में मैट्रिक की परीक्षा भी उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् उसने 19.10.1942 अंतर्विष्ट करने वाले मैट्रिक प्रमाण पत्र पर विश्वास किया और सेवा अभिलेख में अपनी जन्मतिथि सुधारने के लिए नियंत्रक प्राधिकारी से प्रार्थना की। याची के अभ्यावेदन पर विचार करने और विस्तृत जाँच के बाद याची के नियंत्रक प्राधिकारी अर्थात् कार्यपालक अभियन्ता (सिविल) स्वर्ण रेखा निर्माण डिविजन सं॰ 1, सिकीदिरी, राँची ने याची का अभिवाक् स्वीकार किया और याची-प्रत्यर्थी के सेवा अभिलेख में उसकी जन्मतिथि दिनांक 20.10.1940 से दिनांक 20.10.1942 करने के सुधार के लिए निर्देश दिया।

यह आदेश प्राधिकारी द्वारा दिनांक 25.10.1978 को पारित किया गया था। अत: जब इस अवसर पर प्रत्यर्थी की जन्मतिथि की परिशुद्धि अनुज्ञात की गयी थी, उसके मैट्रिक प्रमाण पत्र पर अपीलार्थी-प्राधिकारी द्वारा सम्यक् रूप से विश्वास किया गया था जिसके आधार पर प्रत्यर्थी की आयु सुधारी गयी थी। तत्पश्चात् प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी-संगठन में अपने कर्तव्यों का निर्वहन जारी रखा किन्तु अपनी सेवानिवृत्ति के केवल 20 दिन पहले अपीलार्थी-प्राधिकारी द्वारा आपत्ति उठायी गयी कि वह अक्टूबर, 2002 तक सेवा में गलत रूप से बना रहा क्योंकि उसकी सेवानिवृत्ति तिथि दो वर्ष पहले अर्थात् वर्ष 2000 में होनी थी। यह आपत्ति इस आधार पर उठायी गयी थी कि प्रत्यर्थी को उसके मैट्रिक प्रमाण पत्र पर विश्वास करते हुए अपीलार्थी-प्राधिकारी द्वारा उसकी जन्मतिथि गलत रूप से परिशुद्ध करवाया था क्योंकि मैट्रिक प्रमाण पत्र प्रत्यर्थी के अपीलार्थी-विद्युत बोर्ड की सेवा में आने के बाद प्राप्त किया गया था।

3. इस आपत्ति की दृष्टि में, यह घोषित करते हुए कि प्रत्यर्थी दिनांक 31.10.2000, न कि दिनांक 31.10.2002 के प्रभाव के साथ सेवा से सेवानिवृत्त हुआ था, परिशिष्ट-2 के तहत दिनांक 11.10.2002 का आदेश जारी किया गया था। परिणामस्वरुप, उसकी वास्तविक सेवानिवृत्ति के दो वर्ष पहले उसकी सेवानिवृत्ति की तिथि को मानते हुए, तद्द्वारा यह अर्थ लगाते हुए कि अपीलार्थीगण के अनुसार प्रत्यर्थी को सेवा से दिनांक 31.10.2000 को ही सेवानिवृत्त हो जाना चाहिए था किन्तु वह गलत रूप से दिनांक 31.10.2002 तक सेवा में बना रहा, प्रत्यर्थी के सेवानिवृत्ति देयों और बकाया वेतन तुरन्त निर्मुक्त करने का निर्देश अपीलार्थी-प्राधिकारी को जारी किया गया था। इन आधारों पर, उसके विरुद्ध प्रत्यर्थी के वेतन की वसूली का आदेश भी पारित किया गया था और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उसे दो वर्ष पहले ही सेवानिवृत्त अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए था अर्थात सेवानिवृत्ति आदेश को भूतलक्षी प्रभाव से प्रभावकारी बनाया जाना था।

4. स्पष्टत: प्रत्यर्थी अपीलार्थी-प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश से व्यथित हुआ जिसने उसे विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष रिट याचिका दाखिल करने के लिए प्रेरित किया।

5. विद्वान एकल न्यायाधीश ने दोनों पक्षों के दस्तावेजों की विस्तृत संवीक्षा करने के बाद अंतत: अभिनिर्धारित किया था कि अपीलार्थी-प्राधिकारी जिसने प्रत्यर्थी की जन्मतिथि की परिशुद्धि का निर्देश दिया था, जो 24 वर्ष पहले किया गया था, को अपीलार्थी-प्राधिकारी की प्रेरणा पर चुनौती देना अनुज्ञात नहीं करना चाहिए था और वह भी उसे कारण बताओ नोटिस जारी किए बिना क्योंकि यह स्पष्टत: नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के विरुद्ध था और इसलिए भी कि भूतलक्षी प्रभाव से उसकी सेवानिवृत्ति तिथि के प्रस्तावित पुनरीक्षण के संबंध में स्पष्टीकरण देने का अवसर भी याची को नहीं दिया गया था। अत: विद्वान एकल न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि इसमें का प्रत्यर्थी-अपीलार्थी बाद में किसी राशि, जिसे प्रत्यर्थी ने वेतन के रूप में प्राप्त किया था, की वसूली नहीं कर सकता था।

जैसा ऊपर कहा गया है कि वेतन, जिसे याची पहले ही पा चुका था, की वसूली नहीं करने का निर्देश प्रत्यर्थी-अपीलार्थी को देते हुए रिट याचिका अनुज्ञात की गयी थी।

6. किन्तु विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश से अपीलार्थी-झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड व्यथित था और इसने लेटर्स पेटेन्ट अपील दाखिल करके इसका विरोध किया था। इस तरह यह मामला सूचीबद्ध किया गया और हमारे द्वारा सुना गया।

7. अपीलार्थी-झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड के अधिवक्ता ने इस न्यायालय को प्रभावित करने का कठिन प्रयास किया है कि याची-प्रत्यर्थी को अधिवर्षिता करते हुए आदेश पूर्णत: न्यायोचित था क्योंकि प्रत्यर्थी ने मैट्रिक परीक्षा में उत्तीर्ण होने के आठ साल बाद अपनी जन्मतिथि की परिशुद्धि ईप्सित की थी। किन्तु ऐसा प्रतिवाद करते हुए अधिवक्ता यह विस्मरण करते प्रतीत होते हैं कि स्वयं अपीलार्थी-बोर्ड ने कम से कम 24 वर्ष पहले प्रत्यर्थी की जन्मतिथि को दो वर्षों के लिए परिशुद्ध किए जाने की अनुमति दी थी जिसे शायद प्रासंगिक समय पर प्राधिकारी द्वारा अनुज्ञात नहीं किया जा सकता था। अपीलार्थी इस बिन्दु को भी मिस करते हैं कि यद्यपि मैट्रिक प्रमाण पत्र को सेवा में प्रवेश के समय ही, न कि बाद में, संबंधित व्यक्ति की आयु के समर्थन में निश्चयात्मक प्रमाण के रूप में माना जा सकता है, फिर भी यदि इस आधार पर सेवा पुस्तिका में दर्ज जन्म तिथि की परिशुद्धि 24 वर्ष पहले अनुज्ञात की गयी थी और इतने वर्षों तक अपीलार्थी-प्रबंधन द्वारा यह परिशुद्धि आदेश स्वीकार किया गया था, स्पष्टत: इसे पलट कर यह कहने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि परिशुद्धि का आवेदन, जिसे 24 वर्ष पहले अनुज्ञात किया गया था, प्रबंधन की ओर से की गयी गलती थी। यदि मैट्रिक प्रमाण पत्र के आधार पर 24 वर्ष पहले उसकी जन्मतिथि की परिशुद्धि के लिए कर्मचारी का अभिवाक् बोर्ड के प्रबंधन ने पहले ही स्वीकार कर लिया था, कर्मचारी की अधिवर्षिता की तिथि के 20 दिन पहले पारित एक अन्य आदेश द्वारा इसे अतिष्ठित किया जाना अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है।

8. इस न्यायालय ने पहले ही अभिनिर्धारित किया है कि जब एक कर्मचारी अपनी अधिवर्षिता की तिथि के छोटी समयावधि के भीतर अपनी जन्मतिथि की परिशुद्धि के लिए न्यायालय के पास आता है, इसे सर्वोच्च न्यायालय का दृष्टिकोण अपनाते हुए सामान्यत: प्रदान नहीं किया जाता है कि सेवानिवृत्ति के कगार पर इप्सित कोई परिशुद्धि अधिवर्षिता की तिथि से बचने के लिए चाल के रूप में मानी जाएगी और सेवा अवधि बढ़वाये जाने का बाद में आया विचार माना जाएगा। इसी प्रकार, जब अपीलार्थी-प्रबंधन के पास प्रबंधन द्वारा अनुज्ञात परिशुद्धि आदेश के विपरीत किसी कर्मचारी को सेवानिवृत्त/अधिवर्षित करने का कोई कारण है तो स्पष्टत: सेवानिवृत्ति की तिथि के काफी पहले इस संबंध में कर्मचारी को प्रथमत: नोटिस दिया जाना होगा और प्रबंधन को किसी भी दिन इस बहाने पर किसी व्यक्ति को अचानक अधिवर्षित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि उसकी जन्मतिथि काफी वर्ष पहले गलत रूप से सुधारी गयी थी और वह भी सुनवाई का अवसर दिए बिना। वर्तमान मामले में, बहाना यह है कि प्रत्यर्थी ने मैट्रिक परीक्षा में उत्तीर्ण होने के आठ साल बाद अपनी जन्मतिथि में परिशुद्धि ईप्सित की थी। वस्तुत: यदि यह परिशुद्धि अनुज्ञात नहीं करने का वैध कारण था, प्रबंधन से अपेक्षा की जाती थी कि वह समुचित समय पर परिशुद्धि के संबंध में आपत्ति उठाए किन्तु प्रबंधन ने न केवल परिशुद्धि अनुज्ञात की बल्कि इसके पारित करने के 24 वर्षों तक परिशुद्धि का आदेश वापस नहीं लेकर स्थिति के साथ उपमत भी हुआ। इसके अतिरिक्त, अधिवर्षिता का आदेश याची को कारण बताओ और सुनवाई का अवसर दिए बिना पारित किया गया था।

9. इस स्थिति की दृष्टि में और प्रचलित परिस्थितियों के अधीन, विद्वान एकल न्यायाधीश प्रत्यर्थी के भूतलक्षी प्रभाव से अधिवर्षिता का आदेश अभिखंडित करने में पूर्णत: न्यायोचित थे और इस अभिवाक् पर कि वह दिनांक 30.10.2000 की अवधि के परे सेवा में बने रहने योग्य नहीं था, दो वर्षों की अवधि के लिए याची-प्रत्यर्थी के वेतन, जिसे उसने कर्तव्यों का सम्यक् रूप से निर्वहन करते हुए प्राप्त किया था, की वसूली नहीं करने के लिए अपीलार्थीगण को निर्देश देने में भी सही थे। याची की अधिवर्षिता की तिथि दिनांक 31.10.2000 केवल तब ही सही होती यदि प्रबंधन ने उसकी जन्म

तिथि को परिशुद्ध करने से इंकार कर दिया होता, जो इसने 24 वर्ष पहले अनुज्ञात किया था, जैसा कि वर्तमान मामला नहीं है जैसा यहाँ पहले उपदर्शित किया जा चुका है।

10. अतः विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। परिणामस्वरूप, अपील खारिज की जाती है किन्तु, इन परिस्थितियों में व्यय के आदेश के बिना।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

रामकांत दूबे उर्फ रमा कान्त दूबे एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य, सी॰ बी॰ आई॰ के माध्यम से

Cri. Revision No. 540 of 2006. Decided on 6th May, 2010.

दांडिक अपील सं॰ 5 वर्ष 1999 में श्री प्रदीप कुमार चौबे, अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ सं॰ 4, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 17.6.2006 के निर्णय के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 120B, 420 एवं 471—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 313—कूटरचित एवं मनगढ़ंत नियुक्ति पत्रों के आधार पर नियुक्ति प्राप्त करना–दोषसिद्धि और दंडादेश–दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 का अभिकथित उल्लंघन–अभियोजन ने याचीगण से समुचित और आवश्यक प्रश्न पूछा है–धारा 313 दं॰ प्र॰ सं॰ का पूर्ण अनुपालन किया गया है–याचीगण इंगित नहीं कर सके हैं कि धारा 313 दं॰ प्र॰ सं॰ के अधीन उनके परीक्षण के तरीके से उन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है–आक्षेपित निर्णय में कोई दुर्बलता नहीं–दोषसिद्धि सम्पूष्ट–किन्तु मामला 25 वर्ष पहले दर्ज किया गया था–पहले ही भुगत ली गयी अवधि तक सजा घटायी गयी और 3000/-रुपये का जुर्माना अभिनिर्णीत किया गया।
(पैरा 12 से 16)

निर्णयज विधि.–(2004) 7 SCC 502; (2009) 4 SCC 200—Relied on; 2005 (1) Eastern Cr. Cases 185 (SC)—Distinguished.

अधिवक्तागण.–M/s Babban Lal, Ashok Kumar Sinha, For the Petitioners; Mr. Rajesh Kumar, For the C.B.I.

जया रॉय, न्यायमूर्ति.–याचीगण ने वर्तमान पुनरीक्षण याचिका दांडिक अपील सं॰ 5 वर्ष 1999 में श्री प्रदीप चौबे, अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक न्यायालय सं॰ IV, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 17.6.2006 के निर्णय जिसके द्वारा याचीगण द्वारा दाखिल अपील खारिज कर दी गयी है और आर॰ सी॰ केस सं॰ 3 और 9 वर्ष 1984 (टी॰ आर॰ सं॰ 4/98) में मंजूर हसन, विद्वान विशेष न्यायिक दंडाधिकारी (सी॰ बी॰ आइ॰) धनबाद द्वारा पारित 21.12.98 के निर्णय को मान्य ठहराया गया है, के विरुद्ध दाखिल किया है। उक्त निर्णय द्वारा विद्वान विशेष न्यायिक दंडाधिकारी ने याचीगण को दोषसिद्ध किया है और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 120 (B) के अधीन अपराधों के लिए प्रत्येक को एक वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंड दिया है। आगे उन्हें भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 471 के अधीन अपराधों के लिए प्रत्येक को एक वर्ष का कठोर कारावास भुगतने और 500/-रुपया जुर्माना भरने, जुर्माना भरने के

व्यतिक्रम में, एक माह का कठोर कारावास भुगतने का दंड दिया है। आगे उन्हें भा० दं० सं० की धारा 420 के अधीन अपराध के लिए प्रत्येक को एक वर्ष का कठोर कारावास भुगतने और 500/- रुपया जुर्माना भरने, जुर्माना भरने के व्यतिक्रम में, एक माह का कठोर कारावास भुगतने का दंड दिया है। सभी दंडों को साथ-साथ चलने का निर्देश दिया गया है।

2. संक्षेप में, अभियोजन का मामला यह है कि दिनांक 30.1.1984 को आरक्षी उप-अधीक्षक, विशेष/सी० बी० आई० धनबाद ने आठ अभियुक्तगण अर्थात् श्री इन्द्रजीत सिंह, श्री के० के० दास, श्री हनुमान सिंह, श्री बी० एन० सिंह, मो० मोतिमा, श्री रामजीत श्रीवास्तव (सभी भूमिगत लोडर हैं), श्री एस० पांड्या, प्रोजेक्ट अधिकारी और श्री आर० के० अरोड़ा के विरुद्ध इस अभिकथन के साथ प्राथमिकी दर्ज किया कि उन्हें विश्वसनीय सूचना प्राप्त हुई कि अभियुक्त सं० 1 से 6 ने अभियुक्त सं० 7 और 8 के साथ दांडिक षडयन्त्र रचते हुए कूटरचित और मनगढ़ंत नियुक्ति पत्रों के आधार पर भूमिगत लोडर के रूप में अपनी नियुक्ति के लिए तिकड़म किया और अपने कुकर्मों को छुपाने के लिए और अपनी नियुक्ति को वास्तविक (Genuine) दर्शाने के लिए गैर-कानूनी दस्तावेजों को संलग्न किया। अभियोजन का आगे मामला यह था कि सं० जी० एम०/ए० आर० II/नियुक्ति/81/6472 दिनांक 17.11.81 वाला कूटरचित नियुक्ति पत्र जिसे तात्पर्यित रूप से तत्कालीन महाप्रबंधक क्षेत्र-II, श्री एस० के० सिन्हा द्वारा हस्ताक्षरित किया गया है, को अभिलेखों पर छल साधित किया गया है। अभियोजन का आगे मामला यह था कि अपने कुकर्मों को छुपाने के लिए अभियुक्तगण ने पुन: अभियुक्त सं० 1 से 6 को उसकी पदस्थापना के आरंभिक स्थान अर्थात् भुरुन्गिया प्रोजेक्ट से शिफ्ट कराने के लिए छल साधना की। यह अभिकथन किया गया है कि उन्होंने अभियुक्त सं० 1 से 6 की ओर से मई, 1981 अर्थात् अभिकथित कूटरचित नियुक्ति पत्रों के काफी पहले दिए गए अभ्यावेदन में छल साधित किया। उन्होंने अभियुक्त सं० 7 द्वारा दिनांक 25.5.81 को अपने हस्ताक्षर के अधीन अपनी अनुशंसा जो श्री एस० के० बनर्जी, कार्मिक प्रबंधक, कार्मिक भवन, बी० सी० सी० एल० धनबाद द्वारा सम्यक् रूप से हस्ताक्षरित कार्यालय आदेश सं० बी० सी० सी० एल०-पी० ए० आइ०/00/81/4831742 दिनांक 26/27.11.81 के तहत अंतरिती पत्र जारी करने का आधार बना, के साथ अग्रसारित उनके अभ्यावेदन याचिका पर कूटरचित पत्र का तिकड़म किया। अभियोजन का आगे मामला यह था कि उक्त षडयन्त्र में अभियुक्त सं० 8 श्री आर० के० अरोड़ा की अंतर्ग्रस्तता इस तथ्य से पूरी तरह स्पष्ट है कि यद्यपि जी० एम० क्षेत्र-II द्वारा सम्यक् रूप से भेजा गया कोई नियुक्ति पत्र कभी भी भूरूंगिया प्रोजेक्ट में प्राप्त नहीं किया गया था, फिर भी उक्त श्री अरोड़ा ने न केवल अभियुक्त सं० 1-6 को पदग्रहण करने की अनुमति दी बल्कि अभियुक्त सं० 1-6 के पक्ष में निर्मुक्ति आदेश भी जारी किया। पूर्वोक्त आधार पर पूर्वोक्त आठ व्यक्तियों के विरुद्ध आर० सी० केस सं० 3 वर्ष 1984 के तहत भा० दं० सं० की धाराएँ 420, 467, 468, 471 सह-पठित धारा 120B के अधीन प्राथमिकी दर्ज की गयी।

3. एक अन्य प्राथमिकी आर० सी० केस सं० 9/84 दिनांक 9.5.84 को पुन: श्री ए० के अस्थाना, सी० बी० आइ० इन्सपेक्टर, धनबाद द्वारा धारा 120B सह-पठित भा० दं० सं० की धाराएँ 420, 467, 468 और 471 के अधीन श्री रमाकान्त दूबे, हैदरअली, श्री मदन लाल शर्मा, श्री भूषण सिंह (सारे भूमिगत लोडर हैं), श्री एस० पांड्या, प्रोजेक्ट अधिकारी, श्री आर० के० अरोड़ा के विरुद्ध दाखिल की गयी है और उक्त प्राथमिकी में यह कथन किया गया था कि अभियुक्त सं० 1-4 ने अभियुक्त सं० 5 और 6 के साथ दांडिक षड्यन्त्र किया और तद्द्वारा तात्यपर्यित रूप से श्री एस० के० सिंह, तत्कालीन महाप्रबंधक क्षेत्र-II बी० सी० सी० एल० के हस्ताक्षर के अधीन जारी नकली और कूटरचित नियुक्ति पत्रों के आधार पर रोजगार पाया और दिनांक 18.12.81 को भूरून्गिया प्रोजेक्ट में पदग्रहण किया। आगे अभिकथन किया गया था कि कर्तव्य भार संभालने के काफी पहले अभियुक्त सं० 1-4 ने भूरून्गिया प्रोजेक्ट से क्षेत्र-IV के किसी अन्य कोलियरी में अपने स्थानान्तरण के लिए दिनांक 15.6.81 को अभ्यावेदन प्रस्तुत किया था और उक्त अभ्यावेदन अभियुक्त सं० 5 और 6 के पूरी जानकारी में थी कि मई 1981 में अभियुक्तगण बी० सी० सी० एल० के कर्मचारी नहीं थे, अनुशंसित किया था और अभियुक्त सं० 5 और 6 ने अभियुक्त सं० 1 से 4 के पक्ष में निर्मुक्ति आदेश जारी किया था।

4. दोनों प्राथमिकियों को मिला दिया गया है और अन्वेषण के बाद श्री अस्थाना ने याचीगण सहित समस्त व्यक्तियों के विरुद्ध धारा 120B सह-पठित भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 467, 468, 471, 420 के अधीन आरोप पत्र दाखिल किया।

5. अभियोजन ने 18 गवाहों का परीक्षण किया और अनेक दस्तावेजों को प्रस्तुत किया जिन्हें प्रदर्श 1 से 38 के तौर पर चिन्हित किया गया है। विचारण न्यायालय समस्त मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर आया कि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 120B के अधीन याचीगण को दोषसिद्ध करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य है। आगे उन्हें भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 471 के अधीन सिद्ध अपराध के लिए प्रत्येक को एक वर्ष का कठोर कारावास भुगतने और 500/- (पाँच सौ) रुपये का जुर्माना भरने का दंड दिया। जुर्माना भरने के व्यतिक्रम में उनमें से प्रत्येक को एक माह का कठोर कारावास भुगतना होगा। आगे उन्हें भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 420 के अधीन सिद्ध अपराध के लिए प्रत्येक को एक वर्ष का कठोर कारावास भुगतने और 500/- (पाँच सौ) रुपया का जुर्माना भरने का दंड दिया। जुर्माना भरने के व्यतिक्रम में उनमें से प्रत्येक को एक माह का कठोर कारावास भुगतना होगा। समस्त दंडों को साथ-साथ चलने का निर्देश दिया गया था।

6. पूर्वोक्त दोषसिद्धि और दंडादेश के विरुद्ध याचीगण ने दांडिक अपील सं॰ 5 वर्ष 1999, दाखिल किया। पक्षों को सुनने के बाद उक्त अपील श्री प्रदीप कुमार चौबे, अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक न्यायालय सं॰ -IV धनबाद द्वारा खारिज कर दी गई।

7. अपीलीय न्यायालय के अनुसार अभियोजन ने निम्नलिखित तथ्य स्थापित किया है:–

(i) महाप्रबंधक एस० के० सिन्हा और कार्मिक प्रबंधक के० डी० शुक्ला ने नियुक्ति पत्र पर अपने हस्ताक्षर से इंकार किया है।

(ii) अ० सा० 9 के साक्ष्य के मुताबिक एस० के० सिन्हा का हस्ताक्षर उसके विवादित हस्ताक्षर से मेल नहीं खाता है।

(iii) अ० सा० 9 के साक्ष्य के मुताबिक दिनांक 16.11.81 से दिनांक 18.11.81 तक के तीन अभिकथित नियुक्ति पत्र पर अपीलार्थीगण का हस्ताक्षर उनके स्वीकृत हस्ताक्षर के साथ वास्तविक पाया गया।

(iv) पूर्वोक्त व्यक्तियों का स्नानांतरण पत्र मई 1981 का था यद्यपि अभिकथित नियुक्ति पत्र नवम्बर, 1981 का था।

(v) साक्ष्य से स्पष्टतः स्थापित है कि B फॉर्म रजिस्टर में पूर्वोक्त व्यक्तियों का नाम वर्ष 1982 के बाद प्रविष्ट किया गया था।

(vi) इसी प्रकार, बोनस रजिस्टर में पूर्वोक्त व्यक्तियों का नाम भी गैर ईमानदार रूप से और कपटपूर्वक पाया और रखा गया था क्योंकि अ० सा० 5 ने बोनस क्लर्क होने के नाते स्पष्टतः कथन किया है कि उसने उनका नाम पृष्ठ 91 से 103 तक पर नहीं लिखा है।

(vii) अपीलार्थी सं० 16 ने समस्त पूर्वोक्त व्यक्तियों को पहचाना और अग्रसारित किया है। पुटकी बलहारी प्रोजेक्ट का कार्मिक प्रबंधक होने के नाते उसने सारे व्यक्तियों का परिचय कराया है और उनके फोटो को पहचाना है जब उन्होंने अपनी स्थानान्तरण याचिका अ० सा० 1 को दी थी।

(viii) अ० सा० 4 सुधाकर पांडे ने कथन किया है कि तात्पर्यित रूप से उसके द्वारा हस्ताक्षरित स्थानांतरण के लिए आवेदन उसके लेखाकार आइ० आर० के० राव द्वारा अनुशंसित और अग्रसारित किया गया है।

(ix) साक्षीयों के साक्ष्य का सम्पोषण कूट रचित हस्ताक्षर के सम्बन्ध में विशेषज्ञ के साक्ष्य द्वारा पूर्ण रूप से हुआ है।

8. याचीगण के अधिवक्ता ने पूरक शपथ पत्र दाखिल किया है जिसमें उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों को उद्‌धृत किया है जिन पर वह अपने प्रतिवाद के समर्थन में विश्वास करते हैं।

(1) 2009 (2) East Cr. C-318 (SC)

(2) 2009 (4) SCC Page 200

(3) 2003 (2) SCC Page 401

(4) 2009 (3) East. Cr. C. Page 536 (Jhar.)

(5) 2001 Cr. L.J-4656

(6) 2005 (1) East Cr. C. 185 (SC)

9. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री बबन लाल ने मुख्यत: दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन याचीगण के परीक्षण के बिन्दु पर तर्क किया। उनके अनुसार, वर्तमान मामले में, धारा 313 द॰ प्र॰ सं॰ के प्रावधानों के अनुपालन का पूर्ण उल्लंघन हुआ है जैसा कि पूरक शपथ पत्र में कथन किया गया है कि इसने याचीगण पर प्रतिकूल प्रभाव कारित किया है जिसका परिणाम न्याय की हानि में हुआ है। आगे, विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, अवर न्यायालय द्वारा अभियुक्तगण में से एक बिनोद कुमार सिंह की दोषमुक्ति और दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 5435 वर्ष 2006 में दिनांक 17.2.2009 के आदेश के तहत इस माननीय न्यायालय द्वारा एक अन्य सह-अभियुक्त सोभन राम की दोषमुक्ति याचीगण को भी दोषमुक्त होने का हकदार बनाती है क्योंकि उन दोनों को भी भारतीय दंड संहिता की धारा 120B के अधीन आरोपित किया गया था। अत: याचीगण भी समान लाभ के हकदार हैं। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार 2005 (1) Eastern Cr. Cases-185 (S.C.) में प्रकाशित मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि यदि न्यायालय द्वारा सह-अभियुक्तगण को उन्मोचित किया जाता है, षडयन्त्र का सार समाप्त हो जाता है और किसी अन्य साक्ष्य द्वारा अभियुक्त की सह-अपराधिता सिद्ध नहीं होती है। अत: भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 120B के अधीन याचीगण आरोप से दोषमुक्त किए जाने योग्य है और इसके परिणामस्वरूप वर्तमान याचीगण के विरुद्ध धारा 468/471 और 420 के अधीन दोषसिद्धि पोषित नहीं की जा सकती है। मेरे दृष्टिकोण में यह निर्णयज विधि वर्तमान मामले के तथ्यों में लागू नहीं होती है क्योंकि उक्त प्रकाशित मामले के तथ्य वर्तमान मामले के तथ्य से बिल्कुल भिन्न है।

10. श्री बबन लाल का मुख्य प्रतिवाद यह है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के प्रावधान के अनुपालन के पूर्ण उल्लंघन के चलते याचीगण पर काफी अधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और उन्होंने ऊपर उल्लिखित मामलों को उद्‌धृत करके अपने निवेदन को मजबूत किया है।

11. विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री लाल ने **2001 Cr. L.J. Page 4656 (पंजाब राज्य बनाम नायबदीन)** में प्रकाशित मामले में एक अन्य निर्णय पर विश्वास किया है जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:-

"12. ....यदि किसी अपीलीय न्यायालय अथवा पुनरीक्षण न्यायालय को मालूम होता है कि विचारण न्यायालय ने अभियुक्त से कोई प्रश्न नहीं पूछा है यद्यपि यह महत्वपूर्ण प्रकृति का है, केवल ऐसे लोप का परिणाम अपरिहार्य परिणाम के रूप में दोषसिद्धि और दंड को अपास्त करने में नहीं होना चाहिए। भूल को पलट देने अपना सुधारने का प्रयास किया जाना चाहिए। यदि किसी साधन द्वारा इसे सुधारना संभव नहीं है, मामले के संपूर्ण पहलू पर इस गलती के प्रभाव पर न्यायालय को विचार

करना चाहिए। साक्ष्य के विशेष वस्तुओं को अलग रखने के बाद यदि शेष साक्ष्य अभियुक्त को दोषी सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है, गलती अर्थहीन है और इसे न्यायोचित रूप से दर किनार किया जा सकता है। किन्तु यदि गलती इतनी महत्वपूर्ण है कि यह सारे मामले को प्रभावित करेगी, अपीलीय अथवा पुनरीक्षण न्यायालयों को यह देखने का प्रयास करना चाहिए कि क्या इसकी परिशुद्धि की जा सकती है।

13. किसी गलती को परिशुद्ध करना अथवा रद्द करना कैसे संभव है यदि यह साक्ष्य के महत्वपूर्ण अंश से संबंधित है?

14. इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों वाली पीठ ने शिवाजी साहबराव बोबाडे बनाम महाराष्ट्र राज्य (1973) 2 SCC 793 में संप्रेक्षित किया है कि ऐसा लोप स्वयमेव ही कार्यवाही को दूषित नहीं करता है जबतक कि अभियुक्त द्वारा प्रतिकूल प्रभाव का पड़ना स्थापित नहीं किया जाता है। यदि अभियुक्त किसी प्रतिकूल प्रभाव को दर्शाने में सफल रहता है, न्यायालय को यह दर्शाने के लिए अभियुक्त के अधिवक्ता को बुलाने की छूट है कि उसके सामने नहीं रखे गए परिस्थितियों के संबंध में अभियुक्त के पास क्या स्पष्टीकरण है।

15. बासवराज पाटिल बनाम कर्नाटक राज्य, (2000)8 SCC 740 में तीन न्यायाधीश पीठ ने पूर्वोक्त संप्रेक्षण का अनुसरण किया है और कथन किया है:

''उक्त रवैया दर्शाता है कि प्रावधान की कठोरता को अभियुक्त द्वारा उठाए गए प्रतिवाद के प्रकाश में कुछ क्षीण किया जा सकता है कि विचारण न्यायालय द्वारा किसी महत्वपूर्ण परिस्थिति पर उससे प्रश्न नहीं पूछे जाने से उसपर क्या प्रतिकूल प्रभाव कारित हुआ है। अपीलीय चरण पर अभियुक्त के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण स्वयं अभियुक्त द्वारा दिए गए उत्तरों के लिए पर्याप्त प्रतिस्थापना अभिनिर्धारित की गयी थी।''

16. यदि अपीलीय चरण पर ऐसी आपत्ति नहीं उठायी जाती है, पुनरीक्षण न्यायालय को सामान्यतः इसका ख्याल नहीं करना चाहिए।

12. सी॰ बी॰ आई॰ के विद्वान अधिवक्ता, श्री राजेश कुमार ने इंगित किया है कि अवर न्यायालय ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन अभियुक्त का परीक्षण करने में कोई गलती नहीं की है। उन्होंने निवेदन किया है कि याचीगण ने इस बिंदु पर विचारण न्यायालय अथवा अपीलीय न्यायालय के समक्ष कोई प्रतिवाद नहीं उठाया था। इस चरण पर भी, याचीगण दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन उनके परीक्षण के त्रुटिपूर्ण तरीके के कारण उनको कारित किसी प्रतिकूल प्रभाव को इंगित नहीं कर सकते है। श्री राजेश कुमार ने आगे प्रतिवाद किया कि श्री **लाल द्वारा उद्धृत निर्णय** अर्थात् **(2009)4 SCC 200** ने स्पष्टत: कहता है कि केवल दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के प्रावधान के समुचित अनुपालन का उल्लंघन पर्याप्त नहीं है बल्कि अभियुक्त को सिद्ध करना होगा कि उक्त उल्लंघन से उस पर प्रतिकूल प्रभाव कारित हुआ है। इस निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित संप्रेक्षित किया है:–

"18. ....संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्त के परीक्षण का लक्ष्य क्या है? धारा स्वयं स्पष्ट भाषा में लक्ष्य घोषित करती है कि इसका 'उद्देश्य उसके विरुद्ध साक्ष्य में प्रकट होते किन्हीं परिस्थितियों को व्यक्तिगत रूप से स्पष्ट करने के लिए अभियुक्त को सक्षम बनाना है।'' जयदेव बनाम पंजाब राज्य में, गजेन्द्र गडकर, न्यायमूर्ति (जो वह तब थे) ने तीन न्यायाधीश पीठ की ओर से बोलते हुए यह विनिश्चित करने के अंतिम परीक्षा पर ध्यान केंद्रित किया है कि प्रावधान का निष्पक्षतापूर्वक अनुपालन किया गया है या नहीं। उन्होंने निम्नलिखित संप्रेक्षित किया: (AIR पृष्ट 620 पैरा 21)

"21. ....यह विनिश्चित करने कि धारा 342 के अधीन अभियुक्त का निष्पक्ष रूप से परीक्षण किया गया है या नहीं, अंतिम परीक्षा यह जाँच होगी कि उससे पूछे

गए सारे प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए, क्या उसे यह कहने का अवसर दिया गया है जो वह अपने विरुद्ध अभियोजन मामले के संबंध में कहना चाहता था। यदि यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त का परीक्षण त्रुटिपूर्ण था और तद्द्वारा उस पर प्रतिकूल प्रभाव कारित हुआ है, निसंदेह यह गंभीर दुर्बलता होगी।''

अत: पूर्वोक्त निर्णय से यह स्पष्ट है कि प्रश्न इस तरीके से पूछा जाना होगा ताकि अभियुक्तगण द्वारा समुचित स्पष्टीकरण दिया जा सके और समुचित स्पष्टीकरण के अप्रस्तुतीकरण से अभियुक्तगण पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। वर्तमान मामले में अभियोजन ने याचीगण से समुचित और आवश्यक प्रश्न पूछा है और इस प्रकार इस मामले में दं० प्र० सं० की धारा 313 का पूर्ण अनुपालन हुआ है।

13. इस संबंध में श्री कुमार ने **(2004)7 SCC 502 (नवल किशोर सिंह बनाम बिहार राज्य)** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय को उद्धृत किया है। उक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है:–

"6. ......इस चरण पर हम अपीलार्थी के इस प्रतिवाद को स्वीकार करने के इच्छुक नहीं है विशेषतः जब अभियुक्त यह दर्शाने में सक्षम नहीं था कि ऐसे अनियमित प्रक्रिया से उस पर किसी तरह का प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।''

14. मैंने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के तहत सभी 13 याचीगण की परीक्षा का सावधानी पूर्वक परिशीलन किया है। मैं पाती हूँ कि उनके विरुद्ध साक्ष्य और आरोप का सार उनके समक्ष स्पष्ट रूप से रखा गया है। यहाँ यह उल्लिखित करना महत्वपूर्ण है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन उनके परीक्षण के दौरान याचीगण को कारित प्रतिकूल प्रभाव के बिन्दु पर तर्क नहीं किया गया था अथवा विचारण न्यायालय या अपीलीय न्यायालय को भी इंगित नहीं किया गया था। यदि गलती इतनी महत्वपूर्ण थी, विचारण चरण पर अथवा अपीलीय चरण पर इस पर तर्क किया जाना चाहिए था। इसके अतिरिक्त इस चरण पर भी याचीगण के विद्वान अधिवक्ता यह इंगित नहीं कर सके थे कि दं० प्र० सं० की धारा 313 के अधीन उनके परीक्षण के तरीके से याचीगण पर किस तरह का प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

15. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों का परिशीलन करने के बाद और मामले को समग्रता से देखते हुए, मेरा दृष्टिकोण यह है कि आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता अथवा दुर्बलता नहीं है और मैं अवर न्यायालयों द्वारा याचीगण पर पारित दोषसिद्धि को सम्पूष्ट करती हूँ।

16. दंडों के संबंध में, मैं पाती हूँ कि याचीगण के विरुद्ध मामला वर्ष 1984 में दर्ज किया गया था अर्थात् 25 वर्ष से भी अधिक पहले। इस तथ्य पर विचार करते हुए, मैं महसूस करती हूँ कि यह सुयोग्य मामला है जहाँ याचीगण को अधिनिर्णीत दंड पहले भुगती जा चुकी अवधि तक के लिए घटाने योग्य है और कारावास की बजाय उनपर जुर्माना अधिरोपित किया जाना चाहिए। अत: मैं याचीगण को अधिनिर्णीत सारे दंडो को उनके (याचीगण) द्वारा पहले ही भुगती गयी अवधि तक परिवर्तित करती हूँ और विचारण न्यायालय में इस आदेश की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर याचीगण में से प्रत्येक को 3000/- रु० जुर्माना भरने का निर्देश देती हूँ जिसके व्यतिक्रम में उन्हें शेष अवधि के लिए कारावास भुगतना होगा जैसा अवर न्यायालयों द्वारा अधिनिर्णीत किया गया है।

दंडादेश में उक्त परिवर्तन के साथ, यह पुनरीक्षण याचिका खारिज की जाती है।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

श्रीमती परमेश्वरी देवी घुटघुटिया (730 में)

चिरंजी लाल अग्रवाल (731 में)

बनाम

बिहार राज्य (अब झारखंड) (दोनों में)

First Appeal (SJ) Nos. 730, 731 of 1972. Decided on 5th May, 2010.

भूमि अर्जन केस सं॰ 9 वर्ष 1961 से उद्भुत भूमि अर्जन सन्दर्भ केस सं॰ 85 वर्ष 1969 में, श्री एच॰ डी॰ बनर्जी, भूमि अर्जन न्यायाधीश (अधीनस्थ न्यायाधीश द्वितीय) धनबाद द्वारा पारित दिनांक 30.3.1972 के निर्णय और अधिनिर्णय के विरुद्ध।

भूमि अर्जन अधिनियम, 1894—धाराएँ 18 एवं 23 (1)(A)—भूमि-अर्जन–मुआवजा–तोषण का भुगतान–धनबाद में जहाँ इंडियन स्कूल ऑफ माइन्स स्थित है, वर्ग-A भूमि का मूल्य 14000/-रुपये प्रति एकड़ की दर बहुत कम है–मुआवजा का दर 25000/-रुपया प्रति एकड़ नियत किया गया–किन्तु 30% की दर से तोषण का दावा मंजूर नहीं किया जा सकता है चूँकि धारा 23 (1)(A) का संशोधन वर्ष 1984 में प्रभाव में आया था जबकि अधिसूचना वर्ष 1961 में प्रकाशित की गयी थी–15% की दर पर दिया गया तोषण मान्य ठहराया गया–ब्याज की दर 6% से 9% प्रतिवर्ष बढ़ायी गयी। (पैरा 5 से 7)

निर्णयज विधि.–1986 PLJR 737—Referred to.

अधिवक्तागण.–Mr. J. K. Pasari, For the Appellants; J.C. to G.P.-I, For the Respondent.

प्रदीप कुमार न्यायमूर्ति.–अपीलार्थीगण और राज्य के अधिवक्ता को सुना गया।

2. प्रथम अपील भूमि अर्जन केस सं॰ 9 वर्ष 1961 से उद्भूत भूमि अर्जन सन्दर्भ केस सं॰ 85 वर्ष 1969 में श्री एच॰ डी॰ बनर्जी, भूमि अर्जन न्यायाधीश (अधीनस्थ न्यायाधीश, द्वितीय) धनबाद द्वारा पारित दिनांक 30.3.1972 के निर्णय और अधिनिर्णय के विरुद्ध दाखिल की गयी है।

3. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि भूमि अर्जन न्यायाधीश ने वर्ष 1961 में 89, 353/- रुपया प्रति एकड़ के हिसाब से बेची गयी क्षेत्र की समरुप भूमि के लिए दाखिल विक्रय-विलेखों अर्थात् प्रदर्श-1 श्रृंखला को अनदेखा कर भूमि अर्जन न्यायाधीश ने अर्जित भूमि की दर 14000/-रुपए प्रति एकड़ गलत नियत किया था।

अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने 1986 पी॰ एल॰ जे॰ आर॰ 737 में प्रकाशित निर्णय पर विश्वास किया जिसमे यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उसी क्षेत्र में समस्थित भूमि के विक्रय-विलेख का उपयोग अर्जित भूमि का बाजार मूल्य विनिश्चित करने के लिए किया जा सकता है। अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन भी किया गया है कि भूमि अर्जन अधिनियम, 1984 द्वारा संशोधित अधिनियम की धारा 2 के प्रावधान की दृष्टि में बाजार मूल्य का 30% की दर से तोषण भूमि अर्जन न्यायाधीश को अनुज्ञात करना चाहिए था। उन्होंने दावा किया कि 6% की दर से ब्याज बहुत कम है।

4. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने इसका विरोध किया है और निवेदन किया है कि भूमि अर्जन न्यायाधीश ने 15% की दर से तोषण सही प्रदान किया है क्योंकि संशोधन अपीलार्थीगण

पर लागू करने योग्य नहीं था क्योंकि वर्ष 1984 में संशोधन के प्रभाव में आने से पहले भूमि अर्जित की गयी थी और 15% तोषण का दावा करते हुए वर्ष 1972 में अपील भी दाखिल की गयी थी। विद्वान भूमि अर्जन न्यायाधीश ने बाजार मूल्य और प्रदर्श-C जिसने 15 विक्रय-विलेखों को दर्शाया था, को विचार में लिया है और क्षेत्र में वर्ग-A भूमि की औसत दर 14,000/- रुपया प्रति एकड़ की दर पर नियत किया है जिसे स्वीकार किया गया था और इसलिए इस न्यायालय का हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है।

5. दोनों पक्षों को सुनने के बाद और अभिलेख पर उपस्थित साक्ष्य के परिशीलन के बाद, यह प्रतीत होता है कि भूमि अर्जन केस सं० 9 वर्ष 1961 जिनके द्वारा गाँव धैया और हीरापुर में इंडियन स्कूल ऑफ माइन्स और अप्लाईड जियोलॉजी के विस्तार के लिए भूमि अर्जित की गयी थी, से उद्भूत 42 भूमि अर्जन संदर्भ को विद्वान सब जज द्वितीय, धनबाद के समक्ष किया गया था। भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 4 के अधीन अधिसूचना दिनांक 12.5.1961 को प्रकाशित की गयी थी और सारे मामलों में अधिनिर्णय किया गया था। अधिनिर्णय के मुताबिक अर्जित भूमि अपीलार्थी की थी और अधिनिर्णय 140/- रुपये की दर से कुल 7140/-रुपया के लिए दिया गया था। भूमि दो कोटियों में विभक्त की गयी थी, वर्ग-A और वर्ग-B भूमि। किंतु, यह प्रतीत होता है कि सन्दर्भ में विद्वान भूमि अर्जन न्यायाधीश ने अपीलार्थी की भूमि को वर्ग A को कोटि में रखी थी।

अभिलेख से, यह प्रतीत होता है कि यद्यपि विक्रय-विलेख (प्रदर्श-1 श्रृंखला) विचारण न्यायालय में दाखिल किया गया था किन्तु वे अवर न्यायालय अभिलेख में उपलब्ध नहीं है और यह प्रतीत होता है कि इन्हें विभिन्न पक्षों जिन्होंने इसे दाखिल किया था, के द्वारा वापस ले लिया गया है। किंतु अपीलार्थीगण ने एक विक्रय-विलेख (प्रदर्श-E) दाखिल किया है जिसे उनके द्वारा रजिस्टर्ड किया गया है जिसमें उक्त मुहल्ले में 1 कट्ठा, 5 छटाँक, 30 वर्ग फीट माप वाली भूमि को 2000/- रुपये में बेचा गया था।

यह भी प्रतीत होता है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने प्रदर्श-1 श्रृंखला को विश्वसनीय नहीं पाया जो दर्शाता है कि मुहल्ले की भूमि की दर 60,000/- से 89,000/- रुपये प्रति एकड़ की दर से है और अधिकतर केबाला (विक्रय-विलेख) संबंधियों के पक्ष में थे जब क्रेताओं को जानकारी हुई कि ये भूमियाँ अर्जित की जा रही है। न्यायालय ने यह भी पाया कि सारे केबाला (विक्रय विलेख) को उस आधार पर हटाया नहीं जा सकता है। अत: विचारण न्यायालय ने प्रदर्श-C पर विश्वास किया जिसने उसी क्षेत्र के 15 केबाला (विक्रय-विलेख) पर विचार किया और वर्ग-A भूमि की कीमत 14,000/-प्रति एकड़ नियत किया, जिसे विचारण न्यायालय द्वारा अनुज्ञात किया गया था। किंतु चूँकि स्वयं विचारण न्यायालय ने कथन किया है कि प्रदर्श-1 श्रृंखला के सारे केबाला को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है और वह इन पर चर्चा कर सकता था। यदि अपीलार्थी द्वारा विश्वास किया गया केबाला भूमि की बढ़ी-चढ़ी कीमत दर्शाते हैं, उन्हें विश्वास योग्य केबाला में से कुछ के आधार पर निष्कर्ष देना चाहिए था किन्तु चूँकि अभिलेख पर केबाला उपलब्ध नहीं है, इन पर विचार करना मुश्किल है।

6. किन्तु मेरे मत में, उस क्षेत्र में, जहाँ धनबाद में इंडियन स्कूल ऑफ माइन्स स्थित है, 14,000/- प्रति एकड़ की दर से वर्ग- A भूमि की कीमत बहुत ही कम प्रतीत होती है। तद्नुसार, इसे 25,000/- प्रति एकड़ नियत किया जाता है। मेरे मत में संशोधित धारा 23 (1) (A) के मुताबिक 30% की दर से तोषण का अपीलार्थीगण का दावा उसे प्रदान नहीं किया जा सकता है क्योंकि संशोधन वर्ष 1984 में प्रभाव में आया था और इस प्रकार भूमि अर्जन न्यायाधीश ने उसे अतिरिक्त मुआवजे के रूप में 15% की दर से तोषण सही प्रदान किया है। किन्तु विचारण न्यायालय द्वारा 6% की दर से नियत ब्याज की दर अधिनिर्णय की तिथि से वसूली की तिथि तक 9% प्रतिवर्ष बढ़ायी जाती है।

7. तद्नुसार, विचारण न्यायालय के निर्णय में पूर्वोक्त संशोधन के साथ दोनों अपीलें अंशत: अनुज्ञात की जाती है और विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री तद्नुसार संशोधित किया जाता है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

जानेश्वर सिंह

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 1751 of 2010. Decided on 2nd July, 2010.

सेवा विधि–उपदान–दाण्डिक मामलों के लम्बित रहने की दृष्टि में उपदान की राशि को नहीं रोका जा सकता–उपदान की राशि को रोकने वाला आक्षेपित आदेश निरस्त–ब्याज के साथ उपदान की राशि निर्गत किया जाना है। (पैरा 3 से 7)

निर्णयज विधि.–2007(4) JCR 1 (Jhr.) (FB) : 2007(2) BLJ 42(JHC)(FB)—Followed.

अधिवक्तागण.–Mr. Krishna Murari, For the Petitioner; J. C. to G.P. III, For the State; Mr. S. Shrivastava, For the A.G.

आदेश

याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता एवं राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि सहायक अभियंता (यांत्रिकी) सिंचाई उप-प्रभाग, नाला, जामताड़ा के तौर पर कार्य करते हुए याची 31 जनवरी, 2009 को सेवानिवृत्त हुआ था। एक से अधिक वर्ष के उपरांत, महालेखाकार, झारखण्ड, राँची को उपसचिव (प्रबंधन) द्वारा एक पत्र निर्गत किया गया था, उसमें यह संसूचित करते हुए कि सरकार ने 100% की सीमा तक पेंशन (उपदान नहीं) स्वीकृत करने का निर्णय लिया है। ज्ञापांक सं॰ 588 दिनांक 19.2.2010 (परिशिष्ट 9) में यथा अन्तर्विष्ट उस आदेश से व्यथित होकर, **2007(4) JCR 1 (झा॰) (F.B.) : 2007(3) BLJ 42(JHC)** में रिपोर्ट किए गए **डॉ॰ दुधनाथ पाण्डेय बनाम झारखण्ड राज्य एवं अन्य** के मामले में दिए गए पूर्ण पीठ के निर्णय की दृष्टि में आदेश को दूषित बताकर चुनौती देते हुए याची इस न्यायालय के समक्ष आया है।

3. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि परिशिष्ट 9 के अधीन यद्यपि इसको लेकर कोई कारण समनुदेशित नहीं किया गया है कि याची को भुगतान की जाने वाली उपदान की राशि क्यों वापस ले ली गई है। परन्तु प्रति शपथपत्र में यह कहा गया है कि चूँकि याची के विरूद्ध दो मामले लम्बित हैं, उपदान रोका जा रहा है। इस सम्बन्ध में विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि उन मामलों में याची सूचनादाता था और, इसलिए, प्रत्यर्थी की ओर से यह कहना गलत है कि याची उन मामलों में एक अभियुक्त है। इसके अलावे अगर कुछ दाण्डिक मामलों में याची को अभियुक्त होने पर भी **डॉ॰ दुधनाथ पाण्डेय के मामले (ऊपर)** में दिए गए निर्णय की दृष्टि में यह उपदान न प्रदान करने का एक आधार नहीं हो सकता।

4. डॉ॰ दुधनाथ पाण्डेय के मामले (ऊपर) में, न्यायधीशों के समक्ष विचारण के लिए आए प्रश्नों में से एक प्रश्न निम्नवत है:–

(i) क्या न्यायिक या विभागीय कार्यवाही के लम्बित रहने के आधार पर सरकार को पेंशन, उपदान एवं लिव इनकैशमेंट की राशि रोकने की शक्ति है?

5. न्यायाधीशों ने विधि के सुसंगत प्रावधानों और अन्य कारकों को भी ध्यान मे रखकर निम्नवत अभिनिर्धारित किया था:–

बिहार पेंशन नियमावली के 43(a) एवं 43(b) के अधीन विभागीय कार्यवाही या दाण्डिक कार्यवाही के लम्बित रहने के दौरान उपदान एवं पेंशन को रोके रखने की कोई शक्ति सरकार के पास नहीं है। कार्यवाही के पहले किसी चरण में या कार्यवाही के समापान के उपरांत लिव-इनकैशमेंट को रोकने की कोई भी शक्ति यह प्रदान नहीं करता है।

6. डॉ॰ दुधनाथ पाण्डेय के मामले (ऊपर) में दिए गए निर्णय की दृष्टि में प्रत्यर्थी के पास याची को भुगतान की जाने वाली उपदान की राशि को दाण्डिक मामले के लम्बित रहने की दृष्टि में रोके रखने की कोई शक्ति नहीं है।

7. तदनुसार, ज्ञापांक सं॰ 588 दिनांक 19.2.2010 (परिशिष्ट–9) में, यथा अंतर्विष्ट आदेश, जिस सीमा तक यह उपदान रोके रखने से सम्बन्धित है, एतद द्वारा निरस्त किया जाता है।

8. परिणामतः, परिशिष्ट–11 में यथा अन्तर्विष्ट परिपत्र सं॰ PC-2-1-46/79/3155 दिनांक 7.11.1981 के निबंधनों में उपदान एवं इसपर आने वाले ब्याज के भुगतान के सम्बन्ध में प्राधिकारों को आदेश पारित करने का निदेश दिया जाता है। इस आदेश की प्राप्ति/प्रस्तुतिकरण की तिथि से चार सप्ताह के अवधि के भीतर ब्याज, अगर कोई हो, के साथ उपदान के भुगतान के मामले में निर्णय लिया जाय ताकि इसके तुरंत बाद भुगतान किया जा सके।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

संजय चमरिया

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 1547 of 2009. Decided on 2nd July, 2010.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 320 एवं 482—भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धाराएँ 323, 379 एवं 420—समझौते के आधार पर दाण्डिक कार्यवाही की खारिजी के लिए आवेदन–अभिकथित अपराध शमनीय है–दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 482 के अधीन शक्तियों के इस्तेमाल में उच्च न्यायालय दाण्डिक कार्यवाही निरस्त कर सकता है जब विवाद, वैयक्तिक प्रकृति का हो और सार्वजनिक नीति को अन्तर्ग्रस्त नहीं करता हो और समझौते में समाप्त हुआ हो–समूची दाण्डिक अभियोजन निरस्त। (पैरा 6 से 10)

निर्णयज विधि.–(2008)4 SCC 582; (2003)4 SCC 675;—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Indrajit Sinha, For the Petitioner; A.P.P., For the State; Mr. Kumar Vimal, For the O.P. No. 2.

आदेश

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अन्तर्निहित अधिकारिता का आलम्ब लेते हुए, याची ने दिनांक 22.12.2008 के संज्ञान के आदेश और भारतीय दण्ड संहिता की

धाराएँ 323, 379 एवं 420 के अधीन अपराधों के लिए संज्ञान के अंतरिम आदेश के अनुसरण में समूची दाण्डिक कार्यवाही को निरस्त करने की प्रार्थना की है।

2. विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा दाखिल परिवाद के आधार पर अवर न्यायालय के समक्ष मामला दर्ज किया गया था। परिवाद याचिका में अभिकथन यह है कि परिवादी ने वर्ष 2005 में मैग्मा लिजिंग फाइनेन्स लि॰ से अपने वाहन का वित्तीयन करवाया था। यह अभिकथित किया गया है कि कम्पनी द्वारा दिए गए इस आश्वासन के बावजूद कि वह मुफ्त निबंधन एवं बीमा प्राप्त करेगा, परन्तु वित्तदाता द्वारा ऋण राशि के भुगतान में विलम्ब के कारण परिवादी को अपना वाहन बिमित कराने के लिए अपनी ही जेब से खर्च उठानी पड़ी थी। आगे अभिकथन यह भी है कि ऋण राशि के पुनर्भुगतान को लेकर उसके द्वारा वित्तदाता को नियमित रूप से मासिक किस्तों का भुगतान किए जाने के बावजूद, अभियुक्त व्यक्तियों ने 18.3.2008 को बीच में ही उसकी गाड़ी रोक ली थी और वाहन को अपने परिसर ले गए थे एवं अवैधानिक रूप से वाहन से स्टेप्नी एवं जैक निकाल दिया था जिनकी कीमत 15,000/- रु॰ थी।

3. आई॰ ए॰ सं॰ 1235 वर्ष 2010 द्वारा परिवादी/विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से एक अन्तर्वर्ती आवेदन दाखिल किया गया है और याची ने सूचित किया है कि पक्षकारों ने अपने विवाद पर समझौता कर लिया है।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता यह निवेदन करते हैं कि परिवादी/विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने न्यायालय के बाहर याची के साथ अपने विवाद का समाधान कर लिया है और यह कि समझौते एवं पारस्परिक समझौते के परिणामत: परिवादी अवर न्यायालय के समक्ष मामले का प्रतिवाद नहीं करना चाहता क्योंकि उसने अभियुक्त व्यक्तियों के साथ अपराध का प्रशमन कर लिया है। विद्वान अधिवक्ता यह भी निवेदन करते हैं कि भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 323, 329 एवं 420 के अधीन अपराध दं॰ प्र॰ सं॰ की धाराएँ 320 एवं 322 के प्रावधानों के अन्तर्गत शमनीय होते हैं। पक्षों के संयुक्त हस्ताक्षराधीन विचारण न्यायालय के समक्ष एक याचिका दाखिल की गई थी, परन्तु विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा इसपर कोई आदेश पारित नहीं किया गया है इस आधार पर कि अभियुक्त व्यक्तियों ने मामले में अपनी हाजरी नहीं दी है।

विद्वान अधिवक्ता यह भी निवेदन करते हैं कि पक्षकारों द्वारा कारित एवं उनके बीच प्रभावी हुए समझौते और अपराधों का प्रशमन हो जाने की दृष्टि में याचीगण के विरुद्ध दाण्डिक कार्यवाही का जारी रहना दोषपूर्ण होगा और किसी महत्व का नहीं होगा क्योंकि विचारण का अन्त अपराधों के लिए याची/अभियुक्त व्यक्तियों की दोषसिद्धि में नहीं होगा। **मदन मोहन एबोट बनाम पंजाब राज्य [(2008)4 सुप्रीम कोर्ट केसेज 582]** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय को निर्दिष्ट करके और इसपर भरोसा करते हुए विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि इस न्यायालय की एक पीठ ने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णीत निर्णयाधार पर भरोसा करते हुए और अपनी अन्तर्निहित अधिकारिता का प्रयोग करके याची के विरुद्ध समूची दांडिक कार्यवाही को निरस्त कर दिया है।

5. विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के अधिवक्ता सम्पुष्ट करते हैं कि यद्यपि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा दाखिल परिवाद के आधार पर मामला संस्थित किया गया था, परन्तु परिवादी ने अब समझौता कर लिया है और परिवादी/विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 एवं अभियुक्त व्यक्तियों के बीच न्यायालय के बाहर एक समझौता तय पाया गया है और परिवादी द्वारा अभियुक्त व्यक्तियों के साथ अपराधों का प्रशमन कर लिया गया है और इसलिए मामलों के अभियुक्त व्यक्तियों की दोषसिद्धि प्राप्त करने के लिए विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 अपने मामले को अब और आगे ले जाने का इच्छुक नहीं है।

6. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है और अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों का भी परिशीलन किया है और मैं पाता हूँ कि स्वीकार्यत: विवादाधीन पक्षकारों के बीच एक समझौता तय पाया गया है जिसके परिणामत: अभियुक्त व्यक्तियों की दोषसिद्धि प्राप्त करने के लिए परिवादी/विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 अब मामला और आगे ले जाने का इच्छुक नहीं है। मेरे विचार में उपरोक्त तथ्यों के आलोक में समझौते को देखते हुए कार्यवाही को जारी रखकर कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा।

कई मामलों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समरुप प्रकृति के उदाहरणों पर विचार किया गया है जहाँ गैर प्रशमनीय अपराधों में भी सम्बन्धित विवाद के पक्षकारों ने वाद में सुलह की है और समझौता किया है और तत्पश्चात्, दाण्डिक अभियोजन का निरस्तीकरण इप्सित किया है। इस सन्दर्भ में हम **बी॰ एस॰ जोशी एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं एक अन्य, [(2003)4 सुप्रीम कोर्ट केसेज 675]** के मामले में और **मदन मोहन एब्बोट के मामले (ऊपर)** में सर्वोच्च न्यायालय के हाल ही के निर्णय को निर्दिष्ट कर सकते हैं।

7. मदन मोहन एब्बोट के मामले (ऊपर) में सर्वोच्च न्यायालय ने यह ध्यान में रखते हुए कि पक्षों के बीच का विवाद सार्वजनिक नीति को अन्तर्ग्रस्त नहीं करते हुए विशुद्धत: एक वैयक्तिक विवाद था और समझौते द्वारा सुलझा लिया गया था, निम्नवत् सम्परीक्षित किया था:–

> *"यह सलाह देना कदाचित सही होगा कि ऐसे विवादों में जहाँ अन्तर्ग्रस्त प्रश्न शुद्धतः वैयक्तिक प्रकृति का प्रश्न है, न्यायालय को सामान्यतः दाण्डिक कार्यवाही में भी समझौते के निबंधनों को स्वीकार कर लेना चाहिए क्योंकि अभियोजन के पक्ष में एक परिणाम की सम्भावना के बगैर मामले को जीवित रखना एक ऐसी विलासिता होगी जिसका न्यायालय जो पहले से ही अत्यधिक भार से बोझिल है, वहन नहीं कर सकते और इस प्रकार बचाए गए समय का इस्तेमाल अधिक प्रभावी एवं अर्थपूर्ण मुकदमें का फैसला करने में किया जा सकता है।*

8. बी॰ एस॰ जोशी एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं एक अन्य [(2003)4 SCC 675] के मामले में हाल ही के एक और निर्णय में भी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यही मत अपनाया गया है।

9. मदन मोहन एब्बोट (ऊपर) एवं **बी॰ एस॰ जोशी के मामले (ऊपर)** में उल्लिखित निर्णय में यथा अन्तर्विष्ट सम्परीक्षण यह भी अभिकथित करता है कि यह न्यायालय द॰ प्र॰ सं॰ की धारा 482 के अधीन अपनी असाधारण शक्तियों के इस्तेमाल में दाण्डिक कार्यवाही खण्डित कर सकता है जब विवाद सार्वजनिक नीति को शामिल न करते हुए वैयक्तिक प्रकृति का हो और विवादाधीन पक्षकारों के बीच समझौते में समाप्त हुआ हो।

10. उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों के आलोक में, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है। अवर न्यायालय के समक्ष याचीगण के विरुद्ध यथा लंबित समूची दाण्डिक अभियोजन, परिवाद केस सं॰ 342 वर्ष 2008 को, जिसमें 22.12.2008 का संज्ञान का आक्षेपित आदेश सम्मलित था, एतद् द्वारा निरस्त किया जाता है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

आरती ठाकुर एवं अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 2708 of 2009. Decided on 1st July, 2010.

सेवा विधि–वसूली–सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के आधार पर वेतन के बकायों की वसूली इप्सित–सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आदेश पारित किये जाने से पहले, अवमान याचिका में उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुशरण में वेतन के बकायों का भुगतान पहले ही कर दिया गया था–आक्षेपित आदेश अभिखंडित–आवेदन अनुज्ञात। (पैरा 5 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. A. K. Sahani, For the Petitioners; J.C. to S.C. I, For the Respondents.

आदेश

याचीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता एवं प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. परिशिष्ट 16 में यथा अन्तर्विष्ट सचिव, मानव संसाधन विभाग, प्रत्यर्थी सं० 2 द्वारा पारित दिनांक 13.5.2009 के आदेश को अभिखण्डित करने हेतु यह रिट आवेदन दाखिल किया गया है जिसके द्वारा याचीगण को भुगतान किए गए वेतन के बकायों की वसूली करना S.L.P. (C) सं० 10955 वर्ष 2008 में पारित सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के आधार पर इप्सित किया गया था जिसके द्वारा माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सम्परीक्षित किया था कि कार्यवाही में अन्तिम निर्णय लिए जाने तक भुगतान नहीं किया जाएगा।

3. याचीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि दिसम्बर, 2006 से प्रारम्भ होकर आगे भुगतान की जाने वाली याचीगण की वेतन रोक दी गई थी, यह आदेश और साथ-साथ उस आदेश, जिसके अधीन दोनों याचीगण की दो वार्षिक वेतनवृद्धि रोक दी गई थी, को W. P. (S) सं० 4131 वर्ष 2002 के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी जिसके द्वारा इस न्यायालय ने वार्षिक वेतनवृद्धि रोकने वाले आदेश को सम्पुष्ट करते हुए प्राधिकार को याचीगण के वेतन के बकायों का भुगतान करने का निर्देश दिया था। इस आदेश को L.P.A सं० 168 वर्ष 2004 में चुनौती दी गई थी जिसे खारिज कर दिया गया था। उस आदेश से व्यथित होकर राज्य ने S.L.P. (C) सं० 10988 वर्ष 2008 के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय का आश्रय लिया था जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने C.W.J.C. सं० 537 वर्ष 2001 में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश को ध्यान में रखते हुए सम्परीक्षित किया था कि अगर राज्य को मामले में अन्तिम आदेश पारित करना शेष है और राज्य द्वारा जबतक अन्तिम निर्णय नही लिया जाता है, याचीगण को वेतन के बकायों का भुगतान करने की आवश्यकता नहीं है परन्तु आदेश पारित किए जाने से पहले अन्तिम निर्णय पहले ही लिया जा चुका था जो परिशिष्ट 9 एवं 10 से प्रकट होगा जो W.P.S. सं० 4131 वर्ष 2002 में चुनौती की विषय वस्तु था जिसके द्वारा इस न्यायालय ने याचीगण को वेतन के बकायों का भुगतान करने का निर्देश राज्य को दिया था।

4. यह भी इंगित किया गया था कि जब अवमान याचिका दाखिल की गई थी, याचीगण को वेतन के बकायों का भुगतान कर दिया गया था, परन्तु जब अपील की पूर्वोक्त विशेष अनुमति में चूँकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पहला आदेश पारित कर दिया गया था, राज्य प्राधिकार ने एक अन्य आदेश पारित किया जिसके द्वारा याचीगण को भुगतान किए गए वेतन के बकायों की वसूली करना इप्सित किया गया है और यह रिट आवेदन दाखिल करने के लिए याचीगण को कार्रवाई का कारण प्रदान किया है।

5. पक्षों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ताओं की सुनवाई करके और अभिलेख के परिशीलन से, मै पाता हूँ कि इस रिट आवेदन के परिशिष्ट–9 एवं 10 के माध्यम से प्रत्यर्थी ने वास्तव में कार्यवाही में अंतिम आदेश पारित किया था जिसके द्वारा दो वार्षिक वेतनवृद्धियों को रोक दिया गया था और वेतन के बकायों को रोक देने का आदेश दिया गया था। दोनों आदेशों को W.P.S. सं० 4131 वर्ष 2002 में चुनौती दी गई थी जिसके द्वारा न्यायालय ने दोनों वार्षिक वेतनवृद्धियों को रोकने वाले आदेश की संपुष्टि करते हुए याचीगण को वेतन के बकायों का भुगतान करने के लिए प्राधिकारी को निदेश दिया था। L.P.A. सं० 168 वर्ष 2004 में इस आदेश को चुनौती दी गई थी जो खारिज कर दिया गया था।

6. इस आदेश से व्यथित होकर, राज्य ने S.L.P. (C) सं॰ 10955 वर्ष 2008 के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय का आश्रय लिया था जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने अंतिम आदेश पारित किए जाने तक वेतन के बकायों का भुगतान न करने का आदेश पारित किया था। परन्तु इससे पहले, कार्यवाही में अंतिम आदेश पहले ही पारित किया जा चुका था और W.P.S. सं॰ 4131 वर्ष 2002 में इसे चुनौती दी गई थी जिसने अन्ततः S.L.P. (C) सं॰ 10955 वर्ष 2008 उदभूत किया था। उक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आदेश पारित किए जाने से पहले, अवमान याचिका, अवमान केस (सिविल) सं॰ 841 वर्ष 2007 में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुशरण में भुगतान पहले ही किया जा चुका था।

7. तदनुसार, याचीगण को भुगतान किए गए वेतन के बकायों की वसूली के लिए परिशिष्ट–16 में यथा अन्तर्विष्ट सचिव, मानव संसाधन विकास विभाग, झारखण्ड सरकार, राँची द्वारा पारित दिनांक 13.5.2009 का आदेश एतद द्वारा निरस्त किया जाता है।

8. परिणामतः, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय ज्ञान सुधा मिश्रा, मुख्य न्यायाधीश एवं अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति

लाल ब्रजेश्वर नाथ सहदेव (64 में)

संतोष महतो (65 में)

नेपाल बैठा (66 में)

बनाम

बिहार राज्य (अब झारखंड) एवं अन्य (सभी में)

Civil Review Nos. 64, 65 with 66 of 2008. Decided on 6th April, 2010.

भूमि अर्जन अधिनियम, 1894—धारा 4—सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—धारा 115—भूमि के अव्यवहृत पड़े रहने के अभिवाक् पर अर्जित भूमि के पुनर्हस्तान्तरण का दावा–याचीगण ने पहले ही मुआवजा पा लिया है–नीतिगत निर्णय ले लिए जाने के अभिवाक् पर कार्यपालिका आदेश के फलस्वरुप अर्जन पुनर्हस्तान्तरित नहीं किया जा सकता है–पुनर्विलोकन न्यायालय ताथ्यिक जाँच संचालित नहीं कर सकता है कि क्या भूधारकों में से कुछ अर्जित भूमि के वास्तविक भौतिक कब्जे में हैं या नहीं–याचिकाएँ खारिज। (पैरा 8 से 12)

निर्णयज विधि.–(2005) 1 SCC 558—Referred to.

अधिवक्तागण.–M/s Subhro Sanyal, Sunil Kr. Mahto, For the Petitioners; M/s P.A.S. Pati, Rajesh Kumar Mehtha, For the State; Mr. Abhay Kr. Mishra, For the H.E.C..

आदेश

ये तीनों पुनर्विलोकन याचिकाएँ एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 504 वर्ष 2006 और एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 505 वर्ष 2006 के साथ एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 503 वर्ष 2007 में खंड पीठ द्वारा पारित दिनांक 6.11.2007 के निर्णय एवं आदेश के विरूद्ध दाखिल की गयी।

2. पूर्वोक्त सभी अपीलें तीन रिट याचिकाओं, जिन्हें साथ साथ सुना गया था और एक ही आदेश द्वारा निपटाया गया था, में एक ही निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध निर्देशित था, जिसके विरूद्ध ये पुनर्विलोकन याचिका दाखिल की गयी है।

3. याचीगण इस मामले के साथ आएं थे कि यद्यपि उनकी जमीन बिहार राज्य द्वारा वर्ष 1960 में अर्जित की गयी थी, फिर भी उनकी भूमि को उनको प्रतिहस्तांतरित/लौटाने का आदेश दिया जाना चाहिए क्योंकि याचीगण के मामले के अनुसार, बिहार सरकार ने मूल भूस्वामियों को भूमि लौटाने का नीतिगत निर्णय पहले ही ले लिया है।

4. यह स्वीकृत स्थिति है कि सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रम अर्थात् मेसर्स हैवी इंजीनियरिंग कॉरपोरेशन (संक्षेप में एच॰ ई॰ सी॰) के उपयोग और लाभ के लिए तत्कालीन बिहार राज्य द्वारा वर्ष 1960 में भूमि का वृहद खंड अर्जित किया गया था और जब अर्जित भूमि पर उपक्रम स्थापित किया जा रहा था, याचीगण इस मामले के साथ आए कि 2555.71 डिसिमल भूमि का बड़ा क्षेत्र अव्यवहृत पड़ा हुआ था। अत: याचीगण ने उनलोगों को भूमि लौटाने के लिए विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष पृथक रूप से तीन रिट याचिकाएँ इस आधार पर दाखिल किया कि भूमि अव्यवहृत पड़ी थी और इस आधार पर भी कि बिहार सरकार ने पहले ही अव्यवहृत भूमि, जिसे एच॰ ई॰ सी॰ के उपयोग के उद्देश्य के लिए शुरु में अर्जित किया गया था, को लौटाने अथवा प्रतिहस्तांतरित करने का नीतिगत निर्णय ले लिया था।

5. (2005)1 SCC 558 में प्रकाशित **आंध्र प्रदेश राज्य बनाम सैयद अकबर** के मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त करते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया गया था जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है कि अर्जित भूमि सारे विल्लंगमों से पूर्णत: मुक्त होकर सरकार में निहित है। इसी निर्णय में, आगे अभिनिर्धारित किया गया था कि लोक उद्देश्य के लिए अर्जित भूमि का उपयोग किसी अन्य लोक उद्देश्य के लिए किया जा सकता है और फिर आगे अभिनिर्धारित किया गया था कि सारे विल्लंगमों से मुक्त अर्जित भूमि, किया जा सकता है और फिर आगे अभिनिर्धारित किया गया था कि सारे विल्लंगमों से मुक्त अर्जित भूमि, जो सरकार में निहित थी, को केवल कार्यपालिका आदेश के आधार पर मूल स्वामियों की पुनर्समनुदेशित अथवा पुनर्हस्तान्तरित नहीं किया जा सकता है।

6. इसी आधार पर भूमि लौटाने/पुनर्हस्तान्तरित करने के लिए रिट याचिकाओं को दाखिल किया गया था किन्तु इन्हें खारिज कर दिया गया था। तत्पश्चात्, याचीगण ने इस न्यायालय की खंड पीठ के समक्ष तीन लेटर्स पेटेन्ट अपील दाखिल किया जिन्हें भी यहाँ पहले ही ऊपर उपदर्शित दिनांक 6.11.2007 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था।

7. तत्पश्चात् याचीगण ने पुनर्विलोकन याचिकाओं के परिशिष्ट-2 के तहत एस॰ एल॰ पी॰ (सिविल) सं॰ 8395-8397 वर्ष 2008 के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दाखिल किया और याचीगण द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रतिवाद किया गया था कि यद्यपि भूमि का अर्जन किया गया था किन्तु राज्य अथवा हिताधिकारी अर्थात् एच॰ ई॰ सी॰ द्वारा उनसे कब्जा नहीं लिया गया था। विशेष अनुमति याचिकाओं को वापस लौटाने के तौर पर खारिज कर दिया गया था और इसपर विचार करने के लिए कि क्या याचीगण के प्रकथन कि अर्जन के बाद अर्जित भूमि उनसे नहीं ली गयी थी सही है या नहीं और क्या भूस्वामियों को मुआवजा का भुगतान किया गया था, आदेश की वापसी हेतु आवेदन दाखिल करने की छूट याचीगण को दी गयी थी। तत्पश्चात याचीगण ने आदेश वापसी के लिए आवेदन दाखिल नहीं किया था बल्कि इन तीन पुनर्विलोकन याचिकाओं को दाखिल किया है जिसमें प्राख्यित किया गया है कि अव्यवहृत पड़ी भूमि को याचीगण को पुनर्हस्तान्तरित कर देना चाहिए।

8. पुनर्विलोकन याचिकाओं को केवल तभी ग्रहण किया जा सकता है जब अभिलेख को देखते ही गलती प्रतीत हो और न्यायालय से यह अन्वेषण अथवा न्यायनिर्णय अपेक्षित नहीं हो कि क्या याचीगण अभी भी प्रश्नगत भूमि के कब्जे में है क्योंकि यह स्पष्टत: साक्ष्य के संवीक्षण पर निर्भर करेगा जिसे पुनर्विलोकन याचिका द्वारा किए जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। किन्तु, यदि याचीगण

का इस प्रभाव का प्रकथन है कि वे अभी भी भूमि जिसे अर्जित किया गया था के कब्जे में है, पर विचार करने के लिए ग्रहण भी किया जाए, इसे अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि उन्होंने पहले ही मुआवजा प्राप्त कर लिया है जिसका भुगतान राज्य को कब्जा सौंपे जाने के बिना नहीं किया जा सकता था। अत: इस प्रभाव के आक्षेपित निर्णय और आदेश के तहत विद्वान एकल न्यायाधीश और विद्वान खंडपीठ द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण कि इस अभिवाक् पर कार्यपालिका आदेश के फलस्वरूप अर्जन पुनर्हस्तान्तरित नहीं किया जा सकता है कि नितिगत निर्णय लिया जा चुका था, किसी भी तरीके से गलत नहीं है। विद्वान खंडपीठ और विद्वान एकल पीठ द्वारा अपनाया गया इस प्रभाव का दृष्टिकोण स्पष्टत: अंतर्निहित करता है कि यदि सरकार द्वारा कोई नीतिगत निर्णय लिया गया भी है, इसे सरकारी अधिसूचना के तौर पर समाविष्ट करना होगा और जब तक राज्य जो अब बिहार राज्य के विभाजन के बाद झारखंड राज्य है, द्वारा इस प्रभाव की अधिसूचना जारी नहीं की जाती है, अभिकथित अव्यवहृत भूमि के प्रति पुनर्हस्तान्तरण का याचीगण का दावा ग्रहण नहीं किया जा सकता है।

9. इसके अतिरिक्त, सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष याचीगण का इस प्रभाव का प्रकथन की याचीगण अभी भी भूमि के कब्जे में है और उनको मुआवजा का भुगतान भी नहीं किया गया था, ताथ्यिक रूप से पोषणीय नहीं है। इसके विपरीत याचीगण के अधिवक्ता यह तथ्य विवादित नहीं कर सके थे कि याचीगण ने पहले ही मुआवजा पा लिया था और राज्य सरकार द्वारा भूमि भी अधिग्रहित कर ली गयी थी जिसपर एच॰ ई॰ सी॰, जिसके लिए अर्जन किया गया था, इसके अर्जन के बाद कब्जे और स्वामित्व में है। इस प्रकार, सर्वोच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों के समक्ष याचीगण ने प्रकटत: इस प्रभाव का सही बयान नहीं दिया कि वे अभी भी अव्यवहृत भूमि के कब्जे और स्वामित्व में है और न ही उनके लिए यह प्राख्यित करना सही था कि उन्होंने मुआवजा प्राप्त नहीं किया था जिसके चलते उन्हें आदेश की वापसी के लिए आवेदन दाखिल करने की छूट दी गयी थी जिसे नहीं किया गया था बल्कि इसके बदले इन पुनर्विलोकन याचिकाओं को दाखिल किया गया है।

10. इस प्रकार, अभिलेख को देखते हुए ही किसी ताथ्यिक अथवा प्रकट गलती की अनुपस्थिति में ये पुनर्विलोकन याचिकाएँ ग्रहण किए जाने योग्य नहीं हैं।

11. दोहराने का जोखिम लेते हुए, हम अभिलिखित कर सकते हैं कि अपने प्रकथनों का समर्थन करने में याचीगण बुरी तरह विफल रहे हैं जिस प्रभाव का प्रकथन उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष किया था कि वे अभी भी अव्यवहृत भूमि के कब्जे और स्वामित्व में है और उन्होंने इस न्यायालय के समक्ष भी कथन नहीं किया है कि उन्होंने अर्जित की जा चुकी भूमि के लिए मुआवजा प्राप्त नहीं किया था।

12. किन्तु याचीगण के अधिवक्ता ने फिर भी जोर दिया कि याचीगण में से कुछ अभी भी भूमि के कब्जे में है और इस बात के इंकार नहीं करते हुए कि उन्होंने मुआवजा प्राप्त किया है। किसी भी स्थिति में, ताथ्यिक जाँच संचालित करना इस न्यायालय के लिए संभव नहीं है कि क्या कुछ भूधारक, जो इसमें याचीगण नहीं भी हो सकते हैं, अभी भी वर्ष 1960 में अर्जित भूमि के वास्तविक कब्जे में है क्योंकि तब साक्ष्य देना अपेक्षित होगा जो अभिलेख पर उपलब्ध नहीं है और इस तरह सही रूप से रिट अधिकारिता के अधीन इसकी अनुमति, वह भी पुनर्विलोकन याचिकाओं को ग्रहण करते समय, नहीं दी जा सकती थी।

13. तद्नुसार, सभी पुनरीक्षण याचिकाओं को खारिज किया जाता है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल एवं प्रदीप कुमार, न्यायमूर्तिगण

ICICI लोम्बार्ड जनरल इन्श्योरेन्स कं॰

बनाम

मुरारीलाल शर्मा एवं एक अन्य

M.A. No. 85 of 2009. Decided on 29th March, 2010.

मोटर यान अधिनियम, 1988—धाराएँ 147 एवं 149—दुर्घटना–प्रतिकर–बीमा कंपनी के दायिताओं की सीमा–दुर्घटना से हुई मृत्यु के लिए मृतक को 2,20,000/- रु॰ का प्रतिकर अधिनिर्णीत–मोटरसाईकिल के प्रयोग के अनुक्रम में कारित किसी मृत्यु/उपहति के लिए दायित्व बीमा पॉलिसी आच्छादित करती थी जिसे दुर्घटना के समय मृतक चला रहा था–मृतक मोटरसाईकिल का मालिक नहीं था–बीमा कंपनी पर दायिता नियत करने के प्रयोजन से मृतक को तृतीय पक्षकार समझा जा सकता है–मृतक 23 वर्षीय युवक था–अपील खारिज।
(पैरा 4 से 7)

अधिवक्तागण.–A. K. Das, Counsel for the Appellant; Peeyush Krishna, Counsel for the Respondents.

निर्णय

एम॰ वाई इकबाल एवं प्रदीप कुमार, न्यायमूर्तिगण.–पक्षकारों को सुना। अपीलार्थी/बीमाकर्ता अर्थात् ICICI, लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेन्स कं॰ ने परिवाद वाद संख्या 156 वर्ष 2006 में दावा अधिकरण, ईस्ट सिंहभूम, जमशेदपुर द्वारा पारित उस निर्णय तथा अधिनिर्णय को चुनौती देते हुये यह अपील प्रस्तुत किया है जिसके माध्यम से मोटर यान दुर्घटना में मृतक की मृत्यु के लिये 2,20,000/- रुपये की राशि अधिनिर्णीत की गई है।

2. विवादित तथ्य इस प्रकार हैं कि कोई राहुल शर्मा, मोटर साइकिल जे॰ एच॰-05-एल-5262 पर 30.1.2006 को सकची की ओर जा रहा था। मार्ग में कोई अज्ञात ट्रेलर विपरीत दिशा से आया और उसने मोटर साइकिल को टक्कर मार दिया जिसके परिणामस्वरूप मृतक राहुल शर्मा ने गम्भीर उपहतियां उपगत की और उसकी मृत्यु हो गई। मृतक की आयु लगभग 23 वर्ष थी और वह नियोजित था। प्रत्यर्थी-मोटर साइकिल का स्वामी उपस्थित हुआ और उसने अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिकथन करते हुये कारण बताओ दाखिल किया कि मृतक के पास वैध चालन अनुज्ञप्ति थी और मोटर साइकिल अपीलार्थी-बीमा कम्पनी के द्वारा बीमाकृत थी। अपीलार्थी बीमा कम्पनी ने यह प्रतिरक्षा लिया कि दावा वाद आवश्यक पक्षकार के असंयोजन के आधार पर पोषणीय नहीं था और कि दुर्घटना किसी अन्य (ट्रेलर) की उपेक्षापूर्ण चालन के कारण घटित हुई थी दावाकर्तागण, जो माता-पिता हैं, ने साक्ष्य पेश किया है लेकिन वर्तमान अपीलार्थी सहित प्रत्यर्थी द्वारा कोई भी साक्ष्य पेश नहीं किया गया था। अधिकरण ने पूर्वोल्लिखित मुआवजा अधिनिर्णीत किया।

3. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री ए॰ के॰ दास ने मुख्यत: इस आधार पर आक्षेपित अधिनिर्णय को चुनौती दिया कि मृतक पर-पक्षकार की परिभाषा में नहीं आता है और इसलिये बीमा कम्पनी का मुआवजा संदाय करने का कोई भी दायित्व नहीं है। इस सम्बन्ध में हमारा ध्यान बीमा पॉलिसी की प्रति के प्रति आकृष्ट किया गया है।

4. हमने बीमा पॉलिसी की प्रति का परिशीलन किया है। पॉलिसी के दाहिने पार्श्व में, इस बात का उल्लेख किया गया है कि मोटर साइकिल को बीमाकृत समेत किसी भी व्यक्ति द्वारा चलाया जायेगा

बशर्ते यान को चलाने वाले व्यक्ति के पास दुर्घटना की तारीख पर वैध चालन अनुज्ञप्ति हो और वह ऐसी अनुज्ञप्ति को धारित करने तथा प्राप्त करने से निर्हित न हो।

5. स्वीकृत रूप से, मृतक मोटर साइकिल का स्वामी नहीं था, इसलिये बीमा कम्पनी पर दायित्व अधिरोपित करने के प्रयोजन से मृतक को पर-पक्षकार के रूप में माना जा सकता है।

6. स्थिति जैसी भी हो, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये कि पॉलिसी मोटर साइकिल के प्रयोग के अनुक्रम में कारित किसी मृत्यु अथवा उपहति के लिये दायित्व को पूरा करने के लिये जारी की गई थी। मृतक लगभग 23 वर्ष की आयु का लड़का था और वह जब मोटर साइकिल को चला रहा था तो दुर्घटनाग्रस्त हो गया एवं उसकी मृत्यु हो गई थी। पॉलिसी में ऐसा कुछ भी उल्लिखित नहीं है कि मोटर साइकिल को चलाने वाले व्यक्ति को मोटर साइकिल चलाते समय कारित मृत्यु अथवा शारीरिक उपहति की दशा में पॉलिसी के अधीन आच्छादित नहीं किया जायेगा।

7. मामले को उस दृष्टि में, हम इस अपील में कोई भी गुणावगुण नहीं पाते हैं, जिसे तद्नुसार निरस्त किया जाता है।

माननीय प्रशान्त कुमार, न्यायमूर्ति

राना तिर्के

बनाम

डी॰ ए॰ वी॰ महाविद्यालय ट्रस्ट एवं प्रबंधन सोसायटी अपने महासचिव के माध्यम से एवं अन्य

A.C. (S.B.) No. 12 of 2008, I.A. No. 1097 of 2010. Decided on 20th April, 2010.

झारखंड शैक्षणिक अधिकरण अधिनियम, 2005—धाराएँ 10(1)(b) एवं 15—शैक्षणिक अधिकरण के समक्ष अपील–अपील दाखिल करने में 428 दिनों का विलम्ब–परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 156 के अधीन अपील दाखिल करने के लिए विहित परिसीमा जे॰ ई॰ टी॰ अधिनियम के अधीन अपील को शासित नहीं करेगी–अन्यथा भी, समय के पूर्व के बिन्दु पर अपील दाखिल करने से पर्याप्त कारण से अपीलार्थी को रोका गया है–अपील ग्रहण नहीं किया जा सकता है। (पैरा 6 से 9)

निर्णयज विधि.–34 All 495—Distinguished; (2009) 9 SCC 352—Referred to.

अधिवक्तागण.–M/s Abhay Kumar Mishra, Sunil Kumar Dubey, Madan Mohan Mishra, For the Appellant; Mr. Ananda Sen, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान आवेदन जो आई॰ ए॰ सं॰ 1097 वर्ष 2010 है इस अपील को दाखिल करने में हुए 428 दिनों के विलम्ब को माफ करने के लिए दाखिल की गयी है।

2. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि वर्तमान अपील झारखंड शैक्षणिक अधिकरण अधिनियम, 2005 (इसमें इसके बाद जे॰ ई॰ टी॰ अधिनियम के तौर पर निर्दिष्ट) की धारा 15 के अधीन दाखिल की गयी है। आगे यह निवेदन किया गया है कि जे॰ ई॰ टी॰ अधिनियम में परिसीमा की अवधि विहित नहीं की गयी है, अत: कार्यालय नोट कि अपील परिसीमा के विधि द्वारा वर्जित है और अपील दाखिल करने में 428 दिन का विलंब हुआ है, भ्रामक है।

3. प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित होने वाले अधिवक्ता, श्री आनन्द सेन निवेदन करते हैं कि यद्यपि परिसीमा अधिनियम के अनेक अनुच्छेदों में विहित परिसीमा वर्तमान मामले पर लागू नहीं होता है किन्तु माननीय सर्वोच्च न्यायालय के दृष्टिकोण में अपील युक्तियुक्त समय के भीतर दाखिल की जानी चाहिए। यह निवेदन किया गया है कि जे॰ ई॰ टी॰ अधिनियम की धारा 10(1)(b) के मुताबिक मूल आवेदन आक्षेपित आदेश जारी किए जाने की तिथि से छह माह के भीतर अधिकरण के समक्ष दाखिल किया जा सकता है। अत: वर्तमान मामले में अपील दाखिल करने की युक्तियुक्त अवधि अधिकरण के आदेश के पारित होने की तिथि से छह माह है। यह निवेदन किया गया है कि चूँकि वर्तमान मामले में अपील एक वर्ष से अधिक के विलम्ब अर्थात् 428 दिनों के बाद दाखिल किया गया है, अत: इसे विलंब के आधार पर खारिज कर देना होगा।

4. निवेदनों को सुनने के बाद, मैंने मामले के अभिलेख और प्रासंगिक विधि का परिशीलन किया है। जैसा ऊपर ध्यान में लिया गया है, वर्तमान अपील जे॰ ई॰ टी॰ अधिनियम की धारा 15 के अधीन दाखिल की गयी है। जे॰ ई॰ टी॰ अधिनियम की धारा 15 के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि अपील दाखिल करने के लिए परिसीमा की कोई अवधि विहित नहीं की गयी है। जे॰ ई॰ टी अधिनियम की धारा 10 इसके समक्ष लंबित मामलों को निपटारे के लिए अधिकरण द्वारा अनुसरित की जाने वाली प्रक्रिया विहित करती है। जबकि जे॰ ई॰ टी॰ अधिनियम की धारा 11 अधिकरण के समक्ष लम्बित मामलों के निस्तारण के लिए इसके द्वारा पालन की जाने वाली प्रक्रिया विहित करती है।

5. यहाँ यह उल्लिखित किया जा सकता है कि परिसीमा अधिनियम के अधीन सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन अपील दाखिल करने के लिए विहित समय 90 दिन है। परिसीमा अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो किसी विशेष विधि जैसे जे॰ ई॰ टी॰ अधिनियम के अधीन पारित निर्णय अथवा आदेश के विरुद्ध अपील दाखिल करने के लिए परिसीमा की अवधि विहित करता है। पूछे जाने पर इस न्यायालय के स्टाम्प रिपोर्टर ने कथन किया कि उन्होंने वर्तमान अपील को सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन दाखिल अपील मानते हुए परिसीमा की अवधि की गणना की थी क्योंकि **द्रोपदी बनाम हीरालाल, 34 All 495** में माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि अनेक अधिनियम हैं, उदाहरणस्वरूप, उत्तराधिकार अधिनियम, भूमि अर्जन अधिनियम, प्रोबेट और प्रशासन अधिनियम जो उन अधिनियमों के अधीन कार्यवाही में सी॰ पी॰ सी॰ को लागू होने योग्य बनाते हैं और उच्च न्यायालय में अपील करने का अधिकार देते हैं किन्तु अपील के लिए परिसीमा अवधि विहित नहीं करते हैं, यह सदैव उपधारित किया गया है कि ऐसी अपीलें सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन दाखिल अपील है और इस प्रकार परिसीमा अधिनियम द्वारा शासित होते हैं।

6. मेरे दृष्टिकोण में, इलाहाबाद उच्च न्यायालय का पूर्वोक्त निर्णय वर्तमान मामले पर लागू नहीं होता है। माननीय न्यायाधीशों ने पूर्वोक्त निष्कर्ष पर इसलिए आए क्योंकि इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा विचार में लिए गए अनेक अधिनियम प्रावधानित करते हैं कि उन अधिनियमों के अधीन दाखिल मामलों पर सिविल प्रक्रिया संहिता में विहित प्रक्रिया लागू किए जाने योग्य होगी। वर्तमान मामले में अपील जे॰ ई॰ टी॰ अधिनियम की धारा 15 के अधीन दाखिल की गयी है। जे॰ ई॰ टी॰ अधिनियम की धारा 11 (1) विनिर्दिष्ट तौर पर प्रावधानित करती है कि अधिकरण द्वारा निपटाए गए मामलों में सी॰ पी॰ सी॰ में विहित प्रक्रिया लागू नहीं होती है। अत: इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा विनिश्चित निर्णयाधार लागू नहीं होता है जहाँ तक यह जे॰ ई॰ टी॰ अधिनियम के अधीन दाखिल अपील से संबंधित है। तद्नुसार, मैं अभिनिर्धारित करता हूँ कि परिसीमा अधिनियम की धारा 156 के अधीन अपील दाखिल करने के लिए विहित परिसीमा जे॰ ई॰ टी॰ अधिनियम के अधीन दाखिल अपील को शासित नहीं करेगी। परिणामस्वरुप मैंने अभिनिर्धारित किया कि इस न्यायालय को यह इंगित करने में स्टाम्प रिपोर्टर सही नहीं है कि वर्तमान अपील दाखिल करने में 428 दिनों का विलम्ब हुआ है।

7. यह सत्य है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि यदि पुनरीक्षण शक्ति के प्रयोग के लिए संविधि समय विहित नहीं भी करती है, इसका अर्थ यह नहीं है कि ऐसी शक्ति का प्रयोग कभी भी किया जा सकता है, बल्कि इसका प्रयोग युक्तियुक्त समय के भीतर किया

जाना चाहिए। ऐसा इसलिए है क्योंकि विधि किसी सुनिश्चित बात को एक काफी लंबी अवधि के बाद छोड़े जाने की अपेक्षा नहीं करती है। जब विधायिका समय सीमा, जिसके भीतर प्राधिकारी द्वारा पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग करना होगा, प्रावधानित नहीं करती है, स्वप्रेरणा से अथवा अन्यथा यह स्पष्ट है कि युक्तियुक्त समय के भीतर ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना उसमें अंतर्निहित है। इस संबंध में **संतोष कुमार शिवगोंदा पाटिल एवं अन्य बनाम बालासाहेब तुकाराम शेवाले एवं अन्य, (2009)9 SCC 352** में प्रकाशित मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट किया जा सकता है।

8. अत: ऐसा मामलों में जहाँ संविधि परिसीमा अवधि विनिर्दिष्टत: प्रावधानित नहीं करती है, न्यायालय के लिए यह देखना आवश्यक है अपील को युक्तियुक्त अवधि के भीतर दाखिल किया गया है या नहीं। अत: उस उद्देश्य के लिए, न्यायालय को विचाराधीन मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखना होगा। वर्तमान मामले में, आक्षेपित आदेश की तिथि से अपील दाखिल करने में 428 दिनों का विलम्ब हुआ है। आवेदक ने कथन किया है कि आदेश प्राप्त करने के पश्चात् वह अपनी बीमार माँ की सेवा-सुश्रुषा करने गाँव चला गया और वहाँ से लौटने के बाद उसने वर्तमान अपील दाखिल की। अत: यह प्रतीत होता है कि समय के पूर्व बिन्दु पर अपील दाखिल करने से अपीलार्थी को रोकने के लिए पर्याप्त कारण थे। इस मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में, मैं पाता हूँ कि युक्तियुक्त अवधि के भीतर अपील दाखिल की गयी है। इसे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित पूर्वोक्त विधि की दृष्टि में ग्रहण किया जा सकता है।

9. उक्त चर्चा की दृष्टि में, मैं कार्यालय को इस अपील को ग्रहण करने का निर्देश देता हूँ।

तद्नुसार, आई० ए० सं० 1097 वर्ष 2010 निपटायी जाती है।

10. आगे कार्रवाई के लिए रजिस्ट्रार जेनरल और स्टाम्प रिपोर्टर को इस आदेश की एक प्रति तामील की जाए।

माननीय एम० वाई० इकबाल एवं प्रदीप कुमार, न्यायमूर्तिगण

तारा चन्द्र सचदेवा

बनाम

उपश्रमायुक्त और कर्मकार प्रतिकर आयुक्त एवं अन्य

M. A. No. 48 of 2001. Decided on 29th March, 2010.

कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923—धारा 30—नियोजन के अनुक्रम में दुर्घटना की वजह से मृत्यु–दावेदार-प्रत्यर्थीगण को 72,441/- रु० का प्रतिकर अधिनिर्णीत–दाण्डिक न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति का निर्णय दावेदार के मामले को प्रतिकूल प्रभावित नहीं करेगा क्योंकि दाण्डिक न्यायालय ने यह निश्चायक निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया कि मृतक कर्मचारी नहीं था एवं खान में काम करता था–दुर्घटना वर्ष 1985 में घटी थी परन्तु निर्णय की तिथि तक भुगतान नहीं किया गया था–अगर दावा मामला दाखिल करने में 10 वर्षों के विलम्ब के आधार पर अधिनिर्णय अपास्त किया जाता है तो वह दावेदार को गम्भीर कठिनाई कारित करेगा–लेकिन, दावेदार प्रतिकर की राशि पर अधिक व्याज का हकदार नहीं है। (पैरा 4 से 7)

अधिवक्तागण.–Rajendra Prasad, Counsel for the Appellant; None, Counsel for the Respondents.

निर्णय

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.—अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री राजेन्द्र प्रसाद को सुना। नोटिस की तामीला के बावजूद प्रत्यर्थीगण की ओर से कोई भी उपस्थिति नहीं हुआ है।

2. यह अपील कर्मकार प्रति वाद संख्या 21 वर्ष 1993 में पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 4.3.1998 के उस निर्णय तथा आदेश के विरूद्ध निर्दिष्ट की गई है जिसके माध्यम से नियोजन के अनुक्रम में खान क्षेत्र में किसी झूबर महतो, की मृत्यु के लिये दावाकर्ता/प्रत्यर्थीगण को 72,441/- रुपये की राशि अधिनिर्णीत की गई है।

3. संक्षेप में, सुसंगत तथ्य इस प्रकार हैं कि दावाकर्ता/प्रत्यर्थीगण ने अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिकथन करते हुये, आयुक्त, कर्मकार प्रतिकर के समक्ष आवेदन दाखिल किया कि 7.2.1985 को, मृतक झूबर महतो की, अपीलार्थी के स्वामित्व वाली ओपेन माइन्स मिल में कार्य करते समय दस टन (10 टन) के भारी पत्थर के गिर जाने के कारण मृत्यु हो गई थी। भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304A एवं 34 के अधीन दाण्डिक वाद भी संस्थित किया गया था। यह प्रतीत होता है कि इस दाण्डिक वाद में, अभियुक्त व्यक्तियों को विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 1.7.1992 के निर्णय के निबन्धनों के अनुसार अन्तिम रूप से दोषमुक्त कर दिया गया था, तत्पश्चात् मृतक की विधवा ने विलम्ब की माफी की याचिका के साथ पूर्वोल्लिखित दावा वाद में आवेदन दाखिल किया। उक्त दावा का अपीलार्थी द्वारा इस बात से इन्कार करते हुये प्रतिवाद किया गया कि मृतक खानों में कर्मचारी नहीं था, वस्तुत: वह स्वयं ही अपनी मर्जी से बालू एकत्र करने के लिये खान परिसर में गया था और उसे 10 टन के भारी पत्थर के गिरे जाने के कारण उपहति उपगत हुई थी। आयुक्त अभिलेख में लाये गये तथ्यों तथा परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि मृतक कार्यरत था और दुर्घटना उस समय घटित हुई जब वह ड्यूटी पर था।

4. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता, श्री राजेन्द्र प्रसाद ने मुख्यत: इस आधार पर आदेश को चुनौती दिया कि दावा वाद दुर्घटना की तारीख से 10 वर्ष के पश्चात् दाखिल किया गया था और आयोग ने अपीलार्थी को सुनवाई का अवसर प्रदान किये बिना विलम्ब को माफ किया था। विद्वान अधिवक्ता ने अग्रेतर यह तर्क किया कि दाण्डिक मामले में, अपीलार्थी को इस आधार पर दोषमुक्त किया गया कि नियोजक तथा नियोजिती का सम्बन्ध सिद्ध नहीं हुआ था।

5. जहाँ तक दोषमुक्ति के निर्णय का सम्बन्ध है, उसके परिशीलन से, हमने यह पाया है कि दोषमुक्ति का निर्णय इस आधार पर पारित किया गया था कि अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेह से परे यह सिद्ध करने में असफल था कि अपराध अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा कारित किया गया था। दण्ड न्यायालय ने यह निर्णायक निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया है कि मृतक नियोजिती नहीं था वह खान में कार्यरत था। अत:, हमारे विचारित मत में, दण्ड न्यायालय का निर्णय किसी भी तरह से दावाकर्ता के वाद को प्रतिकूल ढंग से प्रभावित नहीं करेगा।

6. जहाँ तक दावा वाद दाखिल करने में विलम्ब का सम्बन्ध है, निश्चित रूप से आयुक्त ने अपीलार्थी को सुनवाई की नोटिस दिये बिना विलम्ब को माफ करने में त्रुटि कारित किया है। लेकिन, यदि अधिनिर्णय को उस आधार पर अपास्त किया जाता है तो उससे दावाकर्ता के पक्ष से गंभीर परिक्लेश कारित होगा क्योंकि दुर्घटना वर्ष 1985 में कारित हुई थी, लेकिन आज की तारीख तक मुआवजा संदाय नहीं किया गया है।

7. पूर्वोल्लिखित कारणों से, हम इस अपील में कोई भी गुणावगुण नहीं पाते हैं जिसे तद्नुसार निरस्त किया जाता है। तथापि, यह स्पष्ट किया जाता है कि दावाकर्ता/प्रत्यर्थीगण आयुक्त द्वारा

अधिनिर्णीत मुआवजे के हकदार होंगे। दावाकर्ता/प्रत्यर्थीगण मुआवजे की धनराशि पर अग्रेतर किसी भी ब्याज के हकदार नहीं होंगे। यह भी स्पष्ट किया जाता है कि इस अपील का निरस्तीकरण अन्य वाद में दृष्टान्त के रूप में नहीं माना जायेगा।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

किशोरी नियाक एवं अन्य

बनाम

हाराधन नियाक उर्फ हरि नारायण नियाक एवं अन्य

M. A. No. 275 of 2008. Decided on 19th April, 2010.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश 40, नियम 1—रिसीवर की नियुक्ति–वाद संपत्ति पर प्रतिवादी/अपीलार्थीगण कब्जे में है–रिसीवर नियुक्त करके कब्जे में बने पक्ष को कब्जाहीन नहीं किया जा सकता है–प्लीडर कमिश्नर का रिपोर्ट प्रतिवादीगण द्वारा कुप्रबंधन नहीं दर्शाता है–रिसीवर की नियुक्ति अपास्त। (पैरा 10 से 14)

निर्णयज विधि.–AIR 2000 SC 3513; 2000 (2) PLJR 100—Relied upon; 1998 (1) PLJR 776—Referred to.

अधिवक्तागण.–Mrs. Vandana Singh, For the Appellants; xxx, For the Respondents.

आदेश

पक्षों को सुना गया।

2. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि उन्होंने यह विविध अपील सब-जज I, बेरमो, तेनुघाट द्वारा पारित दिनांक 8.7.2008 के आदेश के विरुद्ध दाखिल की है। बँटवारा वाद सं॰ 19 वर्ष 2006 से उद्भूत रिसीवर की नियुक्ति के लिए प्रार्थना करते हुए वादीगण-प्रत्यर्थीगण ने आदेश 40, नियम 1 सी॰ पी॰ सी॰ सहपठित धारा 151 सी॰ पी॰ सी॰ के अधीन आवेदन दाखिल किया है। इस बात के न्याय निर्णयन एवं घोषणा हेतु वादीगण ने वाद दिनांक 22.5.2007 को दाखिल किया कि वाद भूमि में वादीगण का हिस्सा 5/12 है और आगे अंतिम डिक्री पारित करने और वादीगण के हिस्से को काटकर अलग करने के लिए सर्वे की जानकारी युक्त प्लीडर कमिश्नर को नियुक्त करने और अंतिम डिक्री तैयार करने के बाद वाद भूमि से निकाले गए उनके हिस्से पर वादीगण को खास कब्जा दिलाने की भी प्रार्थना की है।

3. वादीगण ने यह अभिकथन करते हुए रिसीवर की नियुक्ति के लिए आवेदन दाखिल किया है कि प्रतिवादीगण-अपीलार्थीगण ने अपने हिस्से से अधिक वाद भूमि का जबरन कब्जा ले लिया है और खांजो नदी से बालू संग्रह करके और खाता सं॰ 19 के प्लॉट सं॰ 1077 से होकर ट्रक से ढोकर वृहत रॉयल्टी जमा कर रहे हैं। इसी प्रकार, प्रतिवादीगण-अपीलार्थीगण ने उक्त भूखंड पर ईंट की भट्‌टी भी लगायी है। वादीगण-प्रत्यर्थीगण ने आगे कथन किया कि प्रतिवादीगण-अपीलार्थीगण व्यवसाय भी करके रॉयल्टी जमा कर रहे हैं। वादीगण-प्रत्यर्थीगण ने यह भी अभिकथन किया कि प्रतिवादीगण-अपीलार्थीगण ने आम बगीचा से अनेक आम का पेड़ काटा है और पारस, महुआ, आदि के वृक्षों के साथ इसे बेचा था।

4. प्रतिवादीगण-अपीलार्थीगण ने यह कथन करते हुए प्रत्युत्तर दाखिल किया कि रिसीवर की नियुक्ति करके उन्हें कब्जाहीन नहीं किया जा सकता है और वाद संपत्ति को नुकसान का अभिकथन

झूठा और मनगढ़ंत है। उन्होंने आगे अभिकथन किया कि पक्षों के बीच 1953 में बँटवारा हो चुका था और दोनों पक्षों ने अपनी-अपनी भूमि का कुछ अंश बेचा है।

5. अपीलार्थीगण-प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि पक्षों के बीच भूमि विवाद था जिसके कारण वादीगण-प्रत्यर्थीगण के भाई की हत्या कर दी गयी थी जिसके लिए सत्र विचारण सं० 383 वर्ष 2000 शुरू किया गया था जिसमें प्रतिवादीगण-अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध किया गया था और प्लीडर कमिश्नर द्वारा दाखिल रिपोर्ट पर विचार करते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया गया था जो विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है और अपास्त किए जाने योग्य है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि आदेश 40 नियम 2 सी० पी० सी० के मुताबिक ''कब्जे में बने पक्ष को रिसीवर नियुक्त करके बेदखल नहीं किया जा सकता है।''

6. विद्वान अधिवक्ता ने **शिवजी सिंह बनाम बृजबंश सिंह एवं अन्य,** 2000 (2) PLJR 100; **सलीमा बी० बनाम प्यारी बेगम एवं एक अन्य, AIR 2000 SC 3513** एवं **तेतरी कुंअर एवं अन्य बनाम राजमानो कुंअर एवं अन्य,** 1998 (1) PLJR 776 में प्रकाशित मामलों में दिए गए निर्णयों पर विश्वास किया है।

7. दूसरी ओर, वादीगण-प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि दिनांक 8.7.2008 के आक्षेपित आदेश के अनुसरण में रिसीवर ने दिनांक 8.9.2008 को संपत्ति का कब्जा पहले ही ले लिया है। उन्होंने प्लीडर कमिश्नर की तीन मासिक रिपोर्ट भी प्रस्तुत किया है। ऐसी अंतिम रिपोर्ट फरवरी, 2008 में दाखिल की गयी थी और विचारण न्यायालय ने प्लीडर कमिश्नर के रिपोर्ट और इस तथ्य कि प्रतिवादीगण-अपीलार्थीगण संपत्ति का दुर्विनियोग कर रहे है और इसे विनष्ट कर रहे हैं, पर विचार करते हुए रिसीवर सही नियुक्त किया है।

8. पक्षों को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के बाद, यह प्रतीत होता है कि वादीगण-प्रत्यर्थीगण ने सब-जज-I, बेरमो, तेनुघाट के समक्ष वर्तमान बँटवारा वाद सं० 19 वर्ष 2006 दाखिल किया था और उसमें कथन किया कि भूमि मूलत: मगना तेली की है और इसे मैत्रीपूर्ण रूप से विभाजित किया गया था। मगना तेली के चार पुत्र थे और उसके उत्तराधिकारियों के बीच उसके अन्य सह-अंशधारियों से खेती और रसोई अलग होता था। उन्होंने आगे कथन किया कि वादीगण-प्रत्यर्थीगण और प्रतिवादीगण-अपीलार्थीगण मगना तेली के पुत्र हैं और वाद संपत्ति पर उनका पृथक कब्जा है। वादीगण द्वारा यह अभिकथन किया गया है कि प्रतिवादीगण ने अपने हिस्से से अधिक भूमि का कब्जा ले लिया था और वादीगण ने माप और सीमांकन करके वाद भूमि का बँटवारा मांगा था और प्रतिवादीगण प्रथम संवर्ग को वादीगण के अंश को विभाजित करने को कहा था जिससे उन्होंने इंकार कर दिया।

9. किन्तु प्रतिवादीगण-अपीलार्थीगण उपस्थित हुए और यह दावा करते हुए कि वे वाद संपत्ति पर काबिज हैं और बँटवारा का प्रश्न ही नहीं है, अपना-अपना लिखित कथन दाखिल किया।

10. इस प्रकार, यह स्वीकृत तथ्य है कि वर्तमान में प्रतिवादीगण-अपीलार्थीगण आदेश 40 नियम 1 सी० पी० सी० के अधीन याचिका दाखिल करने के बाद वाद संपत्ति पर काबिज है। प्लीडर कमिश्नर का रिपोर्ट, जिसे परिशिष्ट-4 के रूप में चिन्हित किया गया है, दर्शाता है कि प्लीडर कमिश्नर ने पाया कि खाता में बहुत पहले दर्शाए गए वृक्ष विद्यमान नहीं है, अन्यथा प्रतिवादीगण द्वारा दुरुपयोग किए जाने का रिपोर्ट नहीं दिया जाता। मामले के उस दृष्टिकोण में, चूँकि आदेश 40, नियम 1 के मुताबिक विधि में सुनिश्चित किया गया है कि ''कब्जे में बने पक्ष को रिसीवर नियुक्त करके बेदखल नहीं किया जा सकता है।''

11. 2000 (2) PLJR 100 में प्रकाशित **शिवजी सिंह बनाम बृजबंश सिंह एवं अन्य** मामले में पटना उच्च न्यायालय ऐसा ही मामला को निपटाते हुए इस निश्चयात्मक निष्कर्ष पर आया कि ''बँटवारा वाद में सह अंशधारी अपने अंश से अधिक के कब्जे में हो सकता है किन्तु उसे केवल इसी आधार पर रिसीवर नियुक्त करके इससे बेदखल नहीं जा सकता है क्योंकि विचारण के अंतिम दौर में रिसीवर की नियुक्ति विधायिका के आशय को विफल करेगी और मामले को जटिल बनाएगी; वाद भूमि पर कब्जा पाने के उद्देश्य से रिसीवर नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए, आदेश अपास्त किया गया और अवर न्यायालय को निर्देशानुसार तीन माह के भीतर वाद निपटाने का निर्देश दिया गया।

12. वर्तमान मामले में भी, मैं पाता हूँ कि प्लीडर कमिश्नर का रिपोर्ट प्रतिवादीगण के हाथों कोई कुप्रबंध नहीं दर्शाता है और केवल यह बयान देना कि मूल खाता में दर्शाए गए वृक्ष उपस्थित नहीं है, नुकसान या कुप्रबंध सिद्ध नहीं करता है।

13. सलीमा बी॰ बनाम प्यारी बेगम एवं एक अन्य, AIR 2000 SC 3513 में प्रकाशित मामले में भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर आया कि रिसीवर की नियुक्ति केवल तभी की जा सकती है जब यह न्यायोचित और सुविधाजनक हो और तब भी जब वादीगण-प्रत्यर्थीगण के पक्ष में प्रथम दृष्टया मामला हो और मामला अत्यावश्यक कदम जैसे रिसीवर की नियुक्ति, उठाने की मांग करता हो। वर्तमान मामले में रिसीवर की नियुक्ति जैसी ऐसी कोई अत्यावश्यकता नहीं है।

14. मामले के उस दृष्टिकोण में, मेरे मत में, मामले के तथ्य पर विचार करते हुए, आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है। तद्नुसार, विचारण न्यायालय द्वारा रिसीवर की नियुक्ति अपास्त की जाती है।

15. किन्तु, यह निर्देश दिया जाता है कि विचारण न्यायालय द्वारा इस आदेश की प्राप्ति की तिथि से तीन माह के भीतर विचारण न्यायालय वाद का विचारण समाप्त करेगा और यदि वादीगण अथवा प्रतिवादीगण में से कोई भी मामले में विलम्ब करता है और अनावश्यक स्थगन की प्रार्थना करता है, इससे इंकार किया जाएगा और यदि विचारण तीन माह के भीतर समाप्त नहीं किया जाता है, वादीगण को पुन: रिसीवर की नियुक्ति की प्रार्थना करने की छूट होगी।

16. पूर्वोक्त संप्रेक्षण/निर्देश के साथ, श्री बी॰ एन॰ सिंह, सब-जज-I, बेरमो, तेनुघाट द्वारा पारित दिनांक 8.7.2008 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है और अपील खारिज की जाती है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

अजय कुमार केजरीवाल (458 में)

अमित कुमार केजरीवाल एवं सुमित कुमार केजरीवाल (52 में)

संजीत कुमार मरोदिया (53 में)

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य (सभी में)

W.P. (Cr.) Nos. 458 of 2009 with 52 and 53 of 2010. Decided on 21th April, 2010.

(क) भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 406, 420, 464, 467, 468 और 471—छल एवं कूटरचना—अभिखंडन याचिका—रॉयल्टी का भुगतान नहीं किया जाना—प्रवंचना करके याचीगण द्वारा किसी दस्तावेज के साथ छेड़छाड़ नहीं की गयी अथवा इसे प्राप्त नहीं किया

गया–संपत्ति सौंपे जाने के लिए याची ने कोई कपटपूर्ण अथवा बेईमान उत्प्रेरण का प्रस्ताव नहीं किया था–यथा अभिकथित निर्मित नहीं हुआ है–प्राथमिकी अभिखंडित।
(पैरा 12 से 14 एवं 16)

(ख) झारखंड खनिज एवं खनन रियायत नियमावली, 2004—नियम 56—रॉयल्टी का भुगतान नहीं किया जाना–यह सिविल परिणाम अंतर्ग्रस्त करता है–किसी के ऊपर दांडिक दायित्व नहीं लादा जा सकता है। (पैरा 15)

अधिवक्तागण.–Mr. Sumeet Gadodia, For the Petitioners; Mr. Jalisur Rahman, For the State.

आदेश

तीनों रिट याचिकाओं को साथ सुना गया और चूँकि तीनों मामले एक ही मामले से उद्भूत होते हैं, उन्हें एक ही आदेश द्वारा निपटाया जा रहा है।

2. समस्त तीनों मामले याचीगण द्वारा भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 406, 420, 467, 468, 471 के अधीन और झारखंड खनिज एवं खनन समुदान नियमावली, 2004 की धारा 56 के अधीन भी संस्थापित गिरिडीह (मुफस्सिल) पी॰ एस॰ केस सं॰ 65 वर्ष 2009 (जी॰ आर॰ सं॰ 445 वर्ष 2009) की प्राथमिकी के अभिखंडन हेतु दाखिल की गयी है।

3. तीनों मामलों को दाखिल किए जाने हेतु तथ्य ये हैं कि सहायक खनन अधिकारी, गिरिडीह (सूचक) सहित चार व्यक्तियों से गठित टीम ने दिनांक 16.1.2009 को मेसर्स स्वाति स्पाँज एण्ड आयरन (प्रा॰) लि॰, मोहनपुर गिरिडीह की इकाई हार्ड कोक कारखाना का निरीक्षण किया। निरीक्षण के दौरान दिनांक 15.4.2008 से दिनांक 15.1.2009 तक 4585.13 मेट्रिक टन कोयला उपभोग किया दिखाया गया था जबकि कम्पनी के उत्पादन अनुसूची/तालिका के मुताबिक कोयला का कुल उपभोग 6480 मेट्रिक टन होना चाहिए था। इस उपधारणा पर मत बनाया गया कि कोयला के कुल उपभोग की लेखा-पुस्तिका में की गयी प्रविष्टि 1894.87 मेट्रिक टन कम था और तद्द्वारा कोयला की उक्त मात्रा की सीमा तक भुगतान योग्य रॉयल्टी का भुगतान कम्पनी द्वारा नहीं किया गया था।

4. यह भी पाया गया था कि ब्लास्ट फर्नेस, हार्ड-कोक प्लान्ट के निर्माण के लिए वृहत मात्रा में खनिज का उपयोग किया गया था जिसमें ईंटों, पत्थरों, बालू का इस्तेमाल किया गया था पर उक्त खनिजों पर रॉयल्टी, जो 3,20,000/-रुपया बनता है, का भुगतान नहीं किया गया था। इस प्रकार, अभिकथन किया गया था कि कम्पनी ने गैर-कानूनी कृत्य करके 12,67,437/-रुपयों की राशि का दुर्विनियोग किया है।

5. तत्पश्चात्, मामला उप-कमिश्नर, गिरिडीह के ध्यान में लाया गया था जिन्होंने सहायक खनन अधिकारी, गिरीडिह प्रत्यर्थी सं॰ 2 को कानूनी कार्रवाई करने का निर्देश दिया जिस पर प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 406, 420, 467, 468, 471 के अधीन और झारखंड खनिज एवं खनन समुदान नियमावली, 2004 की धारा 56 के अधीन भी अजय कुमार केजरीवाल, कम्पनी का निदेशक [डब्ल्यू॰ पी॰ (दां॰) सं॰ 458 वर्ष 2009 में याची] के साथ-साथ अन्य निदेशकों अर्थात् अमित कुमार केजरीवाल और सुमित कुमार केजरीवाल [डब्ल्यू॰ पी॰ (दां॰) सं॰ 52 वर्ष 2010 में याचीगण] और प्रबंधक, संजीत कुमार मरोदिया [डब्ल्यू॰ पी॰ (दां॰) सं॰ 53 वर्ष 2010 में याची] के विरुद्ध गिरिडीह (मुफ्फसिल) पी॰ एस॰ केस सं॰ 65 वर्ष 2009 संस्थापित किया।

6. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री सुमित गडोडिया ने निवेदन किया कि कम्पनी मेसर्स स्वाति स्पंज एण्ड आयरन (प्रा॰) लि॰ स्पंज आयरन के निर्माण में लगी है जिसके लिए कच्चामाल, लौह अयस्क और हार्डकोक की आवश्यकता होती है और इस कारण कोयला को हार्ड कोक में परिवर्तित करने के लिए उक्त कम्पनी द्वारा हार्डकोक प्लान्ट स्थापित किया गया है जिसका

प्रयोग ब्लास्ट फर्नेस में किया जा रहा है और इस उद्देश्य के लिए देय रॉयल्टी का भुगतान करने के बाद मेसर्स सेन्ट्रल कोलफिल्ड्स लिमिटेड सहित अनेक खान स्वामियों से कम्पनी कोयला खरीदती है। जब कम्पनी अपने क्रियाकलापों में लगी हुई थी, निरीक्षण किया गया था और निरीक्षण दल ने स्टॉक सत्यापित करने के बाद अभिकथन किया कि यद्यपि कम्पनी ने लेखा-पुस्तिका में 4585.13 मेट्रिक टन की सीमा तक कोयला की खरीदगी दर्शायी है परन्तु उत्पादन तालिका सुझाती है कि इसने उतने कोयला से अधिक उपभोग किया होगा जितना लेखा-पुस्तिका में दर्शाया गया है और तद्द्वारा यह कहा गया है कि कम्पनी ने अधिक कोयला, जिसे 1894.87 मेट्रिक टन आकलित किया गया था, पर रॉयल्टी का भुगतान नहीं किया है और उसके लिए अभियोजन आरंभ किया गया है जिसके द्वारा यह अभिकथित किया गया है कि याचीगण, जिनमें से तीन निदेशक हैं और उनमें से एक कम्पनी का प्रबंधक है, ने कूटरचना और छल का अपराध किया है। किंतु यदि अभिकथनों को सत्य भी स्वीकार किया जाए, कल्पना की किसी सीमा में याचीगण को कूटरचना, छल अथवा दुर्विनियोग का अपराध करने वाला नहीं कहा जा सकता है।

7. विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि अभियोजन मामले के मुताबिक यह भी अभिकथन किया गया है कि याचीगण ने 'झारखंड खनिज एवं खनन समुदान नियमावली, 2004' के नियम 56 का भी उल्लंघन किया है क्योंकि यह कहा गया है कि याचीगण ने ब्लास्ट फर्नेस और अन्य प्लान्टों के निर्माण में प्रयुक्त लघु खनिजों पर रॉयल्टी का भुगतान नहीं किया था किन्तु वह प्रावधान कभी भी दंडात्मक प्रतीत नहीं होता है और इस प्रकार उस प्रावधान के अधीन अभियोजन नहीं होगा। इस प्रकार, निवेदन किया गया है कि प्राथमिकी में किए गए अभिकथन अपराधों में से किसी को गठित नहीं करता है जिसके अधीन मामला दर्ज किया गया है और इसलिए प्राथमिकी अभिखंडित किए जाने योग्य है।

8. मामलों में से एक, डब्ल्यू॰ पी॰ (दां॰) सं॰ 458 वर्ष 2009 में प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया गया है जिसमें वही अभिवाक् जो जाँच रिपोर्ट में है जो प्राथमिकी का अंश है, किया गया है जिसमें कथन किया गया है कि यद्यपि याचीगण ने लेखा पुस्तिका में दर्शाए गए कोयला से अधिक का उपभोग किया है और इस प्रकार 1894.87 मेट्रिक टन की सीमा तक प्रयुक्त अधिक कोयला पर रॉयल्टी का भुगतान करने के दायी हैं किन्तु इसका भुगतान नहीं किया गया है और इस प्रकार याचीगण ने छल, कूटरचना और दुर्विनियोग का अपराध किया है और झारखंड खनिज एवं खनन समुदान नियमावली, 2004 के अधीन भी अपराध किया है क्योंकि लघु खनिजों पर रॉयल्टी का भुगतान नहीं किया गया है।

9. पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद अभियोजन का मामला अधिक कोयला पर रॉयल्टी का भुगतान नहीं किया जाना प्रतीत होता है जिसका प्रयोग तो किया गया था किन्तु लेखा पुस्तिका में दर्शाया नहीं गया था। तैयार माल के कुल उत्पादन और तैयार माल उत्पादित करने में जितना कोयला का प्रयोग किया गया होगा को विचार में लेने के बाद संगणना के आधार पर अधिक प्रयोग के संबंध में मत निर्मित किया गया प्रतीत होता है। संगणना किस हद तक सही है, न्यायालय को इस मामले पर विचार करने की जरूरत नहीं है किन्तु स्वयं अभियोजन का मामला है कि 1894.87 मेट्रिक टन कोयला पर रॉयल्टी का भुगतान नहीं किया गया था, को विचार में लेने पर यह प्रश्न निश्चय ही उद्‌भूत होता है क्या यह भारतीय दंड संहिता के अधीन अनुध्यात कूटरचना, छल अथवा दुर्विनियोग का मामला बनाता है?

10. धाराएँ 467, 468, 471 और 472 के अधीन अपराध गठित करने की पुरोभाव्य शर्त कूटरचना है जो तब आकृष्ट होती है जब कोई भारतीय दंड संहिता की धारा 464 के निबंधनों के अनुसार किसी गलत दस्तावेज (अथवा झूठे इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख अथवा इसके अंश) को बनाता है।

11. भारतीय दंड संहिता की धारा 464 का विश्लेषण दर्शाता है कि यह गलत/झूठे दस्तावेजों को तीन कोटियों में विभक्त करता है।

(1) प्रथमतः जहाँ कोई व्यक्ति यह विश्वास दिलाने के आशय के साथ किसी दस्तावेज को गैर ईमानदार रूप से अथवा कपट पूर्वक बनाता है अथवा निष्पादित करता है कि ऐसा दस्तावेज किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अथवा प्राधिकारी द्वारा बनाया अथवा निष्पादित किया गया है जिसके बारे में वह जानता है कि इसे उसके द्वारा अथवा उसके प्राधिकार द्वारा बनाया अथवा निष्पादित नहीं किया गया था।

(2) द्वितीयतः यदि कोई व्यक्ति गैर ईमानदार रूप से अथवा कपटपूर्वक रद्दकरण अथवा अन्यथा द्वारा किसी तात्विक अंश में, कानूनन प्राधिकार के बिना किसी दस्तावेज को, स्वयं द्वारा अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा बनाए अथवा निष्पादित किए जाने के बाद, परिवर्तित करता है।

(3) तृतीयतः यदि कोई व्यक्ति यह जानते हुए कि ऐसा व्यक्ति (a) दिमागी हालत खराब होने, (b) नशे में, अथवा (c) उसे की गयी प्रवंचना के कारण दस्तावेज के विषय वस्तु अथवा परिवर्तन की प्रकृति के बारे में नहीं जान सकता है, उस व्यक्ति से किसी दस्तावेज को हस्ताक्षरित, निष्पादित अथवा परिवर्तित कराने के लिए गैर ईमानदार रूप से अथवा कपटपूर्वक कार्य करता है।

12. संक्षेप में, किसी व्यक्ति को ''झूठा दस्तावेज'' बनाता हुआ कहा जाता है यदि (i) उसने कोई अन्य व्यक्ति होने अथवा किसी अन्य द्वारा प्राधिकृत होने का दावा करते हुए दस्तावेज बनाया अथवा निष्पादित किया हो, अथवा (ii) उसने दस्तावेज को परिवर्तित किया अथवा छेड़छाड़ किया हो, अथवा (iii) उसने होशरहित व्यक्ति को प्रवंचित कर दस्तावेज प्राप्त किया हो।

13. पूर्वोक्त परिस्थितियों में, भले ही 1894.87 मेट्रिक टन कोल पर रॉयल्टी का भुगतान नहीं किया गया है, याचीगण को कूटरचना का अपराध करता हुआ नहीं कहा जा सकता है क्योंकि याचीगण ने अभिकथित रूप से किसी दस्तावेज को परिवर्तित अथवा उससे छेड़छाड़ नहीं किया है अथवा प्रवंचना द्वारा अथवा अपने इन्द्रिय पर नियंत्रणहीन व्यक्ति से दस्तावेज प्राप्त नहीं किया है और न ही उन्हें किसी अन्य होने अथवा किसी अन्य द्वारा प्राधिकृत होने का दावा करते हुए किसी दस्तावेज को निष्पादित करता हुआ कहा जा सकता है और इस प्रकार भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 467, 468, 471 अथवा 472 के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है।

14. जहाँ तक छल और दुर्विनियोग के अपराध का संबंध है, मैं यह समझने में विफल हूँ कि अभिकथित कृत्य किस तरह भारतीय दंड संहिता की धारा 420 अथवा 406 के अधीन अपराध गठित करते हैं क्योंकि याचीगण पर किसी झूठे अथवा भ्रामक प्रतिनिधित्व द्वारा अथवा किसी अन्य कार्रवाई अथवा लोप द्वारा प्रवंचना का आरोप नहीं लगाया गया है और न ही याचीगण ने किसी संपत्ति को सौंपे जाने के लिए कपटपूर्ण अथवा गैर ईमानदारी से उत्प्रेरण प्रस्तावित किया था अथवा किसी व्यक्ति द्वारा ऐसी संपत्ति रखे रहने के लिए अनुमति दी थी अथवा किसी चीज को करने या न करने के लिए किसी को, जो वह नहीं करता यदि उसे इस तरह प्रवंचित नहीं किया जाता, आशयपूर्वक उत्प्रेरित किया था। इस प्रकार, प्राथमिकी में किए गए अभिकथन से छल अथवा दुर्विनियोग का अपराध नहीं बनता है।

15. जहाँ तक झारखंड खनिज एवं खनन समुदान नियमावली, 2004 के नियम 56 के उल्लंघन का संबंध है, नियम 56 अनुबंधित करता है कि निर्माण प्रक्रिया में लगे सारे व्यक्ति सुनिश्चित करेंगे कि निर्माण कार्य में उपयोग किए जा रहे सारे लघु खनिज लाइसेन्सी से वैध चालान के अधीन खरीदे गए हैं जिसमें विफल रहने पर व्यक्ति रॉयल्टी और इसकी पेनाल्टी का भुगतान करने के लिए दायी होगा जो स्वयं स्पष्ट करता है कि यदि रॉयल्टी का भुगतान नहीं किया जाता है, राशि की प्राप्ति के लिए

दोषी व्यक्ति पर कार्यवाही की जा सकती है और इस प्रकार यह सिविल परिणाम अंतर्ग्रस्त करता है। परिणामस्वरुप किसी को दांडिक दायित्व का जिम्मेवार नहीं बनाया जा सकता है।

16. परिस्थितियों के अधीन, मैं पाता हूँ कि प्राथमिकी में किए गए अभिकथन अपराधों में से किसी को गठित नहीं करते हैं जिनके अधीन इसे दर्ज किया गया है और इस कारण यह अभिखंडित किए जाने योग्य है। तद्नुसार, इसे अभिखंडित किया जाता है। परिणामस्वरुप तीनों रिट याचिकाएँ अनुज्ञात की जाती है।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

जगरनाथ सिंह

बनाम

बिमलेन्दु पाठक

F.A. No. 111 of 2000 (R). Decided on 20th April, 2010.

एल॰ ए॰ केस सं॰ 69 वर्ष 1986 में श्री ए॰ ए॰ गौरी, विद्वान सब-जज, प्रथम, बोकारो, चास द्वारा पारित दिनांक 21.7.1999 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध।

भूमि अर्जन अधिनियम, 1894—धाराएँ 4, 18 एवं 30—भूमि का अर्जन–मुआवजा–हकदारी–भूमि के ऊपर कब्जे का दोनों पक्षों का दावा–आवेदक का दावा खाता द्वारा समर्थित है जबकि विपक्षी पक्षकार का दावा किसी दस्तावेज द्वारा समर्थित नहीं है–अरजिस्ट्रीकृत विलेख की छाया प्रतिलिपि को अभिधान के दस्तावेज के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है–अपील खारिज। (पैरा 16 से 18)

अधिवक्तागण.–Mr. A. K. Sahani, For the Appellant; Mr. S. N. Das, For the Respondent.

प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति.–यह प्रथम अपील एल॰ ए॰ केस सं॰ 69 वर्ष 1986 में श्री ए॰ ए॰ गौरी, विद्वान सब-जज प्रथम, बोकारो, चास द्वारा पारित दिनांक 21.7.1999 के निर्णय और डिक्री से उद्भूत होती है जिस निर्णय के द्वारा उन्होंने आवेदक-प्रत्यर्थी के मामले को प्रतिवाद के साथ और व्यय के बिना अनुज्ञात किया है और आवेदक बिमलेन्दु पाठक को मुआवजा लाभ पाने का हकदार घोषित किया गया था।

2. अपीलार्थी जगरनाथ सिंह की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि वह भूमि अर्जन मामले में विपक्षी पक्षकारों में से एक था और उसके दस्तावेजों और गवाहों पर समुचित रूप से विचार नहीं किया गया था और विद्वान अवर न्यायालय को आवेदक के पक्ष में मामला विनिश्चित नहीं करना चाहिए था जब प्रश्नगत संपत्ति के संबंध में विवाद था।

3. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि किसी भी मौखिक अथवा दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा अपीलार्थी यह सिद्ध करने में विफल रहा कि संपत्ति के ऊपर कभी भी उसका कब्जा था और उसका मामला किसी दस्तावेज पर आधारित नहीं था और लगान रसीद की कुछ छाया प्रतिलिपि के आधार पर जिसकी मूलप्रति भी अपीलार्थी के पास उपलब्ध नहीं थी, वाद संपत्ति पर उसका दावा नहीं है और इसमें आवेदक-प्रत्यर्थीगण जो अभिलिखित अभिधारी के पुत्र है, द्वारा भूमि का खतियान सिद्ध किया गया था। मामले के उस दृष्टिकोण में, विद्वान सब-जज प्रथम, बोकारो, चास ने आवेदन को सही अनुज्ञात किया है।

4. दोनों पक्षों को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के बाद मैं पाता हूँ कि चास पी॰ एस॰ के अंतर्गत प्लॉट सं॰ 939, खाता सं॰ 4, मौजा सं॰ 77, मौजा सिंदूर पट्टी वाली 3.25 एकड़

क्षेत्रवाली भूमि इसमें आवेदक-प्रत्यर्थी बिमलेन्दु पाठक की थी और आवेदक इसके शांतिपूर्ण कब्जे में है। उक्त क्षेत्र में से दक्षिण-पूर्व रेलवे ने 11 डिसमील भूमि अपने उद्देश्य के लिए अर्जित किया था जो तलगोरिया रेलवे स्टेशन के पार्श्व में है और जिसके बारे में भूमि अर्जन विभाग ने आवेदक को सूचित किया था। तत्पश्चात्, किसी चट्टू सिंह, पुत्र स्व॰ श्याम सिंह, सिंदूर पट्टी द्वारा एक आक्षेप याचिका दाखिल की गयी थी जिसने उक्त भूमि पर दावा किया था। आवेदक द्वारा छट्टू सिंह के दावा का विरोध किया गया जिसने कथन किया कि दावा असद्भावपूर्व है क्योंकि भूमि उसके पिता श्याम सिंह की थी जो आबाद खाता सं॰ 4, मौजा सिंदूर पट्टी का अभिलिखित अभिधारी है और उसका नाम अंतिम सर्वे सेटलमेन्ट में अभिलिखित किया गया है और वह पहले भूतपूर्व-भूस्वामी को लगान दे रहा था और जमीन्दारी निहित किए जाने के बाद बिहार राज्य को दे रहा था।

5. मामले को भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 30 के अधीन भूमि अर्जन न्यायाधीश, चास, बोकारो को निर्दिष्ट किया गया था। तत्पश्चात, पक्षों को नोटिस जारी किया गया था और वे मामले में उपस्थित हुए थे।

6. यह प्रतीत होता है कि बाद में आपत्तिकर्त्ता छट्टू सिंह की मृत्यु हो गयी और उसके पुत्रों अर्थात् जगन्नाथ सिंह, अदालत सिंह और कृष्णा सिंह को मामले में पक्ष के रूप में पक्षकार बनाने के लिए आवेदक ने आदेश XXII, नियम 4 सी॰ पी॰ सी॰ के अधीन आवेदन दाखिल किया। प्रतिस्थापन के लिए उक्त याचिका दिनांक 18.7.1998 के इसके आदेश द्वारा अनुज्ञात की गयी थी और तत्पश्चात् अपीलार्थी जगन्नाथ सिंह उपस्थित हुआ और दिनांक 20.2.99 को अपना कारण बताओ दाखिल किया। यह ध्यान में लेना आवश्यक है कि उसके अन्य भाई अर्थात् अदालत सिंह और कृष्णा सिंह मामले में उपस्थित नहीं हुए थे। आपत्तिकर्त्ता-अपीलार्थी ने यह मामला बनाया कि प्रश्नगत भूमि इसमें के आवेदक-प्रत्यर्थी के पिता विष्णु प्रसाद पाठक की थी किन्तु बाद में राम नारायण पाठक के पुत्र विष्णु पाठक और दामोदर पाठक ने वर्ष 1945 में प्रश्नगत भूमि के लिए किसी सुधीर मोहन गांगुली के पक्ष में रजिस्टर्ड विक्रय विलेख निष्पादित किया और तत्पश्चात् उसी वर्ष एरियल पेपर मिल॰ कं॰ लि॰ ने उक्त पट्टेदार से अन्य भूमि सहित प्रश्नगत भूमि खरीद लिया और व्यवसाय चलाने के लिए इसका कब्जा लिया और बाद में वर्ष 1952 में अर्थात् 21.9.52 को कम्पनी ने प्रश्नगत भूमि के साथ अन्य भूमि को छट्टू लाल सिंह, विपक्षी पक्षकारों का पिता, को पट्टा के विलेख के माध्यम से दे दिया और तब से पिता और उसके बाद उसके पुत्र (वि॰ प॰) उक्त भूमि पर काबिज है।

7. यह प्रतीत होता है कि विचारण के दौरान आवेदक ने तीन गवाहों अर्थात् ए॰ डब्ल्यू॰ 1 बिमलेन्दु पाठक, ए॰ डब्ल्यू॰ 2, नागेन्द्र नाथ सिंह और ए॰ डब्ल्यू॰ 3 कृति प्रसाद सिंह का परीक्षण भी किया था।

8. आवेदक ने खाता सं॰ 4, मौजा सिंदूर पट्टी का मूल खतियान दाखिल किया है जिसे प्रदर्श-4 के रूप में चिन्हित किया गया है।

9. आवेदक गवाह सं॰ 1 बिमलेन्दु पाठक ने न्यायालय में कथन किया कि प्रश्नगत भूमि उसके पिता विष्णु पाठक के नाम में अभिलिखित है और अपने पिता की मृत्यु के बाद वह रेलवे द्वारा अर्जित 11 डिस्मिल भूमि, जिसके लिए उसके नाम पर अधिनिर्णय तैयार किया गया था, सहित भूमि पर शांतिमय कब्जे में आया। उसने आगे कथन किया कि छट्टू सिंह के पुत्रों का भूमि पर दावा नहीं था।

10. आवेदक गवाह सं॰ 2, नागेन्द्र नाथ सिंह ने भी कथन किया कि प्रश्नगत भूमि उसके गाँव के पार्श्व में है और विष्णु पाठक के नाम में अभिलिखित है और यह आवेदक के कब्जे में है। उसने

आगे कथन किया कि उसने आवेदक से 1 एकड़ भूमि भी खरीदा था जिस पर उसने अपना मकान बनवाया है। उसने आगे कथन किया कि विपक्षी पक्षकार का इस पर अधिकार नहीं है।

11. आवेदक गवाह सं० 3 कृति प्रसाद सिंह ने भी कथन किया कि प्रश्नगत भूमि आवेदक के कब्जे में है। उसने आगे कथन किया कि उसने भी आवेदक से एक एकड़ भूमि खरीदी थी।

12. आगे यह भी प्रतीत होता है कि विचारण के दौरान विपक्षी पक्षकारों ने विपक्षी पक्षकार गवाहों अर्थात् ओ० पी० डब्ल्यू० 1 जगन्नाथ सिंह, ओ० पी० डब्ल्यू० 2 हनीम लाल सिंह और ओ० पी० डब्ल्यू० 3 लालजी सिंह का परीक्षण किया।

13. ओ० पी० डब्ल्यू० 1 जगन्नाथ सिंह ने कथन किया कि उसने एरियल पेपर मिल से वर्ष 1952 में 28 डिसमिल भूमि खरीदा था किन्तु विलेख रजिस्टर्ड नहीं किया गया था और एरियल पेपर मिल ने सुधीर मोहन गांगुली से भूमि खरीदा था किंतु कोई विलेख दाखिल नहीं किया गया था। उसने विवादित भूमि के संबंध में कोई रेन्ट रसीद दाखिल नहीं किया। उसके पास रजिस्टर्ड विलेख की प्रति नहीं है। विलेख पुरुलिया में रजिस्टर्ड कराया गया था। उसने स्वीकार किया कि रेलवे ने भूमि के संबंध में मुआवजा के लिए उसके पक्ष में नोटिस जारी नहीं किया था।

14. ओ० पी० डब्ल्यू०, 2 हनीम लाल सिंह ने कथन किया कि रजिस्टर्ड विलेख द्वारा एरियल पेपर मिल से उसके पिता द्वारा उक्त भूमि खरीदने के बाद विपक्षी पक्षकार जगन्नाथ सिंह भूमि पर काबिज था।

15. ओ० पी० डब्ल्यू० 3 लालजी सिंह ने भी कथन किया कि रजिस्टर्ड विलेख द्वारा एरियल पेपर मिल से उसके पिता द्वारा उक्त भूमि खरीदने के बाद विपक्षी पक्षकार जगनाथ सिंह भूमि के कब्जे में था।

16. किन्तु यह ध्यान में लेना महत्वपूर्ण है कि बिहार राज्य द्वारा प्रदान की गयी कोई रेन्ट रसीद अथवा रजिस्टर्ड विलेख विपक्षी पक्षकारों द्वारा दाखिल नहीं किया गया था और उन्होंने केवल अनरजिस्टर्ड विलेख की छाया प्रति दाखिल की थी जिस पर विचारण न्यायालय द्वारा विश्वास नहीं किया गया था। जमीन्दार द्वारा प्रदान की गयी कुछ रेन्ट रसीद आपत्तिकर्ता द्वारा दाखिल की गयी थी किन्तु साक्ष्य में यह दर्शाने के लिए कोई रजिस्टर-II नहीं लाया गया था कि जमीन्दार ने रजिस्टर-II में उन्हें अभिधारी के रूप में जमीन बेचा था। सुधीर मोहन गांगुली अथवा एरियल पेपर मिल का कोई विक्रय विलेख किसी पूर्व अंतरण को दर्शाने हेतु दाखिल नहीं किया गया था।

17. अत: साक्ष्यों पर विचार करने के बाद मैं पाता हूँ कि यद्यपि दोनों पक्षों ने भूमि पर कब्जे का दावा किया है किन्तु स्वीकृत रूप से आवेदक का दावा खाता-प्रदर्श-4 द्वारा समर्थित होता है जबकि विपक्षी पक्षकारों का दावा किसी दस्तावेज द्वारा समर्थित नहीं है। अनरजिस्टर्ड विलेख की छाया प्रति को किसी टाइटल के दस्तावेज के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है और प्रतीत होता है कि ऐसी छाया प्रतिलिपि, रजिस्टर-II अथवा किसी अन्य विश्वसनीय दस्तावेज की अनुपस्थिति में कुछ अधिकार सृजित करने के उद्देश्य से सृजित की जा सकती है।

18. मैं अपीलार्थी द्वारा दाखिल इस अपील में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है। एल० ए० केस सं० 69 वर्ष 1986 में पारित दिनांक 21.7.1999 का भूमि अर्जन न्यायाधीश का निर्णय और निष्कर्ष संपुष्ट किया जाता है और इसमें इस न्यायालय का हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

सुशीला देवी

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 979 of 2006. Decided on 1st July, 2010.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धाराएँ 467, 468, 420 एवं 120-B सह-पठित वित्त अधिनियम, 1981 की धाराएँ 49 (2-g) एवं 49 (3-d)—दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 239 एवं 482—छल एवं कूट-रचना-कम्पनी द्वारा अपराध-उन्मोचन याचिका की अस्वीकृति-याची एक निष्क्रिय भागीदार होने के नाते अपराध की कारिता के समय फर्म के कारोबार एवं कार्य-कलाप की प्रभारी नहीं थी-किसी व्यक्ति के विरूद्ध दाण्डिक दायित्व अधिरोपित करने के लिए आपराधिक मनः स्थिति एवं कृत्यों की प्रकृति की जानकारी पर भी विचार किया जाना है-अगर ऐसे तत्वों की कमी है तब अभियुक्त को अपराध के लिए उत्तरदायी ठहराया नहीं जा सकता है-दाण्डिक प्रतिनिधिक दायिता के अधिरोपण से संबंधित विधि पर उचित परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया गया-दाण्डिक कार्यवाहियां अभिखण्डित। (पैरा 7 से 11)

निर्णयज विधि.–AIR 1989 SC 1982; (2010) 3 SCC 330—Applied.

अधिवक्तागण.–M/s Anil Kumar Sinha, Abhishek Sinha, For the Petitioner; Mr. M. B. Lala, For the Opposite Parties.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता एवं विपक्षी पक्षकार के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची ने यह आवेदन चतुर्थ अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, जमशेदपुर द्वारा दाण्डिक पुनरीक्षण सं॰ 19 वर्ष 2001 में पारित दिनांक 28.2.2006 के आदेश के अभिखण्डन हेतु प्रार्थना करते हुए दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 482 के अधीन दाखिल की है जिसके द्वारा न्यायिक दण्डाधिकारी, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 13.12.2000 का आक्षेपित आदेश याची के विरूद्ध लम्बित कार्यवाहियों में उसके उन्मोचन की प्रार्थना अस्वीकार करते हुए संपुष्ट की गयी है, जिसे बिस्टूपुर थाना केस सं॰ 113 वर्ष 1999 (जी॰ आर॰ केस सं॰ 938 वर्ष 1999) के माध्यम से थाने में दर्ज प्राथमिकी के आधार पर संस्थित की गयी थी।

3. संक्षेप में कथित मामले का तथ्य यह है कि भागीदारों, अर्थात्, वर्तमान याची एवं उसके पति रतन लाल अग्रवाल (अब मृतक) द्वारा गठित एक पार्टनरशिप फर्म मेसर्स अशोक एण्ड कम्पनी के स्थापन में पुलिस निरीक्षक (खाद्य), अपराध अन्वेषण विभाग, जमशेदपुर द्वारा 27.5.1997 को एक छापा मारा गया था। बिहार वित्त अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन एवं कई अनियमितताओं का अभिकथित रूप से पता चलने पर बिहार वित्त अधिनियम की धाराएँ 49(2-g) एवं 49(3-d) एवं भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 467, 468, 420 एवं 120-B के अधीन अभिकथित अपराधों के लिए वर्तमान याची सहित फर्म के भागीदारों के विरुद्ध एक मामला दर्ज किया गया था।

इस चरण पर, जब विचारण प्रारम्भ हुआ था, याची ने मामले से अपने उन्मोचन की प्रार्थना करते हुए एक आवेदन दाखिल किया था, जिस आधार पर उन्मोचन की प्रार्थना की गयी थी वह यह था कि इस तथ्य को छोड़कर कि वह फर्म की एक निष्क्रिय भागीदार थी, वह किसी भी प्रकार से फर्म के

कारोबार चलाने या प्रबन्ध करने में संलिप्त नहीं थी एकमात्र उसका पति ही था जो फर्म के कारोबार का संचालन एवं प्रबन्धन किया करता था एवं अभिकथित अपराधों के सम्बन्ध में प्राथमिकी में निर्दिष्ट जो कुछ भी संव्यवहार हुए थे वे उसके पति द्वारा किये गये थे।

4. विद्वान अवर न्यायालय ने याची द्वारा पेश आधारों को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया और उन्मोचन की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया। विचारण न्यायालय के आक्षेपित आदेश के विरूद्ध याची ने सत्र न्यायाधीश के समक्ष एक पुनरीक्षण आवेदन दाखिल किया, इसे भी पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था।

5. आक्षेपित आदेशों की आलोचना करते हुए विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री अनिल कुमार सिन्हा ने तर्क दिया कि विद्वान विचारण न्यायालय एवं साथ ही पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश विधि में त्रुटिपूर्ण है एवं इन्हें न्यायिक विवेक का प्रयोग किये बगैर एवं उचित परिप्रेक्ष्य में मामले के तथ्यों का अधिमूल्यन किये बगैर यांत्रिक रूप से पारित किया गया है।

अपने तर्कों का विस्तार करते हुए विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि तथ्य जैसा कि सूचक/वि० प० सं० 2 के प्रति शपथ पत्र में भी स्वीकार किया गया है, यह है कि इस तथ्य के सिवाय कि याची पार्टनरशीप फर्म की एक निष्क्रिय भागीदार थी, परन्तु उसने ऐसे किसी अपराधकारी/अवैध संव्यवहार में कभी भी भाग नहीं लिया था जो उसपर सीधे तौर पर किसी दाण्डिक दायिता को आकर्षित कर सकता हो। विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि अब तक सुस्थापित है कि किसी व्यक्ति पर प्रतिनिधिक दायिता डाला नहीं जा सकता है जब तक यह स्थापित न हो कि अभिकथित अपराधों में वह व्यक्ति शामिल है।

नेशनल स्मॉल इन्डस्ट्रीज कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम हरमीत सिंह पेन्टल एवं एक अन्य के **(2010)3 SCC 330** में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय और साथ ही **AIR 1989 SC 1982** में प्रकाशित **श्याम सुन्दर एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय पर भरोसा करते हुए विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि ऐसे प्रतिनिधिक दायित्व किसी व्यक्ति पर मात्र इस कारण से डाला नहीं जा सकता है कि सम्बन्धित व्यक्ति निदेशक बोर्ड का सदस्य है या फर्म का निष्क्रिय सदस्य है।

6. दूसरी ओर विपक्षी पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता प्रति शपथपत्र में अंतर्विष्ट कथनों का संदर्भ बनाकर निवेदन करते हैं कि याची स्वीकार्यत: उस फर्म का एक भागीदार होने के नाते जिस फर्म के विरूद्ध मामला दर्ज किया गया था, उसे अपराधों के लिए प्रतिनिधिक दायित्व का वहन करना है, भले ही वह फर्म की एक निष्क्रिय भागीदार रही हो।

7. परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन अपराध से सम्बन्धित एक मामले में दाण्डिक दायित्व के बँटवारे से संबंधित मुद्दा **नेशनल स्मॉल इन्डस्ट्रीज कॉर्पोरेशन लिमिटेड (ऊपर)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचारणार्थ आया था जिसमें अभियुक्त व्यक्तिगण कम्पनी के निदेशक बोर्ड के सदस्य थे। सर्वोच्च न्यायालय ने अभिकथित रूप से कम्पनी एवं इसके निदेशकों द्वारा कारित अपराधों के सम्बन्ध में प्रतिनिधिक दायित्व के विस्तार एवं परिधि की व्याख्या करते हुए सम्प्रेक्षित किया है कि केवल वैसे व्यक्ति ही प्रतिनिधिक रूप से दायी होते है जो प्रभारी हैं एवं अपराधों की कारिता के समय कम्पनी के कारोबार के संचालन हेतु उत्तरदायी होते हैं।

श्याम सुन्दर (ऊपर) के मामले में इसी प्रकार के मुद्दे पर विचार करते हुए, जिसमें महिला अभियुक्त को इस आधार पर अभियोजित किया गया था कि वह पार्टनरशीप फर्म की एक निष्क्रिय भागीदार थी एवं उसे आवश्यक वस्तु अधिनियम के तहत अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया था, सर्वोच्च न्यायालय ने अपना निष्कर्ष निम्नवत अभिलिखित किया है:—

8. xxx xx xx xx "दाण्डिक विधि में कोई प्रतिनिधिक दायिता नहीं होती है जबतक कि संविधि ही उसे अपने क्षेत्र में नहीं ले लेती है धारा 10 ऐसी दायिता का प्रावधान नहीं करता है। यह अपराध के लिए सभी भागीदारों को दायी नहीं बनाता है चाहे वे कारोबार करते हैं अथवा नहीं।"

"9. इसलिए इस संबंध में एक जोरदार सतर्कता टिप्पण जोड़ना आवश्यक होगा। बहुधा यह आम बात है कि हो सकता है कि किसी फर्म के भागीदारों में से कुछ यह भी न जानते हों कि फर्म में दिन-प्रतिदिन क्या हो रहा है। ऐसे भी भागीदार हो सकते हैं जिनसे फर्म के कारोबार में भाग लेने की अपेक्षा नहीं की जाती है जिन्हें बेहतर रूप से निष्क्रिय भागीदार कहा जाता है। महिला एवं अवयस्क भी हो सकते हैं जिन्हें पार्टनरशीप के लाभ के लिए प्रवेश दिया जा सकता है। हो सकता है कि वें कम्पनी के कारोबार के बारे में कुछ भी नहीं जानते हों। उप-धारा (1) के परन्तुक के अधीन सभी भागीदारों को अभियोजित करना एवं यह प्रमाणित करने को कहना घोर अन्याय होगा कि अपराध उनकी जानकारी के बगैर कारित किया गया था यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि परन्तुक के तहत यह प्रमाणित करना अभियुक्त के लिए बाध्यकारी होता है कि अपराध उसकी जानकारी के बगैर कारित हुआ था या यह कि उसने ऐसे अपराध को रोकने के लिए पुरी सम्यक् तत्परता का प्रयोग किया था केवल तभी जब अभियोजन यह स्थापित करता है कि उप-धारा (1) में वर्णित अपेक्षित शर्त स्थापित हुआ है। अपेक्षित शर्त यह है कि भागीदार कारोबार के संचालन के लिए उत्तरदायी हो एवं प्रासंगिक समय पर कारोबार का प्रभारी हो। ऐसे किसी प्रमाण की अनुपस्थिति में किसी भागीदार को दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता था। इसलिए हम राज्य के अधिवक्ता द्वारा निवेदित तर्क को अस्वीकार करते हैं।"

8. वर्तमान मामले में, यद्यपि फर्म के भागीदारों को अभियुक्त बनाया गया है फिर भी स्वीकृत तथ्यों से याची एक निष्क्रिय भागीदार होने के नाते अभिकथित अपराधों की कारिता के समय फर्म के कारोबार एवं कार्य-कलाप की प्रभारी नहीं थी। **नेशनल स्मॉल इन्डस्ट्रीज कार्पोरेशन (ऊपर)** के मामले में एवं **श्याम सुन्दर (ऊपर)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णित निर्णयाधार, मेरी राय में, वर्तमान मामले के तथ्यों में लागू होगा।

9. यह एक सुस्थापित विधि है कि किसी व्यक्ति के विरूद्ध दाण्डिक दायित्व अधिरोपित करने के लिए आपराधिक मन:स्थिति एवं कृत्यों के प्रकृति की जानकारी पर भी विचार किया जाना है और अगर ऐसे तत्वों की कमी है तो अभियुक्त को अपराधों के लिए उत्तरदायी ठहराया नहीं जा सकता है।

10. विद्वान विचारण न्यायालय और साथ ही पुनरीक्षण न्यायालय के आक्षेपित आदेश से, मैं पाता हूँ कि मामले के ऊपर वर्णित पहलुओं को विचार में नहीं लिया गया है एवं दाण्डिक प्रतिनिधिक दायित्व के अधिरोपण से सम्बन्धित विधि के सिद्धान्त पर उचित परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया गया है।

11. परिणामस्वरुप इस आवेदन में गुण पाते हुए इसे अनुज्ञात किया जाता है। याची की उन्मोचन के प्रार्थना को अस्वीकार करने वाले विचारण न्यायालय के आक्षेपित आदेश को तथा चतुर्थ अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, जमशेदपुर द्वारा दां॰ पु॰ सं॰ 19 वर्ष 2001 में पारित पुनरीक्षण न्यायालय का आक्षेपित आदेश एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है। विस्तुपुर थाना केस सं॰ 113 वर्ष 1999 से उद्भुत जी॰ आर॰ केस सं॰ 938 वर्ष 1999 में अवर न्यायालय के समक्ष याची के विरूद्ध लम्बित दाण्डिक कार्यवाहियों को एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

माननीय सुशील हरकौली एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्तिगण

झारखंड राज्य एवं अन्य

बनाम

शंभुनाथ प्रसाद एवं एक अन्य

L. P. A. No. 394 of 2009. Decided on 28th May, 2010.

डब्ल्यू॰ पी॰ सी॰ सं॰ 3915 वर्ष 2007 में पारित विद्वान एकल न्यायाधीश के दिनांक 13.3.2008 के निर्णय एवं आदेश से उद्भूत।

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963—धारा 19—संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882—धारा 53A—अचल संपत्तियों के विक्रय के लिए गैर रजिस्टर्ड करार के आधार पर विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए कोई भी वाद पोषणीय नहीं है–किन्तु विक्रय के एक अरजिस्ट्रीकृत करार इसके अनुसरण में आंशिक अनुपालन में कब्जे को अगर प्रमाणित किया जाता है, तो अनुतोष प्रदान करने के लिए न्यायालय द्वारा वैध रूप से विचार किया जा सकता है।

(पैरा 14 एवं 15)

अधिवक्तागण.–None, For the Appellant; Mr. Mahesh Tiwary, For the Respondent No. 1; Mr. Manjul Prasad, For the Respondent No. 2 .

आदेश

राज्य सरकार एवं इसके अधिकारियों, जो अपीलार्थीगण थे, ने पहले ही इस लेटर्स पेटेन्ट अपील को वापस ले लिया है। अत: मामले में राज्य सरकार को सुने जाने का अधिकार नहीं है।

2. किन्तु हम पाते हैं कि किसी मथुरा प्रसाद के मध्यक्षेप आवेदन (अंतर्वर्ती आवेदन सं॰ 3479 वर्ष 2009) पर इस अपील में विस्तृत कारणों को अंतर्विष्ट करता दिनांक 24.11.2009 को अंतरिम आदेश पारित किया गया था। उस अंतरिम आदेश के अनुसार, प्रथम दृष्टया निष्कर्ष दर्ज किया गया था कि उक्त मध्यक्षेपी प्रश्नगत परिसर के एक अंश पर कब्जे में था, किन्तु उक्त मध्यक्षेपी के पीठ के पीछे इस अपील के प्रत्यर्थी सं॰ 1 द्वारा सारे आदेशों को प्राप्त किया गया था और ऐसे एकपक्षीय आदेशों के अनुसरण में दिनांक 20.11.2009 को उक्त मध्यक्षेपी मथुरा प्रसाद को बेदखल कर दिया गया था। दिनांक 24.11.2009 के अंतरिम आदेश में यह दर्ज किया गया था कि उक्त मथुरा प्रसाद इस न्यायालय के समक्ष दिनांक 18.11.2009 अर्थात अपनी बेदखली के दो दिन पहले अपने कब्जा की सुरक्षा ईप्सित करते हुए आया था, किन्तु इसे मथुरा प्रसाद द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सका था क्योंकि उसके बेदखली के पहले उस मध्यक्षेप आवेदन के संबंध में न्यायालय उसको सुन नहीं पाया था।

3. इसके अतिरिक्त, आगे निष्कर्ष ये हैं कि मध्यक्षेपी के अन्य आई॰ ए॰ सं॰ 3518 वर्ष 2009 का परिशिष्ट-1B कब्जा प्रमाण-पत्र था। यह उपदर्शित करता था कि उसे परिसर के अंश का अप्राधिकृत कब्जाधारी होने का अभिकथन करते हुए मथुरा प्रसाद को बेदखल कर दिया गया था। उक्त कब्जा प्रमाण पत्र पर मथुरा प्रसाद का हस्ताक्षर पाया गया था। इन हस्ताक्षरों को अपील के प्रत्यर्थीगण द्वारा स्वीकार किया गया था। उक्त कब्जा प्रमाण पत्र में कोई अन्य व्यक्ति उल्लिखित नहीं था जिसको संभवत: अभिकथित अप्राधिकृत कब्जाधारी, जिसे बेदखल किया जा रहा था के रूप में समझा जा सकता था।

4. आगे, मध्यक्षेपी मथुरा प्रसाद को बेदखल करते हुए परिसर में पायी गयी वस्तुएँ घरेलू उपयोग के सामान थे न कि ऑफिस आइटम और इस प्रकार प्रथम दृष्टया यह कार्यालय मात्र नहीं था जिससे इस अपील के प्रत्यर्थी सं॰ 1 को कब्जा देने के लिए बेदखल किया जा रहा था।

5. अत: दिनांक 24.11.2009 के आदेश द्वारा, अंतरिम कदम के रूप में, यह अभिनिर्धारित करते कि ऐसे उदंड मामले में परिसर के कब्जा की पुनर्स्थापना में विलम्ब करना अनैतिकता को मंजूरी देना होगा, परिसर के अंश का कब्जा मथुरा प्रसाद को प्रत्यावर्तित करने का निर्देश दिया गया था।

6. इसी अंतरिम आदेश में पक्षों अर्थात् मथुरा प्रसाद और इस अपील के प्रत्यर्थी सं० 1 को विवाद्यक के आगे न्याय निर्णयन के उद्देश्य से अपने-अपने दावों कि मथुरा प्रसाद के अभिकथनानुसार वह कब्जे में था या नहीं के संबंध में आगे किसी साक्ष्य, जो वे देना चाहते थे, को अभिलेख पर लाने के लिए शपथ पत्रों का आदान-प्रदान करने का निर्देश दिया गया था।

7. किन्तु विवाद्यक जिसे दिनांक 24.11.2009 के अंतरिम आदेश द्वारा खुला छोड़ दिया गया था, का अंतिम रूप से विनिश्चय किए जाने के पहले राज्य सरकार और इसके अधिकारियों, जो अपीलार्थीगण थे, ने अपनी अपील वापस ले लिया। वापस लेने की प्रार्थना इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिनांक 21.12.2009 के आदेश द्वारा अनुज्ञात की गयी थी और अपील पर जोर नहीं दिए जाने के कारण इसे खारिज कर दिया गया था।

8. अब इस अपील के प्रत्यर्थी सं० 1 ने प्रार्थना करते हुए कि अपील खारिज किए जाने के परिणामस्वरुप समस्त अंतरिम आदेश रिक्त हो जाएँगे, आई० ए० सं० 538 वर्ष 2010 दाखिल किया है और इसलिए इस न्यायालय द्वारा निर्देश जारी किया जाना चाहिए कि दिनांक 24.11.2009 के अंतरिम आदेश के अधीन पुनर्स्थापित कब्जा मथुरा प्रसाद से वापस ले लिया जाना चाहिए और इस अपील के प्रत्यर्थी सं० 1 को वापस दे देना चाहिए।

9. हमने परस्पर विरोधी निवेदनों पर विचार किया है और हमारा मत है कि यद्यपि अपील में प्रत्यर्थी सं० 1 और राज्य-अपीलार्थीगण के बीच अपील खारिज कर दी गयी है किन्तु चूँकि दिनांक 24.11.2009 का अंतरिम आदेश आज्ञापक निबंधनों में पारित किया गया है जिसके द्वारा पक्षों के अधिकारों को बदला गया था, अत: इस न्यायालय के लिए आवश्यक बना रहता है कि वह अंतिम रूप से विनिश्चित करें जो मध्यक्षेपी मथुरा प्रसाद और इस अपील के प्रत्यर्थी के बीच दिनांक 24.11.2009 के आदेश द्वारा अनुध्यात किया गया था और मध्यक्षेपी मथुरा प्रसाद और इस अपील के प्रथम प्रत्यर्थी के बीच के विवाद को तार्किक परिणाम पर लाए।

10. मथुरा प्रसाद का दावा स्वामी के एटॉर्नी द्वारा निष्पादित विक्रय के गैर रजिस्टर्ड करार के आंशिक अनुपालन में अभिकथित कब्जा पर आधारित है। एटॉर्नी का नाम राजकुमार टिबरेवाल है। उक्त राजकुमार टिबरेवाल स्वीकृत रूप से विक्रेताओं का मैनेजर है और स्वीकृत प्रतिफल के मेमो का हस्ताक्षरकर्ता है जिसे रिट याचिका के पृष्ठ 37 पर संलग्न किया गया है।

11. इस अपील के प्रत्यर्थी सं० 1 ने निवेदन किया है कि अभिकथित करार, जिसकी छाया प्रतिलिपि, मध्यक्षेपी मथुरा प्रसाद द्वारा दाखिल आई० ए० सं० 3479 वर्ष 2009 के साथ संलग्न की गयी है, पर राजकुमार टिबरेवाल के अभिकथित हस्ताक्षर कूटरचित है और प्रत्यर्थी सं० 1 द्वारा यह सूचना स्वयं राजकुमार टिबरेवाली से प्राप्त की गयी है।

12. प्रत्यर्थी सं० 1 की ओर से सुझाया गया था कि करार पर अपने हस्ताक्षर को संपुष्ट करने अथवा इंकार करने के लिए उसको कहते हुए राजकुमार टिबरेवाल को इस न्यायालय द्वारा नोटिस जारी किया जाना चाहिए।

13. हम नहीं समझते हैं कि मामला इतना आसान है। कारण यह है कि यह उपधारित करते हुए भी कि श्री राजकुमार टिबरेवाल करार पर अपने हस्ताक्षर से इंकार करता है, मध्यक्षेपी मथुरा प्रसाद को (i) श्री राजकुमार टिबरेवाल का प्रति परीक्षण करने; (ii) हस्तलेखन विशेषज्ञ का परीक्षण करने अथवा (iii)

किसी अन्य चश्मदीद गवाह, जो श्री राजकुमार टिबरेवाल द्वारा अभिकथित करार के निष्पादन के समय उपस्थित हो सकता था अथवा उस समय जब आंशिक अनुपालन में कब्जा दिया गया था, का परीक्षण करने का कोई अवसर दिए बिना शपथ पत्र पर ऐसा बयान ऐसे विवादित प्रश्न पर तथ्य का अंतिम निष्कर्ष दर्ज करने के लिए रिट न्यायालय को अनुमति नहीं देगा। सामान्यत: ऐसे प्रश्न सिविल वाद में न्यायनिर्णीत किए जाते हैं।

14. हमने आगे इस तथ्य को विचार में लिया है कि यदि हम परिसर, जिसपर वह काबिज है, से श्री मथुरा प्रसाद को कब्जाहीन करने का निर्देश देते हैं, यह मथुरा प्रसाद को पूरी तरह वादहीन कर देगा क्योंकि करार जिस पर मथुरा प्रसाद विश्वास करते हैं, स्वीकृत रूप से गैर रजिस्र्टड है। अचल संपत्तियों के विक्रय के लिए गैर रजिस्टर्ड करार के आधार पर विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद पोषणीय नहीं है।

15. किन्तु विक्रय के गैर-रजिस्टर्ड करार के अनुसरण में आंशिक अनुपालन में कब्जा, यदि सिद्ध किया जाता है, अनुतोष प्रदान करने के लिए न्यायालय द्वारा वैध रूप से विचार में लिया जा सकता है।

16. हमारे मत में, दो मुख्य विवाद्यक उद्भूत होंगे यदि हक के बल पर कब्जा ईप्सित करते हुए मथुरा प्रसाद के विरुद्ध इस अपील के प्रत्यर्थीगण सिविल वाद संस्थापित करते हैं।

17. प्रथम प्रश्न जो उद्भूत होगा कि क्या मथुरा प्रसाद द्वारा भरोसा किया गया करार वास्तविक दस्तावेज है और दूसरा प्रश्न होगा कि उस करार के आंशिक अनुपालन में मथुरा प्रसाद को परिसर का कब्जा दिया गया था।

18. हमारे मत में, सिविल वाद में इन दो सरल विवाद्यकों का न्याय निर्णयन ज्यादा वक्त नहीं लेगा।

19. अत: हम निर्देश देते हैं कि यदि इस अपील का प्रत्यर्थी सं० 1 अर्थात् श्री शंभुनाथ प्रसाद परिसर के कब्जा का डिक्री ईप्सित करते हुए, श्री मथुरा प्रसाद के विरुद्ध सिविल वाद संस्थापित करता है, श्री मथुरा प्रसाद द्वारा दाखिल किए गए लिखित कथन के प्रकाश में पूर्वोक्त विवाद्यकों को, और किसी अन्य विवाद्यक यदि वे उद्भूत होते हैं, को सिविल न्यायालय विरचित करेगा और पक्षों में से किसी को अनुचित अथवा असम्यक् लंबा स्थगन दिए बिना शीघ्रताशीघ्र इन विवाद्यकों को निपटाने के लिए अग्रसर होगा और वाद के संस्थापन की तिथि के छह माह के भीतर वाद को निपटाने का विचारण न्यायालय प्रयास करेगा। प्रथम प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया है कि दिनांक 15.6.2010 को या इससे पहले सब-जज, राँची के संस्थापन न्यायालय में आवश्यक वाद संस्थापित किया जाएगा।

20. समन तामील किए जाने में विलम्ब से बचने के लिए एक सप्ताह के भीतर उक्त न्यायालय में श्री मथुरा प्रसाद, जिनका प्रतिनिधित्व अधिवक्ता के माध्यम से हमारे समक्ष किया गया है, केवियट दाखिल करेंगे। यदि वह केवियट दाखिल करने में विफल रहते हैं, उन्हें वाद के समन के साथ तामील किया हुआ माना जाएगा जो उनके विरुद्ध एक पक्षीय रूप से अग्रसर होगा। विक्रय के मूल करार और किसी अन्य दस्तावेजी साक्ष्य के साथ अपना लिखित कथन दाखिल करने के लिए मथुरा प्रसाद के पास उस तिथि से तीन सप्ताह का समय होगा जिस तिथि को संलग्न दस्तावेजों की प्रतियों के साथ वाद पत्र को विद्वान अधिवक्ता, जो केवियट दाखिल करते हैं, पर तामील किया जाता है।

21. पूर्वोक्त निर्देशों के अधीन और सिविल वाद में सिविल न्यायालय द्वारा दिए जाने वाले निर्णय के अधीन, श्री शंभुनाथ प्रसाद और श्री मथुरा प्रसाद के बीच का विवाद, जहाँ तक इस अपील का संबंध है, निपटाया जाता है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल, कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

सैयद शमीम अहमद मदनी एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (PIL) No. 1813 of 2010. Decided on 17th May, 2010.

भारत का संविधान, 1950—अनुच्छेद 226—जनहित वाद–शैक्षणिक मामलें–उत्तर पुस्तिका के मूल्यांकन से संबंधित मामला–विनियमन 2005, जिसे तब से कभी भी लागू नहीं किया गया था, को लागू करने के लिए विद्यालयों को नोटिस भेज कर अथवा समाचार पत्र के माध्यम से परीक्षा में उपस्थित हो रहे छात्रों को परीक्षा संचालित करने के पहले इंटरमीडिएट कौंसिल ने सूचित कभी नहीं किया था–जब छात्रों ने अपनी मातृभाषा में गैर-भाषा विषयों में उत्तर दे दिया, अचानक विनियमन लागू नहीं किया जा सकता है–इंटरमीडिएट कौंसिल का निर्णय पूर्णतः मनमाना और अन्यायोचित है–वर्ष 2010 में लिए गए इंटरमीडिएट स्तर परीक्षा में गैर-भाषा विषयों में परीक्षार्थियों द्वारा उर्दू, बंगला एवं उड़ीया में लिखे गए उत्तर पुस्तिका के मूल्यांकन का निर्देश इंटरमीडिएट कौंसिल को दिया गया। (पैरा 5 से 7)

अधिवक्तागण.–M/s Dr. S. N. Pathak & Hussain, For the Petitioners; M/s M.S. Anwar & R. Parween, For the Respondents

आदेश

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.–इस रिट याचिका में, लोकहित मुकदमें के जरिए याचीगण ने वर्ष 2010 में ली गयी इंटरमीडिएट (+ 2 स्तर) परीक्षा में गैर भाषा विषयों में परीक्षार्थी द्वारा उर्दू, बंगला, एवं उड़िया में लिखे गए उत्तर पुस्तिकओं के मूल्यांकन के लिए और आगे झारखंड एकेडेमिक कौंसिल द्वारा अनुमोदित परीक्षा हेतु विनियमन के नियम 20 को गैर-कानूनी और अधिकारातीत घोषित करने के लिए, क्योंकि यह संविधान के अधीन गारंटी किए गए अधिकारों के उल्लंघन में है, प्रत्यर्थीगण विशेषतः प्रत्यर्थी सं॰ 4, झारखंड एकेडेमिक कौंसिल (संक्षेप में एकेडेमिक कौंसिल) को समुचित निर्देश जारी करने के लिए प्रार्थना की है।

2. इंटरमीडिएट स्तर पर परीक्षा लेने और संचालित करने के लिए और विभिन्न परीक्षाओं के लिए पाठ्यक्रम विहित करने के लिए भी झारखंड एकेडेमिक कौंसिल अधिनियम, 2002 के अधीन झारखंड राज्य में झारखंड एकेडेमिक कौंसिल स्थापित किया गया था। वर्ष 2005 में, अधिनियम की धारा 27 (b) एवं (c) के प्रावधानों के फलस्वरूप, कौंसिल ने ''परीक्षा हेतु विनियमन'' कहा जाने वाला विनियमन बनाया, जिसे दिनांक 19.2.2005 को की गयी अपनी बैठक में झारखंड एकेडेमिक कौंसिल द्वारा अनुमोदित किया गया था। उक्त विनियमन द्वारा इंटरमीडिएट (+2) स्तर परीक्षा में उपस्थित हुए छात्रों को गैर-भाषा विषयों में केवल हिन्दी और अंग्रेजी में प्रश्नों का उत्तर देना है और गैर-भाषा विषयों में उन्हें उर्दू, बंगला एवं उड़ीया में उत्तर देने से अपवर्जित किया गया था। यह कथन किया गया है कि विनियमन यद्यपि वर्ष 2005 में बनाया गया था किंतु इसे प्रभाव में नहीं लाया गया था और छात्रों को अपनी मातृभाषा अर्थात् उर्दू, बंगला एवं उड़िया में गैर-भाषा विषयों के पत्र में उत्तर देने की अनुमति दी गयी थी। किन्तु अचानक एकेडेमिक कौंसिल ने ''परीक्षा हेतु विनियमन'' के पूर्वोक्त नियम 20 को प्रवर्तित करने का निर्णय लिया। उक्त निर्णय के कारण अपनी मातृभाषा में लिखी गयी 30 हजार परीक्षार्थियों की उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन नहीं किया गया है और उन्हें शून्य अंक प्रदान किया गया था।

3. अपने शपथ पत्र में एकेडेमिक कौंसिल ने कथन किया है कि विनियमन 20 के मुताबिक केवल माध्यमिक परीक्षा के मामले में ही उम्मीदवार अंग्रेजी, उर्दू, बंगला एवं उड़िया में उत्तर दे सकता है किन्तु इंटर (+2) स्तर पर गैर भाषा विषय में प्रश्नों का उत्तर हिन्दी और अंग्रेजी में ही दिया जाना होगा। किंतु कौंसिल द्वारा स्वीकार किया गया है कि यद्यपि विनियमन 2005 में बनाया गया था, किंतु गैर-भाषा विषयों में अपनी मातृ-भाषा में उत्तर देने की अनुमति इंटरमीडिएट (+2) छात्रों को नहीं देने का कौंसिल का कोई निर्देश नहीं था। आगे कौंसिल द्वारा स्वीकार किया गया है कि वर्ष 2007 में उर्दू को आधिकारिक भाषा के रूप में अधिसूचित किया गया था किन्तु विनियमन वर्ष 2005 में विरचित किया गया था।

4. हमने पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना है और कौंसिल द्वारा लिए गए निर्णय का परिशीलन किया है।

5. तर्क के क्रम में, श्री अनवर ने निष्पक्षत: निवेदन किया कि यद्यपि विनियमन वर्ष 2005 में बनाया गया था किन्तु इसे प्रभाव में नहीं लाया गया था और वर्ष 2005 के बाद भी गैर-भाषा विषयों में छात्रों को अपनी मातृभाषा में उत्तर देने की अनुमति दी गयी थी। प्रति शपथपत्र को निर्दिष्ट करते हुए विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि हाल-फिलहाल में एकेडेमिक कौंसिल ने दिनांक 30.3.2010 की अपनी बैठक में विनियमन 20 जो माध्यमिक बोर्ड परीक्षा की तरह गैर-भाषा विषयों में उर्दू, बंगला एवं उड़ीया में उत्तर देने से छात्रों को अपवर्जित करता है, के प्रावधानों के संशोधन के लिए राज्य सरकार को अनुशंसा भेजने का सर्वसम्मति से संकल्प लिया था। अनुमोदन के लिए सरकार को प्रस्ताव भेजने का संकल्प भी लिया गया था।

6. स्वीकृत रूप से इंटरमीडिएट कौंसिल ने विनियमन, 2005, जिसे तब से कभी भी लागू नहीं किया गया था, को लागू करने के लिए विद्यालयों को नोटिस भेजकर अथवा समाचार पत्रों के माध्यम से उपस्थित हुए छात्रों को परीक्षा संचालित करने के पहले कभी नहीं सूचित किया। पूर्वोक्त आधारों पर, अचानक जब छात्रगण अपनी मातृभाषा में गैर भाषा विषयों का उत्तर दे चुके थे, उक्त विनियमन कभी नहीं लागू किया जा सकता है और इसे लागू नहीं करना होगा। अत: इंटरमीडिएट कौंसिल का निर्णय पूर्णत: मनमाना और अन्यायोचित है।

7. अत: हम, विनियमन के प्रावधानों की अधिकारिता का परिशीलन किए बिना, इंटरमीडिएट कौंसिल को वर्ष 2010 में ली गयी इंटरमीडिएट स्तर परीक्षा में गैर-भाषा विषयों में परीक्षार्थियों द्वारा उर्दू, बंगला एवं उड़ीया में लिखे गए उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन करने निर्देश देते हैं। उत्तर पुस्तिकाओं के मूल्यांकन के बाद आज से दो माह की अवधि के भीतर परिणाम प्रकाशित करना होगा।

8. पूर्वोक्त संप्रेक्षण और निर्देश के साथ यह आवेदन निपटाया जाता है।

आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति.-मैं सहमत हूँ।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

दीप्ती मुखर्जी एवं एक अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 1476 of 2006. Decided on 7th July, 2010.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 420, 465 एवं 468—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—छल एवं कूटरचना-संज्ञान-भूमि विक्रय का करार-एक अन्य व्यक्ति के पक्ष में

याचीगण द्वारा नए मुखतारनामा का निष्पादन—याचीगण का ऐसा कृत्य एक दस्तावेज को कूटरचित दस्तावेज नहीं बनाता है—अभिकथित अपराधों के घटक आकृष्ट नहीं होते हैं—विवाद, जो अनन्य रूप से सिविल वाद की प्रकृति का है, को किसी पक्के आधार के बिना दांडिक कार्यवाही में परिवर्तित करना ईप्सित किया गया है—ऐसी परिस्थितियों के अधीन याचीगण के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही को आरंभ करना और जारी रखना न्यायालय की प्रक्रिया का निश्चित रूप से दुरुपयोग होगा और ऐसे दुरुपयोग को जारी रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती है—आक्षेपित आदेश अपास्त—आवेदन अनुज्ञात। (पैरा 6 से 8)

निर्णयज विधि.—2009(2) JLJR 1 (SC); 2009(4) JLJR 13 (SC).—Referred.

अधिवक्तागण.—Mr. A. K. Sahani, For the Petitioners A.P.P., For the State. None, For the Opposite Party No. 2.

आदेश

याचीगण के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. यह प्रतीत होता है कि यद्यपि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 अधिवक्ता के माध्यम से वर्तमान मामले में उपस्थित हुआ है किन्तु अनेक तिथियों पर बार-बार बुलाए जाने के बावजूद सुनवाई के समय विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 का प्रतिनिधित्व करने के लिए अधिवक्ता उपस्थित नहीं हुआ है।

3. याचीगण ने इस आवेदन में लालपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 186 वर्ष 2001 से उद्‌भूत जी॰ आर॰ केस सं॰ 3453 वर्ष 2001 में मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, राँची द्वारा पारित दिनांक 17.7.2006 के आदेश को चुनौती दी है जिसके द्वारा भा॰ द॰ सं॰ की धाराओं 420, 465 और 468 के अधीन अपराधों के लिए याचीगण के विरुद्ध संज्ञान लिया गया है और विचारण का सामना करने के लिए उन्हें सम्मन किया गया है।

4. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता सूचित करते हैं कि दिनांक 11.11.2009 के आदेश द्वारा अवर न्यायालय के समक्ष याचीगण के विरुद्ध लंबित मामले में इस न्यायालय द्वारा आगे की कार्यवाही स्थगित कर दी गयी है।

संज्ञान के आक्षेपित आदेश का विरोध करते हुए विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि न्यायिक विवेक का इस्तेमाल किए बिना और समुचित परिप्रेक्ष्य में तथ्यों का अधिमूल्यन किए बिना यांत्रिक रूप से संज्ञान का आदेश पारित किया गया है। अपने तर्कों को विस्तार देते हुए विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते है कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा दाखिल प्राथमिकी की समस्त विषय वस्तुओं और अभिकथनों का परिशीलन करने के बाद भी यह पता लगेगा कि विवाद बिलकुल सिविल प्रकृति का विवाद है और याचीगण के विरुद्ध किसी भी अपराध के लिए कोई दांडिक दायित्व आकृष्ट नहीं करता है।

विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि विवाद एक करार से उद्‌भूत होता है जो कतिपय भूमि के विक्रय के लिए याचीगण के पूर्वाधिकारी द्वारा विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 एवं दो अन्य के साथ स्वीकृत रूप से किया गया था। करार के अनुसार भी, जिसे दिनांक 14 जून, 1986 को निष्पादित किया गया था, विक्रय को दिनांक 31 दिसम्बर, 1986 तक अंतिम रूप से पूरा कर लिया जाना था। किन्तु अनेक कारणों से विक्रय पूरा नहीं किया जा सका था। परिवादी/विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने किसी अन्य व्यक्ति को उसी भूमि को बेचने से उनको अवरुद्ध करने के लिए याचीगण के विरुद्ध स्थायी व्यादेश के अनुतोष की प्रार्थना करते हुए

मुंसिफ, राँची के समक्ष एक वाद दाखिल किया। संबंधित पक्षों को सुनने के बाद यह घोषणा करते हुए कि करार प्रतिवादीगण (वर्तमान याचीगण) पर बाध्यकारी नहीं होगा और कि यह वैध और प्रवर्तनीय नहीं था, विद्वान मुंसिफ ने दिनांक 12 सितम्बर, 2008 को वाद खारिज कर दिया। यह तथ्य विपक्षी पक्षकार सं० 2 द्वारा स्वीकार किया गया है।

विद्वान अधिवक्ता जोड़ते हैं कि मुंसिफ के न्यायालय द्वारा की गयी ऐसी घोषणा पर याचीगण ने किसी भी भावी खरीददार को भूमि बेचने का प्राधिकार उसमें नयस्त करते हुए किसी कुमुद कुमार झा के पक्ष में एक नया मुख्तारनामा निष्पादित किया। विद्वान अधिवक्ता आगे स्पष्ट करते हैं कि मुख्तारनामा के निष्पादन की आलोचना कूटरचित दस्तावेज के रूप में नहीं किया जा सकता है और न ही मुख्तारनामा का ऐसा निष्पादन अपराधों में से किसी के घटक को आमंत्रित करेगा जिसके लिए याचीगण के विरुद्ध संज्ञान लिया गया था और इसलिए याचीगण के विरुद्ध दांडिक अभियोजन को जारी रखना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा।

अपने तर्कों को पुख्ता करने के लिए विद्वान अधिवक्ता **दलीप कुमार एवं अन्य बनाम जगनार सिंह एवं अन्य,** 2009(4) JLJR 13 (SC) में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय एवं **बी० वाई० जोश एवं एक अन्य बनाम गुजरात राज्य एवं एक अन्य,** 2009 (2) JLJR 1 (SC) में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व निर्णय को निर्दिष्ट करते हैं और उन पर विश्वास व्यक्त करते हैं।

5. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने विपक्षी पक्षकार सं० 2 के प्रतिशपथ पत्र को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि जैसा प्रतीत होता है कि यद्यपि किसी अन्य व्यक्ति को भूमि बेचनें से उनको अवरुद्ध करने के लिए वर्तमान याचीगण के विरुद्ध मुंसिफ के न्यायालय, राँची में परिवादी/विपक्षी पक्षकार सं० 2 द्वारा दाखिल वाद विद्वान मुंसिफ द्वारा खारिज कर दिया गया था, वादी/विपक्षी पक्षकार सं० 2 ने टाइटल अपील सं० 112 वर्ष 2008 के तहत मुंसिफ के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अपील दाखिल किया है जो अभी भी लंबित है।

6. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों और प्राथमिकी और प्रति शपथपत्र एवं अन्य दस्तावेजों में विपक्षी पक्षकार सं० 2 के बयानों सहित परिवाद याचिका के विषय वस्तु के परिशीलन के बाद मैं पाता हूँ कि विपक्षी पक्षकार सं० 2 की मुख्य शिकायत किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में याचीगण द्वारा नए मुख्तारनामा के निष्पादन के विरुद्ध है, इस तथ्य के बावजूद कि जून, 1986 में ही याचीगण के पूर्वाधिकारियों ने विपक्षी पक्षकार सं० 2 और अन्य के पक्ष में भूमि के विक्रय का करार निष्पादित किया था।

7. निर्विवादित तथ्यों से, जैसा याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा सूचित किया गया है, यद्यपि पूर्वाधिकारियों ने विपक्षी पक्षकार सं० 2 के पक्ष में कतिपय भूमियों के विक्रय के लिए एक करार किया है, फिर भी जैसा विपक्षी पक्षकार सं० 2 द्वारा दाखिल हक वाद में मुंसिफ के न्यायालय के निर्णय एवं डिक्री द्वारा घोषित किया गया है, करार अपना प्रभाव खो चुका था और याचीगण पर बाध्यकारी नहीं था। ऐसी परिस्थितियों के अधीन, याचीगण द्वारा नए मुख्तारनामा का निष्पादन कल्पना की किसी सीमा तक दस्तावेज को कूटरचित दस्तावेज नहीं बनाता है और न ही अपराधों में से किसी का घटक आमंत्रित करता है जिसके लिए विद्वान अवर न्यायालय ने याचीगण के विरुद्ध संज्ञान लिया है। याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने सही निवेदन किया है कि संज्ञान का आक्षेपित आदेश पारित करते हुए विद्वान अवर न्यायालय ने तथ्यों और परिस्थितियों के प्रति अपने न्यायिक विवेक का इस्तेमाल नहीं किया है जो अन्यथा प्रदर्शित करेगा कि

विवाद, जो अनन्य रूप से वाद की प्रकृति का है, को किसी पक्के आधार के बिना दांडिक कार्यवाही में परिवर्तित किया जाना ईप्सित किया गया है। ऐसी परिस्थितियों के अधीन याचीगण के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही को आरंभ करना और जारी रखना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा और ऐसे दुरुपयोग को जारी रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

8. तथ्यों एवं परिस्थितियों एवं ऊपर की गयी चर्चा के प्रकाश में, मैं आवेदन में गुणागुण पाता हूँ। तद्नुसार, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है। लालपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 186 वर्ष 2001 से उद्भूत जी॰ आर॰ केस सं॰ 3453 वर्ष 2001 में विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, राँची द्वारा पारित दिनांक 17.7.2006 का संज्ञान का आक्षेपित आदेश और याचीगण के विरुद्ध संज्ञान के आदेश से अनुसरित समस्त दांडिक कार्यवाही एतद् द्वारा अभिखंडित की जाती है।

माननीय नरेन्द्र नाथ तिवारी, न्यायमूर्ति

जमीला बीबी एवं अन्य

बनाम

हस्मुद्दीन अंसारी एवं अन्य

W. P. (C) No. 6317 of 2005. Decided on 10th May, 2010.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश 1, नियम 10—बँटवारा वाद–सह-अंशधारियों की हैसियत से प्रतिवादी के रूप में जोड़े जाने के लिए दिए गए आवेदन की अस्वीकृति–याचीगण अभिलिखित अभिधारी के पोते पोतियाँ है और वाद में अंतर्ग्रस्त विवाद के प्रभावकारी न्याय निर्णयन के लिए उनकी उपस्थिति आवश्यक है–याचीगण की प्रार्थना को अवर न्यायालय द्वारा गलत रूप से अस्वीकार किया गया—आक्षेपित आदेश अपास्त–याचिका अनुज्ञात–बँटवारा वाद में याचीगण पक्ष के रूप में जोड़े जाएँगे। (पैरा 7 से 9)

अधिवक्तागण.–Mr. Arvind Kumar Choudhary, For the Petitioners; Mr. J.P. Jha & V. S. Jha, For the Respondents.

आदेश

यह रिट याचिका अभिधान विभाजन वाद सं॰ 145 वर्ष 2003 में विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश-III, देवघर द्वारा पारित दिनांक 5.9.2005 के आदेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश ने आदेश I, नियम 10 सी॰ पी॰ सी॰ के अधीन याचिका अस्वीकार कर दी है।

2. उक्त वाद वाद पत्र में उपाबद्ध अनुसूची में दिए गए वाद भूमि के बँटवारे के लिए अनुतोष की प्रार्थना करते हुए वर्ष 1999 में व्यवस्थापन अधिकारी, संथाल परगना, दुमका के समक्ष दाखिल किया गया था। बाद में उक्त वाद अंतिम निपटारे के लिए अधीनस्थ न्यायाधीश के न्यायालय, देवघर को अंतरित किया गया था।

3. विभाजन वाद के लंबित रहने के दौरान याचीगण ने अभिलिखित अभिधारी महावीर मियाँ के पौत्र पौत्रियाँ होने के नाते स्वयं को वाद भूमि का सह-अंशधारी होने का दावा करते हुए प्रतिवादी के रूप में जोड़े जाने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश I, नियम 10 के अधीन याचिका दाखिल की।

4. याचीगण का दावा यह था कि अभिलिखित अभिधारी महावीर मियां की मृत्यु अपने पीछे चार पुत्रों, अर्थात्, गौहर अली मियां, मकबूल मियां, रहमूल मियां और सुलतान मियां और एक पुत्री, अर्थात्, संजीमान बीबी को छोड़ते हुए दिनांक 21.11.1998 को हो गयी। मध्यक्षेपी उक्त सुलतान मियां और

संजीमन बीबी के पुत्र और पुत्री हैं। संजीमान बीबी की मृत्यु वर्ष 1998 में हो गयी किन्तु वादी-प्रत्यर्थीगण ने झूठा और द्वेषपूर्व उल्लेखन किया कि संजीमान बीबी की मृत्यु वर्ष 1968 में ही हो गयी थी ताकि याचीगण को वैध अधिकारों और संपत्ति में हिस्सा से वंचित करने का आधार बनाया जा सके। चूँकि वे सह-अंशधारी है, अत: वे विभाजन वाद में आवश्यक पक्ष हैं क्योंकि वाद में विवाद के प्रभावकारी न्याय निर्णयन के लिए उनकी उपस्थिति आवश्यक है।

5. वादी-प्रत्यर्थीगण ने याचिका का विरोध किया और प्रतिवाद किया कि उस्मान मियां की मृत्यु सुलतान मियां के जीवनकाल में हो गयी थी। उसमान मियां अपने पिता के पहले मृत हो गया। मध्यक्षेपी-याचीगण सं॰ 1-4 को सुलतान मियां के पौत्र होने के नाते मुस्लिम कानून के अधीन उत्तराधिकार का अधिकार नहीं है। वाद भूमि पर उनके हिस्सा का दावा और कब्जा बिना किसी आधार का है। वाद भूमि के संबंध में उनके कब्जे को दर्शाता सर्वे खतियान अंतिम नहीं है। अन्य याचीगण का संजीमान बीबी का पुत्र और पुत्री होने के नाते संपत्ति में कोई अधिकार और हिस्सा नहीं है क्योंकि संजीमान बीबी की मृत्यु उसके पिता महावीर मियां के पहले हो गयी थी। अत: विभाजन वाद में पक्ष के रूप में याचीगण को जोड़ा जाना अपेक्षित नहीं है।

6. वादीगण के प्रतिवाद को स्वीकार करते हुए और विवाद्यक, जिसे वाद में विनिश्चित किया जाना चाहिए था, को लगभग विनिश्चित करते हुए विद्वान अवर न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि वर्तमान वाद में पक्षगण मुस्लिम कानून द्वारा शासित होते हैं एवं चूँकि उसमान मियां की मृत्यु उसके पिता सुलतान मियां के पहले हो गयी थी, सुलतान मियां के पोते-पोतियों को उत्तराधिकार का अधिकार नहीं था। संजीमान बीबी के पुत्र और पुत्रियों को भी उत्तराधिकार का अधिकार नहीं था क्योंकि संजीमान बीबी की मृत्यु भी उसके पिता के पहले हो गयी थी। ऐसा अभिनिर्धारित करते हुए विद्वान विचारण न्यायालय ने संप्रेक्षित किया कि यह एक स्वीकृत मामला है कि उसमान मियां और संजीमान बीबी की मृत्यु उनके अपने-अपने पिताओं के पहले हो गयी थी।

7. मैं पाता हूँ कि अभिलेख पर यह स्वीकार करते हुए याचीगण की कोई स्वीकृति नहीं है कि संजीमान बीबी की मृत्यु उसके पिता के पहले हो गयी थी। उस प्रभाव का अभिलेख पर कोई सामग्री और साक्ष्य भी नहीं है। इसके विपरीत, यह स्वीकृत स्थिति है कि याचीगण अभिलिखित अभिधारी महावीर मियां के पौत्र-पौत्री हैं। उनके अपने-अपने पिता की मृत्यु महावीर मियां/उसमान मियां के पहले हो गयी थी, ऐसा विवाद है जिसे वाद के विचारण में साक्ष्य के आधार पर न्याय निर्णीत और विनिश्चित किया जाएगा क्योंकि उक्त तथ्य को विद्वान अवर न्यायालय द्वारा संप्रेक्षित किया गया नहीं माना गया है।

8. उक्त की दृष्टि में, विद्वान अवर न्यायालय ने उक्त विभाजन वाद में पक्ष के रूप में उनको जोड़ने के लिए याचीगण की प्रार्थना अस्वीकार करने में गंभीर गलती की है। उनकी प्रार्थना को अस्वीकार करता संप्रेक्षण और आधार अनुचित है और किसी विधिक आधार के बिना है। इससे इंकार नहीं किया गया है कि याचीगण अभिलिखित अभिधारी महावीर मियां के पौत्र-पौत्री हैं और वे अजनबी नहीं हैं। संपत्ति में अंश के उनके अधिकार के प्रोद्भूत होने से पहले उनके अपने-अपने पिता की मृत्यु की तिथि स्वीकार नहीं की गयी है जैसा आक्षेपित आदेश में गलत संप्रेक्षित किया गया है। इस प्रकार, वाद में अंतर्ग्रस्त विवाद के प्रभावकारी न्याय निर्णयन के लिए वाद में उनकी उपस्थिति आवश्यक है। याचीगण की प्रार्थना को निराधार वजह पर अस्वीकार करने में विद्वान अवर न्यायालय ने गंभीर गलती की है।

9. अत: आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है। रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है। विभाजन वाद सं॰ 145 वर्ष 2003 में पक्ष के रूप में उनको जोड़े जाने के लिए याचीगण की याचिका अनुज्ञात की जाती है।

10. व्यय को लेकर आदेश नहीं है।

माननीय सुशील हरकौली एवं प्रशान्त कुमार, न्यायमूर्तिगण

मेसर्स टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड

बनाम

सुरेश नारायण सिंह

L.P.A. No. 744 of 2003. Decided on 10th May, 2010.

CWJC No. 2290/1995(R) में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 15.9.2009 के निर्णय के विरूद्व।

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947—धाराएँ 33 एवं 33A—उन्मोचन–श्रम न्यायालय द्वारा आदेश इस आधार पर पलट दिया गया कि श्रम न्यायालय के लिखित रूप से अभिव्यक्त अनुमति के बिना उन्मोचन का आदेश पारित किया गया था–धारा 33 के उल्लंघन के संबंध में कर्मकार द्वारा परिवाद किया जा सकता है और ऐसे परिवाद को आई॰ डी॰ अधिनियम के अधीन रेफरेन्स के रूप में माना जाएगा–एक बार जब कोई संदर्भ बनाया जाता है तो इसे गुणावगुणों पर विनिश्चित किया जाना होता है–मुकदमा में, मुकदमा आरंभ होने की तिथि पर पक्षों के अधिकारों का न्याय निर्णयण करना है–ऐसी कार्रवाइयों द्वारा किसी पक्ष को अन्य पक्ष द्वारा नन-सूट किए जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है–द्वितीय सेवा समाप्ति आदेश के संबंध में रिट याचिका में निर्णय के अधीन पुनर्बहाली के लाभों और पूर्ण बकाया मजदूरी देने के साथ अपील निपटायी गयी। (पैरा 7 से 13)

अधिवक्तागण.–Mr. Anil Kumar Sinha, M/s G.M. Misra & Umesh Misra, For the Petitioner; Mr. Rajesh Lala, For the Respondents.

आदेश

श्रम न्यायालय ने औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 33A के अधीन पारित दिनांक 15.4.1995 के अपने अधिनिर्णय द्वारा अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी–कर्मकार का अपीलार्थी की सेवा से उन्मोचन धारा 33 के विपरीत है क्योंकि यह श्रम न्यायालय के लिखित रूप से अभिव्यक्त अनुमति के बिना किया गया है जहाँ पूर्वोक्त उन्मोचन की तिथि पर कर्मकार के प्रतिवर्तन की वैधता से संबंधित विवाद लंबित था। उक्त के परिणामस्वरुप, श्रम न्यायालय द्वारा दो निर्देश जारी किए गए थेः–

(i) पूर्ण बकाया मजदूरी और अन्य लाभों के साथ कर्मकार की पुनर्बहाली और

(ii) धारा 33 के उल्लंघन हेतु प्रबंधन का अभियोजन।

2. प्रबन्धन ने CWJC No. 2290 वर्ष 1995(R) दाखिल करके इस न्यायालय से संपर्क किया जिसे विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 15.9.2003 के आक्षेपित आदेश द्वारा अंशतः अनुज्ञात किया गया था।

3. विद्वान एकल न्यायाधीश ने आक्षेपित आदेश द्वारा प्रबंधन के अभियोजन से संबंधित श्रम न्यायालय के निर्देश को इस आधार पर अपास्त कर दिया कि धारा 33 का उल्लंघन जानबूझकर नहीं किया गया था क्योंकि जैसे ही प्रबंधन को ज्ञात हुआ कि यह धारा 33 के उल्लंघन में है, प्रबंधन ने उन्मोचन आदेश वापस ले लिया।

4. किन्तु, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा श्रम न्यायालय के अन्य निर्देश में हस्तक्षेप नहीं किया गया है।

5. व्यथित होकर, प्रबंधन ने यह एल० पी० ए० दाखिल किया है।

6. इस न्यायालय के समक्ष प्रबंधन का प्रतिवाद यह है कि प्रबंधन द्वारा उन्मोचन आदेश वापस ले लिए जाने के बाद, धारा 33A के अधीन कार्यवाही निष्फल होने के चलते उपशमनित हो जानी चाहिए थी और श्रम न्यायालय को निर्देश जारी नहीं करना चाहिए था।

7. हम सहमत होने में अक्षम हैं। धारा 33A कहती है कि जहाँ प्राधिकारी, जिसके समक्ष कार्यवाहियाँ लंबित है, के लिखित रूप से अभिव्यक्त अनुमति के बिना अधिनियम के अधीन कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान कर्मकार की सेवा शर्तों को परिवर्तित किया गया है, यह धारा 33 के विपरीत होगा।

8. और ऐसी स्थिति में, धारा 33A के अनुसार, धारा 33 के उल्लंघन के संबंध में कर्मकार द्वारा परिवाद किया जा सकता है और ऐसे परिवाद को माना जाएगा मानो वह अधिनियम के अधीन रेफरेन्स था।

9. वर्तमान मामले में, यह अभिकथन करते हुए कि दिनांक 17.11.1989 को उसकी सेवा समाप्ति वैध नहीं थी क्योंकि यह धारा 33 के उल्लंघन में थी, कर्मकार ने धारा 33A के अधीन परिवाद किया।

10. पूर्वोक्त प्रश्न को संदर्भ के रूप में माना जाना होगा और परीक्षण यह करना होगा कि क्या प्रबंधन को आक्षेपित आदेश वापस लेकर रेफरेन्स को निष्फल होने के तौर पर उपशमनित करवाने की छूट है।

11. हमारी राय में, विधि के प्रति ऐसा दृष्टिकोण यह देखते हुए अवांछनीय प्रभाव डालेगा क्योंकि श्रम न्यायालय के समक्ष रेफरेन्स करवाना एक लंबी प्रक्रिया है जो सुलह के चरण से शुरू होती है। अपीलार्थी की ओर से सुझाया गया दृष्टिकोण को अपनाना संदर्भ को निष्फल करवाने में होगा जो किसी अनैतिक प्रबंधन के हाथ में एक अत्यन्त अवांछनीय हैन्डल देना होगा जब तुलनात्मक रूप से पीड़ित कर्मकार द्वारा लंबी प्रक्रिया के जरिए संदर्भ को प्राप्त किया गया है। आक्षेपित आदेश को वापस लेने और नया आदेश पारित करने का अर्थ होगा द्वितीय संदर्भ के लिए कर्मकार को ऐसी ही लंबी प्रक्रिया के अधीन करना जिसे प्रबंधन के कलम से इसी तरीके से एक बार फिर निष्फल बनाया जा सकता है।

12. अत:, जब एक बार रेफरेन्स किया जा चुका है, गुणागुणों पर इसका विनिश्चय करना होगा। मुकदमा में, मुकदमा आरंभ होने की तिथि पर पक्षों के अधिकारों का न्याय निर्णयण करना होगा। ऐसी कार्रवाई द्वारा किसी पक्ष को दूसरे पक्ष द्वारा वादहीन करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

13. किन्तु, दिनांक 17.11.1989 के उन्मोचन आदेश को वापस लेने के बाद, धारा 33 के अधीन आवश्यक अनुमोदन के लिए आवेदन करने के बाद प्रबंधन द्वारा उन्मोचन अथवा सेवा समाप्ति का एक नया आदेश पारित किया गया है। उन्मोचन आदेश की तिथि दिनांक 17.4.1990 है। दिनांक 17.4.1990 के इस द्वितीय उन्मोचन आदेश की वैधता के बारे में विवाद्यक पृथक रिट याचिका के रूप में लंबित पड़ा हुआ है जिसमें प्रबंधन अंतरिम आदेश प्राप्त कराने में अब तक सक्षम नहीं हुआ है। जब तक ऐसे समय तक दिनांक 17.4.1990 का द्वितीय सेवा समाप्ति आदेश प्रबंधन की लंबित उक्त रिट याचिका में स्थगित अथवा अपास्त नहीं किया जाता है, दिनांक 15.4.1995 के अपने अधिनिर्णय द्वारा श्रम न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत पुनर्बहाली के लाभों और अन्य लाभों के साथ पूर्ण बकाया मजदूरी कर्मकार को प्रबंधन द्वारा दिया जाना होगा। यदि दिनांक 17.4.1990 का द्वितीय उन्मोचन आदेश, जिसे अंतर्निहित रूप से श्रम

न्यायालय द्वारा अनुमोदित नहीं किया गया है, स्थगित अथवा अपास्त किया जाता है, दिनांक 15.4.1995 के अधिनिर्णय के लाभों का जारी रहना ऐसे पारित अंतरिम अथवा अंतिम आदेश के निबंधनों पर निर्भर करेगा।

14. उक्त के अधीन, यह अपील निपटायी जाती है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल, कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

पालिका मुर्मू एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

L.P.A. No. 185 of 2009. Decided on 11th May, 2010.

छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम, 1908—धाराएँ 49 एवं 71A—पुनर्स्थापन का आदेश एकल न्यायाधीश द्वारा अपास्त किया गया–पुनर्स्थापना के लिए आवेदन 22 वर्षों बाद दाखिल किया गया–पारित अंतरिम आदेश की अवज्ञा में पुनर्स्थापन का आदेश प्राप्त करने के बाद पुनर्स्थापन आवेदन दाखिल करने के लिए वस्तुतः अपीलार्थीगण को खड़ा किया गया था और रिट याचिका में–विवादित भूमि से प्रत्यर्थी को जबरन बेकब्जा किया गया था–अनुसूचित क्षेत्र विनियमन अधिनियम, 1969 के अधीन प्रावधानित सुरक्षा ऐसे रैय्यतों को नहीं दी जा सकती है जो अपने कपटपूर्ण कृत्यों द्वारा किसी सद्‌भावपूर्व खरीददार, जिसने उपकमिश्नर से आज्ञा प्राप्त करने के बाद भूमि अंतरित करवाया था, को कब्जाहीन करने का प्रयास करते हैं–एकल न्यायाधीश ने पुनर्स्थापन का आदेश सही अपास्त किया–अपील खारिज। (पैरा 4 से 7)

अधिवक्तागण.–M/s. S. N. Das, O.P. Singh, For the Appellants; M/s J.C. to S.C. II, Rahul Gupta, Suraj Kumar, For the Respondents.

आदेश

यह अपील डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 6266 वर्ष 2007 में पारित दिनांक 18 मार्च 2009 के निर्णय के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका अनुज्ञात किया और प्राधिकारीगण द्वारा पारित पुनर्स्थापन के आदेश को अपास्त कर दिया।

2. यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थीगण, जो अनुसूचित जनजाति के सदस्य हैं, ने छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम (संक्षेप में 'सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम') की धारा 49 के अधीन अपेक्षित उप-कमिश्नर से अनुमति प्राप्त करने के बाद प्रत्यर्थी के पक्ष में प्रश्नगत भूमि अंतरित किया। अनुमति दिनांक 30.12.1984 को उप-कमिश्नर द्वारा दी गयी थी। पूर्वोक्त अंतरण के बाद, प्रत्यर्थी ने अपना नाम नामान्तरित करवाया और भूमि के कब्जे में आया। लगभग 22 वर्षों के बाद, अपीलार्थीगण ने भूमि के पुनर्स्थापन के लिए अपर कलक्टर, धनबाद के समक्ष इस आधार पर आवेदन दाखिल किया कि अनुमति देते हुए उप-कमिश्नर द्वारा नियत निबंधनों और शर्तों का अनुपालन करने में प्रत्यर्थी विफल रहा। अपर कलक्टर ने दिनांक 27.7.2006 के आदेश के तहत अपीलार्थीगण के पक्ष में भूमि के पुनर्स्थापन का निर्देश इस आधार पर दिया कि वर्ष 1985 में भूमि खरीदने के बाद प्रत्यर्थी ने इसका उपयोग नहीं किया था। प्रत्यर्थी ने कमिश्नर, उत्तर छोटानागपुर डिविजन के समक्ष पुनर्स्थापन के आदेश के विरुद्ध अपील दाखिल किया जिसे खारिज कर दिया गया था। प्रत्यर्थी ने अपर कलक्टर और कमिश्नर, हजारीबाग द्वारा पारित पुनर्स्थापन के आदेश को चुनौती देते हुए डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 6266 वर्ष 2006 दाखिल किया। विद्वान

एकल न्यायाधीश ने पाया कि निर्विवादत: भूमि के पुनर्स्थापन के लिए पुनर्स्थापन आवेदन 22 वर्षों बाद दाखिल किया गया था और कि पुनर्स्थापन का आदेश प्राप्त करने के लिए अपीलार्थीगण को कोई आधार उपलब्ध नहीं था। अत: विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका अनुज्ञात किया और पुनर्स्थापन का आदेश अपास्त कर दिया।

3. मामला के सर्वाधिक दिलचस्प और महत्वपूर्ण तथ्य, जिन्हें प्रत्यर्थी सं॰ 4 द्वारा अभिलेख पर लाया गया है, ये है कि रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान अपीलार्थीगण ने 8 विक्रय-विलेखों को निष्पादित किया और समस्त प्रश्नगत भूमि को किसी हेमन्त सोरेन के पक्ष में अंतरित किया और प्रश्नगत भूमि से प्रत्यर्थी को जबरन कब्जा रहित कर दिया गया था। अपीलार्थीगण ने दिनांक 25.1.2010 के अपने प्रत्युत्तर द्वारा तथ्यों को स्वीकार किया है कि उन्होंने भूमि किसी हेमन्त सोरेन को बेच दिया है।

4. अनुसूचित क्षेत्र विनियमन अधिनियम, 1969 उनके शोषण से अनुसूचित जनजाति के सदस्यों की हितों की रक्षा और उन रैयतों, जो अनुसूचित जनजाति के सदस्य है, को किसी कपटपूर्ण तरीके द्वारा उनकी भूमि से जबरन बेकब्जा नहीं किया जा सकता है, सुनिश्चित करने के उद्देश्य से प्रख्यापित किया गया था।

5. वर्तमान मामले में, हमने पाया है कि वस्तुत: अपीलार्थीगण को पुनर्स्थापन आवेदन दाखिल करने के लिए कुछ हितबद्ध व्यक्तियों द्वारा खड़ा किया गया था और पुनर्स्थापन का आदेश प्राप्त करने के बाद न केवल पुनर्स्थापन के आदेश के आधार पर ही बल्कि रिट याचिका में पारित अंतरिम आदेश की अवज्ञा में अपीलार्थीगण ने भूमि बेची थी। प्रत्यर्थी को विवादित भूमि से जबरन बेकब्जा किया गया था। अत: हमारे मत में, विनियमन के अधीन प्रावधानित सुरक्षा ऐसे रैयतों को नहीं दी जा सकती है जो कपटपूर्ण कृत्य द्वारा किसी सद्भावपूर्ण खरीददार, जिसने उप-कमिश्नर की अनुमति प्राप्त करने के बाद भूमि अंतरित करवाया था, को बेकब्जा करने का प्रयास करते है।

6. पूर्वोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों में विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका सही अनुज्ञात किया है और प्राधिकारीगण द्वारा पारित पुनर्स्थापना के आदेश को अपास्त किया है। मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में, हमारा दृष्टिकोण यह भी है कि विवादित भूमि का कब्जा प्रत्यर्थी, जिसके पक्ष में वर्ष 1985 में अपीलार्थीगण द्वारा भूमि अंतरित की गयी थी किन्तु संबंधित प्राधिकारीगण द्वारा गैर-कानूनी रूप से बेकब्जा कर दिया गया था, को पुनर्स्थापित करने के लिए उपकमिश्नर को निर्देशित किया जाना चाहिए।

7. पूर्वोक्त कारणों से, यह अपील पूर्वोक्त निर्देशों के साथ खारिज की जाती है।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

भारत संघ एवं अन्य

बनाम

अनामिका सहकारी गृह निर्माण समिति लि॰ एवं अन्य

Miscellaneous Appeal 325 of 2007. Decided on 30th April, 2010.

अभिधान अपील सं॰ 130 वर्ष 2003 में श्री मनोरंजन कवि, दशम अपर न्यायिक कमिश्नर-सह-तृतीय विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰ (ए॰ एच॰ डी॰ मामलें), राँची द्वारा पारित दिनांक 22.6.2007 के निर्णय के विरुद्ध।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश 41, नियम 27 सह-पठित धारा 151—अतिरिक्त साक्ष्य—आवेदन की अस्वीकृति–विक्रय-विलेखो को अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में दिया जाना इप्सित किया गया–अवर अपीलीय न्यायालय ने निष्कर्ष पर आने के लिए अभिलेख की गलती की कि यद्यपि वह आदेश 41 नियम 27 सह-पठित धारा 151 सी॰ पी॰ सी॰ के अधीन आवेदन अनुज्ञात करने के लिए तैयार है किन्तु किसी लाभदायी उद्देश्य की प्राप्ति नहीं होगी क्योंकि वादीगण द्वारा दाखिल दस्तावेज छाया प्रतिलिपि में उपलब्ध है–चूँकि वे मूल में उपलब्ध है, अपीलीय न्यायालय को समुचित आदेश पारित करना चाहिए था–रिमान्ड का आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है और अपास्त किए जाने योग्य है–अपील अनुज्ञात।(पैरा 5 से 7)

अधिवक्तागण.–Mr. Md. Mokhtar Khan, For the Appellants; Mr. S. Srivastava, For the Respondents.

न्यायालय द्वारा.—यह अपील अभिधान अपील सं॰ 130 वर्ष 2003 में श्री मनोरंजन कवि, दशम अपर न्यायिक कमिश्नर-सह-तृतीय विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰ (ए॰ एच॰ डी॰ मामलें), राँची द्वारा पारित दिनांक 22.6.2007 के निर्णय के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिस निर्णय के द्वारा श्री अशोक कुमार पाठक, सब-जज-VII, राँची द्वारा पारित दिनांक 12.11.2003 के निर्णय एवं डिक्री को अपास्त करने के बाद उन्होंने मामले को पुनर्विचारण के लिए विचारण न्यायालय को वापस भेज दिया।

2. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि आक्षेपित निर्णय से प्रतीत होगा कि इसके अपने गुणागुण पर अपील का विनिश्चय करने के बजाय विद्वान अपीलीय न्यायालय ने अपने निर्णय के पैराग्राफ 14 में केवल यह विवेचना किया की कि वादीगण-प्रत्यर्थीगण ने लगभग अठारह (18) दस्तावेजों को दाखिल किया है किन्तु 18 विक्रय-विलेखों में से किसी भी एक दस्तावेज को सिद्ध नहीं कर पाये है। दस्तावेजों को अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में स्वीकार किए जाने की प्रार्थना करते हुए दिनांक 23.2.2007 को आदेश 141, नियम 27 सह-पठित धारा 151 सी॰ पी॰ सी॰ के अधीन वादीगण-अपीलार्थीगण ने याचिका दाखिल की और अवर अपीलीय न्यायालय ने निष्कर्ष दिया कि चूँकि तीन (3) विक्रय-विलेख जैसे दिनांक 28.12.89 का विक्रय-विलेख सं॰ 11600; दिनांक 19.4.88 का विक्रय-विलेख सं॰ 4289; और दिनांक 18.1.90 का विक्रय-विलेख सं॰ 1063 को साक्ष्य में नहीं लिया जा सकता है क्योंकि वे छाया प्रतिलिपि है और पैरा 16 पर आगे निष्कर्ष दिया कि चूँकि छाया प्रतिलिपियों को प्रदर्श के रूप में चिन्हित नहीं किया जा सकता है, अत: आदेश 41, नियम 27 सह-पठित धारा 151 सी॰ पी॰ सी॰ के अधीन आवेदन अनुज्ञात नहीं किया जा सकता हैं क्योंकि पूर्वोक्त दस्तावेजों के आधार पर वादीगण अपना अभिधान सिद्ध नहीं कर सकते है। किंतु यह निष्कर्ष कि वादीगण अपना अभिधान सिद्ध नहीं कर सकते हैं, पर आने के बाद भी अंतिम पैराग्राफ में मामले को पुनर्विचारण के लिए अवर न्यायालय के पास वापस भेज दिया और इस प्रकार विद्वान अपीलीय न्यायालय का पूरा रवैया और निष्कर्ष विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है और अपास्त किए जाने योग्य है। विद्वान दशम अवर न्यायिक कमिश्नर को अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों और दस्तावेजों के आधार पर मामला विनिश्चित करना चाहिए था एवं दोनों पक्षों के गुणागुणों पर विचार करने के बाद उन्हें निष्कर्ष देना चाहिए था।

4. दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि विद्वान दशम अपर न्यायिक कमिश्नर का पैरा 16 में निष्कर्ष गलत है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेजों का समुचित परिशीलन किए बिना विद्वान दशम अपर न्यायिक कमिश्नर इस निष्कर्ष पर आए कि विक्रय विलेख जैसे दिनांक 28.12.89 का विक्रय-विलेख सं॰ 11600; दिनांक 19.4.88 का विक्रय-विलेख सं॰ 4289 और दिनांक 18.1.90 का विक्रय-विलेख सं॰ 1063 की मूल प्रति अभिलेख पर उपलब्ध नहीं है और चूँकि उनकी केवल छाया प्रतिलिपियाँ उपलब्ध है, उन्हें चिन्हित नहीं किया जा सकता है और यदि आदेश 41, नियम 27 सह-पठित धारा 151 सी॰ पी॰ सी॰ के अधीन आवेदन अनुज्ञात भी किया जाता है

वादीगण अपना अभिधान सिद्ध करने में सक्षम नहीं होंगे। आगे निवेदन किया गया है कि इस न्यायालय में उपलब्ध अवर न्यायालय के अभिलेख के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि ये तीनों (3) विक्रय-विलेख मूल में अभिलेख पर उपलब्ध है।

5. दोनों पक्षों का तर्क सुनने के बाद और रनिन्ग पृष्ठ सं॰ 622 पर विक्रय-विलेख सं॰ 1063 दिनांक 18.1.90, रनिंग पृष्ठ सं॰ 626 पर विक्रय-विलेख सं॰ 11600 दिनांक 28.12.89 और रनिंग पृष्ठ सं॰ 630 पर विक्रय-विलेख सं॰ 4289 दिनांक 19.4.88 पर यह पाया गया था कि तीनों विक्रय-विलेख अपने मूलरुप में अभिलेख पर उपलब्ध है और इस प्रकार विद्वान अपीलीय न्यायालय का निष्कर्ष कि ये तीनों विक्रय-विलेख की छाया प्रतिलिपियाँ उपलब्ध है और इसलिए उन्हें प्रदर्श के रूप में चिन्हित नहीं किया जा सकता है और छाया प्रतिलिपियों के आधार पर वादीगण अपना अभिधान सिद्ध नहीं कर सकते हैं, सही नहीं है।

6. दोनों पक्षों को सुनने के बाद कि इस निष्कर्ष पर आते हुए कि विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने अभिलेख की गलती की है कि यद्यपि वह आदेश 41, नियम 27 सह-पठित धारा 151 सी॰ पी॰ सी॰ के अधीन आवेदन अनुज्ञात करने के लिए तैयार है, किन्तु इसका कोई लाभदायक उद्देश्य पूरा नहीं होगा क्योंकि वादीगण द्वारा दाखिल दस्तावेज की छाया प्रतिलिपियाँ उपलब्ध है किन्तु चूँकि उनकी मूल प्रति भी उपलब्ध है जैसा ऊपर इंगित किया गया है, विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय को समुचित आदेश पारित करना चाहिए था। मामले के उस दृष्टिकोण में, रिमांड का आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है और अपास्त किए जाने योग्य है।

7. तद्नुसार, अपील अनुज्ञात की जाती है और अभिधान अपील सं॰ 130 वर्ष 2003 में, श्री मनोरंजन कवि, दशम अपर न्यायिक कमिश्नर-सह-तृतीय विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰ (ए॰ एच॰ डी॰ मामले), राँची, द्वारा पारित दिनांक 22.6.2007 का आक्षेपित निर्णय और डिक्री अपास्त किया जाता है। किन्तु आदेश 41, नियम 27 सह-पठित 151 सी॰ पी॰ सी॰ के अधीन वादीगण द्वारा दाखिल आवेदन के निपटारे के लिए दोनों पक्षों को सुनने के बाद मामला दशम अपर न्यायिक कमिश्नर-सह-तृतीय विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰ (ए॰ एच॰ डी॰ मामलें), राँची को वापस भेजा जाता है एवं तत्पश्चात् इस आदेश द्वारा पूर्वाग्रहित हुए बिना अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों और दस्तावेजों पर मामला विस्तारपूर्वक सुने और अपील निपटाए।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

अयोध्या प्रसाद गुप्ता

बनाम

भगवान शर्मा एवं एक अन्य

W. P. (C) No. 4572 of 2009. Decided on 10th May, 2010.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश 6, नियम 17 सह-पठित धारा 151—वाद पत्र का संशोधन-आवेदन की खारिजी-रजिस्टर्ड विक्रय-विलेख पर टाइटल वाद आधारित-वादी द्वारा अभिलेख पर अपनी पत्नी का नाम, जिसके नाम में विक्रय विलेख रजिस्र्टड था, लाने का प्रयास-यह नहीं कहा जा सकता है कि वाद की संपूर्ण प्रकृति बदल जाएगी और न ही यह कहा जा सकता है कि मूल प्रतिवादीगण पर कोई प्रतिकूल प्रभाव कारित होगा-वादी के पक्ष का साक्ष्य अभी शुरू नहीं किया गया है-वाद कार्यवाही के काफी आरंभिक चरण पर आदेश VI, नियम 17 के

अधीन संशोधन आवेदन दाखिल किया गया है–संशोधन आवेदन अनुज्ञात करना सही निर्णय पर आने के लिए विचारण न्यायालय को सुकर बनाएगा–आक्षेपित आदेश अपास्त।

(पैरा 5 से 7)

अधिवक्तागण.–M/s Satyanarayan Pd., For the Petitioner; None, For the Opp. Parties.

आदेश

वर्तमान याचिका अभिधान वाद सं॰ 123 वर्ष 2004 में अपर मुंसिफ I, राँची द्वारा पारित दिनांक 16 जुलाई, 2009 के आदेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VI, नियम 17 सह-पठित धारा 151 के अधीन वर्तमान याची (मूल वादी) द्वारा दाखिल संशोधन आवेदन खारिज कर दिया गया है।

2. मैंने याची के विद्वान अधिवक्ता को विस्तारपूर्वक सुना है जिन्होंने निवेदन किया है कि याची मूल वादी है, जिसने मूल वादी के पक्ष में रजिस्टर्ड विक्रय-विलेख के आधार पर अभिधान वाद सं॰ 123 वर्ष 2004 संस्थापित किया है और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VI, नियम 17 के अधीन और आदेश 1, नियम 10 के अधीन भी वर्तमान याची की पत्नी का नाम वादी सं॰ 1 के रूप में जोड़ने के लिए आवेदन दिया था क्योंकि विक्रय-विलेख जिसपर मूल वादी विश्वास कर रहा है, वह वादी की पत्नी के नाम में और जहाँ तक संशोधन का संबंध है, वादी और प्रतिवादीगण के बीच हुई दांडिक कार्यवाही के बारे में कतिपय अन्य दस्तावेजों और कतिपय तथ्यों को विचारण न्यायालय के ध्यान में लाया गया है जो वाद संपत्ति पर मूल वादी के कब्जे को प्रकट करता है।

3. वर्तमान याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि विचारण न्यायालय ने मुख्यत: इस आधार पर इस आवेदन को खारिज कर दिया है कि दांडिक कार्यवाही में पहले से ही सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित अंतिम आदेश है और इसलिए वाद पत्र को संशोधित करने की आवश्यकता है ही नहीं और विचारण न्यायालय ने इस तथ्य को नजर अंदाज किया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VI, नियम 17 के अधीन संशोधन आवेदन विनिश्चित करते हुए संशोधन के समय ही देखा जाना जरूरी है ही नहीं। संशोधन का गुणागुण केवल प्रश्नगत वाद की अंतिम सुनवाई के समय ही देखा जा सकता है। इस पहलू का अधिमूल्यन नहीं किया गया है और इसलिए आक्षेपित आदेश अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है।

4. जब मामला बुलाया गया, प्रत्यर्थीगण की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ यद्यपि उन्होंने प्रति शपथपत्र दाखिल किया है।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और प्रत्यर्थीगण द्वारा दाखिल प्रति शपथपत्र के परिशीलन पर, मैं मुख्यत: निम्नलिखित कारणों से अभिधान वाद सं॰ 123 वर्ष 2004 में अपर मुंसिफ-I, राँची द्वारा पारित दिनांक 16 जुलाई, 2009 के आदेश को एतद् द्वारा अभिखंडित और अपास्त करता हूँ:–

(i) यह प्रतीत होता है कि वर्तमान याची मूलवादी है जिसने मुंसिफ-I, राँची के न्यायालय के समक्ष अभिधान वाद सं० 123 वर्ष 2004 संस्थापित किया है। अभिधान वाद मूल याची के पक्ष में निष्पादित रजिस्टर्ड विक्रय-विलेख पर आधारित है।

(ii) मामले के तथ्यों से आगे प्रतीत होता है कि वादी के पक्ष का साक्ष्य शुरू भी नहीं किया गया था और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश I नियम 10 के अधीन आवेदन दाखिल किया गया था जिसमें यह इंगित किया गया है कि विक्रय-विलेख जिस पर

मूलवादी विश्वास कर रहा है उसकी पत्नी अर्थात् श्रीमती रुक्मिनी देवी के नाम में है और इसलिए श्रीमती रुक्मिनी देवी, जो वर्तमान याची की पत्नी है, का नाम वादी सं० 1 के रूप में जोड़ने के लिए आवेदन दाखिल किया गया था क्योंकि विक्रय-विलेख इस पक्षकार अर्थात् रुक्मिनी देवी के पक्ष में है और इसलिए वाद के वादी के रूप में उसको जोड़ा जाना चाहिए। मामले के इस पहलू पर विचारण न्यायालय द्वारा समुचित अधिमूल्यन नहीं किया गया है।

(iii) यह भी प्रतीत होता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता को आदेश VI, नियम 17 के अधीन आवेदन दाखिल किया गया है जिसके द्वारा तीन संशोधनों, जैसा पैराग्राफ 11 (i, ii और iii) में कथन किया गया है, को संशोधन के मुताबिक संशोधित करना ईप्सित किया गया है जो याचिका के मेमो के परिशिष्ट-4 पर है। इस संशोधन को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता है कि वाद की संपूर्ण प्रकृति बदल जाएगी और न ही यह कहा जा सकता है कि मूल प्रतिवादीगण पर कोई प्रतिकूल प्रभाव कारित होगा। इसके अतिरिक्त, वादी के पक्ष का साक्ष्य अभी भी शुरू नहीं किया गया है। अतः वाद कार्यवाही के काफी आरम्भिक चरण पर आदेश VI, नियम 17 के अधीन संशोधन आवेदन दाखिल किया गया है।

(iv) आक्षेपित आदेश से आगे प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय ने संशोधन के गुणागुणों पर अनावश्यक रूप से विचार किया है। विचारण न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए था कि जब कभी भी सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VI नियम 17 के अधीन कोई संशोधन आवेदन दाखिल किया जाता है, संशोधन के गुणागुणों को देखना ही नहीं है। उस पर केवल वाद की अंतिम सुनवाई के समय ही विचार किया जा सकता है। संशोधन की प्रकृति का परिशीलन करते हुए जिसे मूल वादी इप्सित कर रहा है, यह नहीं कहा जा सकता है कि वाद की संपूर्ण प्रकृति बदल जाएगी। इसके विपरीत, इस संशोधन आवेदन का अनुज्ञात किया जाना पक्षों के बीच विवाद के बारे में सही निर्णय पर आने के लिए विचारण न्यायालय को सुकर बनाएगा। किसी दांडिक कार्यवाही के जरिए किसी विवाद्यक को सुनिश्चित किया गया है या नहीं, इस पर विचारण न्यायालय द्वारा पूर्व निर्णय नहीं किया जा सकता है जब आदेश 6 नियम 17 के अधीन आवेदन विनिश्चित किया जाना है। मामले के इस पहलू का समुचित अधिमूल्यन विचारण न्यायालय द्वारा नहीं किया गया है जो अभिलेख पर एक प्रकट गलती है।

6. पूर्वोक्त तथ्यों एवं कारणों के संचयी प्रभाव के कारण, मैं अभिधान वाद सं० 123 वर्ष 2004 में अपर मुंसिफ-I, राँची द्वारा पारित दिनांक 15 जुलाई, 2009 के आदेश को एतद् द्वारा अभिखंडित एवं अपास्त करता हूँ और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VI, नियम 17 के अधीन आवेदन सी० पी० सी० के आदेश 1, नियम 10 के अधीन वर्तमान याची द्वारा नीचे दाखिल आवेदन एतद् द्वारा 500/- रुपये के व्यय के साथ अनुज्ञात किए जाते हैं जिसे मूल वादी द्वारा जमा किया जाएगा और समुचित आवेदन पर प्रतिवादी द्वारा लिया जाना अनुज्ञात किया जाएगा।

7. तद्नुसार, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और निपटायी जाती है।

माननीय डी० जी० आर० पटनायक, न्यायमूर्ति

डिविजनल मैनेजर, नेशनल इंश्योरेंस कं० लि०

बनाम

उषा सिन्हा एवं अन्य

W.P. (C) No. 2284 of 2008. Decided on 14th May, 2010.

विधिक सेवा प्राधिकार अधिनियम, 1987—धाराएँ 22C एवं 22D—मोटर वाहन दुर्घटना–दावेदार को 4,45,000/- रुपया मुआवजा भुगतान करने का निर्देश याची इंश्योरेंस कम्पनी को स्थायी लोक अदालत द्वारा दिया गया–किसी सुलह के लिए सहमति देने से इंश्योरेंस कम्पनी का इंकार–फिर भी स्थायी लोक अदालत ने गुणागुणों पर विवाद विनिश्चित करने की ओर अग्रसर हुआ और आक्षेपित आदेश पारित किया था–स्थायी लोक अदालत गुणागुणों पर विवाद के न्याय निर्णयन हेतु अग्रसर नहीं हो सकता था–आक्षेपित आदेश अपास्त–मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण के समक्ष अपना दावा करने की प्रत्यर्थी को स्वतंत्रता दी गयी–आवेदन अनुज्ञात।
(पैरा 3, 4, 7 से 9)

निर्णयज विधि.–2008(3) JLJR 513; 2009(4) JLJR 129—Relied.

अधिवक्तागण.–Mr. Alok Lal, For the Petitioner; Mr. A. K. Mishra, For the Respondent Nos. 1 to 3; Mr. Tarun Kumar, For the Respondent No.4; Mr. G.C. Jha, For the Respondent No. 5.

आदेश

पक्षों के अधिवक्ता को सुना गया।

2. इस रिट याचिका में याची ने पी॰ एल॰ ए॰ केस सं॰ 159 वर्ष 2007 में स्थायी लोक अदालत, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 27.2.2008 के आदेश (परिशिष्ट-1) के अभिखंडन के लिए प्रार्थना की है जिसके द्वारा स्थायी लोक अदालत ने याची-इंश्योरेंस कम्पनी को मुआवजा के तौर 4,45,000/-रुपयों की राशि का भुगतान दावेदारों अर्थात प्रत्यर्थी सं॰ 1 से 4 का करने का निर्देश दिया था।

3. कथन किए गए तथ्यों से, यह प्रतीत होता है कि दावेदारगण (प्रत्यर्थी सं॰ 1-4) ने याची-इंश्योरेंस कम्पनी के विरुद्ध और आपराधिक ट्रक, जो मोटर दुर्घटना में अंतर्ग्रस्त था जिसकी परिणति मृतक, प्रत्यर्थी सं॰ 1 के पति, की मृत्यु में हुई, के स्वामी के विरुद्ध भी स्थायी लोक अदालत के समक्ष मोटर वाहन अधिनियम के प्रावधानों के अधीन दावा दाखिल किया था। नोटिस पाने पर, याची-इंश्योरेंस कम्पनी स्थायी लोक अदालत के समक्ष उपस्थित हुआ था और अपना लिखित कथन दाखिल किया था। अपने अभिवाकों में, इंश्योरेंस कम्पनी कथित किए गए आधारों पर विवाद पर किसी सुलह के लिए इंकार करता प्रतीत होता है। ऐसे इंकार के बावजूद स्थायी लोक अदालत गुणागुणों पर विवाद विनिश्चित करने के लिए अग्रसर हुआ और मुआवजा के तौर पर राशि के भुगतान का निर्देश याची-इंश्योरेंस कम्पनी को देते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया था।

4. स्थायी लोक अदालत के आक्षेपित आदेश का विरोध करते हुए याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि स्वयं अपनी अधिकारिता और प्राधिकार का अतिक्रमण करते हुए स्थायी लोक अदालत द्वारा आक्षेपित आदेश पारित किया गया है। विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते है कि चूँकि स्थायी लोक अदालत द्वारा विवाद का समाधान किए जाने के लिए सहमति देने से याची ने मना और इंकार किया है, इसे तब छोड़ दिया जाना चाहिए था और अपने अनुतोष को ईप्सित करने के लिए दावेदारगण को मोटर वाहन दावा अधिकरण के समक्ष निर्दिष्ट कर देना चाहिए था। विद्वान अधिवक्ता आगे जोड़ते हैं कि विधिक सेवा प्राधिकार अधिनियम की धारा 22(C) के प्रावधानों के अधीन अधिकथित प्रक्रिया को नहीं अपनाने और इसका अनुसरण नहीं करने में भी स्थायी लोक अदालत ने गलती की थी।

5. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी सं॰ 1 से 4 के विद्वान अधिवक्ता तर्क करेंगे कि यद्यपि याची इंश्योरेंस कम्पनी के सुलह से इंकार कर दिया था किन्तु उसी समय ऐसा इंकार मामले के गुणागुणों के आधार पर किया

गया था और इसलिए याची–इंश्योरेंस कम्पनी को यह कहकर मुकर जाने को अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है कि इसने स्थायी लोक अदालत की अधिकारिता के अधीन विवाद को विनिश्चित करने के लिए सहमति नहीं दी थी।

6. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने एवं आक्षेपित आदेश का परिशीलन करने पर, मैं पाता हूँ कि स्थायी लोक अदालत ने आक्षेपित आदेश के पैरा 6 में निम्नलिखित संप्रेक्षित किया है:–

> *''सुलह कार्यवाही के दौरान वि० प० सं० 2 मेसर्स नेशनल इंश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड ने इस आधार पर सुलह से इंकार किया था कि ट्रक ऐसे चालक द्वारा चलाया जा रहा था जिसके पास वैध लाइसेन्स नहीं था। इस संबंध में, याचिका भी दाखिल की गयी है। इस प्रकार यह मामला विधिक सेवा प्राधिकार अधिनियम की धारा 22C (8) और 22D के अधीन गुणागुण पर विनिश्चय के लिए लिया जाता है।''*

7. जैसा आक्षेपित आदेश से प्रतीत होता है कि यह प्रकट है कि उसके समक्ष उठाए गए विवाद के मामले में कोई सुलह स्वीकार करने से याची इंश्योरेंस कम्पनी ने इंकार किया है। अत: यह स्पष्टत: अंतर्निहित करता है कि याची इंश्योरेंस कम्पनी स्थायी लोक अदालत की अधिकारिता के अधीन होने के लिए सहमत नहीं था। ऐसी परिस्थितियों के अधीन, गुणागुणों पर विवाद के न्याय निर्णयन हेतु स्थायी लोक अदालत अग्रसर नहीं हो सकता था।

इसके अतिरिक्त, यह भी प्रतीत होता है कि विवाद ग्रहण करने के बाद भी संबंधित पक्षों को समझौते के किसी निबंधन को प्रस्तुत करने का प्रयास स्थायी लोक अदालत द्वारा नहीं किया गया था।

8. विधिक सेवा प्राधिकार अधिनियम की धारा 22C एवं 22D के प्रावधानों के अधीन स्थायी लोक अदालत की शक्तियों के विस्तार पर इस न्यायालय के अनेक निर्णयों में विस्तारपूर्वक चर्चा और स्पष्टीकरण किया गया है। **भारत संचार निगम लिमिटेड बनाम झारखंड राज्य एवं एक अन्य,** 2008 (3) JLJR 513 में प्रकाशित मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:–

> *''स्थायी लोक अदालत का कर्तव्य विवाद के न्याय निर्णयण के बजाय पक्षों को समझौत पर लाना है। धारा 22C (8) के प्रावधानों का प्रत्यक्षत: अवलम्ब लेने और पक्षों की इच्छा के विरुद्ध गुणागुण पर विवाद विनिश्चित करने की अधिकारिता स्थायी लोक अदालत को नहीं है।''*

इस्टर्न सेन्ट्रल रेलवे एवं एक अन्य बनाम अशोक कुमार वर्मा एवं अन्य, 2009 (4) JLJR 129 में प्रकाशित मामले में एक अन्य निर्णय में इस न्यायालय द्वारा समान दृष्टिकोण अपनाया गया है।

9. पूर्वोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए, मैं इस रिट याचिका में गुणागुण पाता हूँ। तद्नुसार, इसे अनुज्ञात किया जाता है। स्थायी लोक अदालत का आक्षेपित आदेश एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। प्रत्यर्थी सं॰ 1 से 4 सक्षम अधिकारिता वाले मोटर वाहन दावा अधिकरण के समक्ष अपना दावा पेश करने के लिए और ऐसे फोरम के समक्ष अपना उपचार ईप्सित करने के लिए स्वतंत्र होंगे। राशि जिसे याची ने इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 24.11.2009 के आदेश के अनुसरण में संभवत: जमा किया था, उसे तुरन्त याची को लौटा दिया जाएगा।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

सुनील कुमार एवं एक अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Rev. No. 10 of 2010. Decided on 14th May, 2010.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 376 सह-पठित दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 227—विवाह के झूठे आश्वासन जिसे तय नहीं किया जा सका था पर किशोरी के साथ सहवास–उन्मोचन आवेदन अस्वीकार–दहेज मांग का अभिकथन पर्याप्त रूप से सम्पुष्ट नहीं किया जा सका था–शारीरिक संबंध के समय किशोरी 16 वर्ष से कम आयु की थी–भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन प्रस्तावित आरोप से उन्मोचन का आवेदन सही अस्वीकार किया गया–किन्तु डी॰ पी॰ अधिनियम की धारा 3 के अधीन मामला एक अन्य याची के विरुद्ध आकृष्ट नहीं होता है–उस याची को विचारण से उन्मोचित किया जाता है–याचिका अंशतः अनुज्ञात। (पैरा 8 से 10)

अधिवक्तागण.–Mr. M. S. Chhabra, For the Petitioners; A.P.P., For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.—वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण याचिका श्री एस॰ के॰ चौधरी, अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ 1, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 18.11.2009 के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा सी॰ पी॰ केस सं॰ 329 वर्ष 2007 से उद्भूत सत्र विचारण सं॰ 199 वर्ष 2008 में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अधीन उनके उन्मोचन के लिए याचीगण की प्रार्थना खारिज कर दी गयी थी।

2. संक्षेप में, अभियोजन कथा यह है कि सी॰ पी॰ केस सं॰ 329 वर्ष 2007 को उद्भूत करते हुए सी॰ जी॰ एम॰ बोकारो के समक्ष विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 डॉ॰ मोती लाल सिंह ने परिवाद दाखिल किया था जिसमें कथन किया गया था कि याची सं॰ 2 शिव जतन प्रसाद उर्फ शिव जतन प्रसाद एच॰ सी॰ एल॰, बोकारो का कर्मचारी था और अपने परिवार के सदस्यों के साथ बोकारो स्टील लिमिटेड के झोपड़ी कॉलोनी में रह रहा था और परिवादी वि॰ प॰ सं॰ 2 भी उसी कॉलोनी में रह रहा था। अभिकथन किया गया था कि परिवादी की पुत्री रेणुका कुमारी को वर्ष 2001 में याची सं॰ 1 के साथ प्रेम हो गया जो बाद में एक-दूसरे के काफी नजदीक आ गए थे। वर्ष 2003 में याची सं॰ 1 अभियुक्त ने सैन्य सेवा ग्रहण कर लिया और जिसके लिए उसके पिता अर्थात् याची सं॰ 2 ने 10,000/- रुपया कर्ज लिया क्योंकि उसके पुत्र को पदग्रहण हेतु जाने के लिए धन की अत्यधिक आवश्यकता थी। आगे अभिकथन किया गया था कि याची सुनील कुमार ने इस झूठे आश्वासन पर वह उससे विवाह करेगा, अनेक अवसरों पर परिवादी की पुत्री अर्थात् रेणुका कुमारी के साथ शारीरिक संबंध स्थापित किया। अभिकथन किया गया था कि जब कभी उसने विवाह के लिए जोर दिया और उस पर दबाद दिया, याची सुनील कुमार एक या दूसरे बहाने बात टाल जाया करता था। अंततः जब परिवादी द्वारा याची सं॰ 1 सुनील कुमार को उसकी पुत्री के साथ विवाह करने के लिए कहा गया था, उसने अपने पिता याची सं॰ 2 को अनुमोदित किया कि उसको निर्णय लेना था। ऐसे अनुमोदन के अनुसरण में परिवादी याची सं॰ 2 के पास गया जिसने विवाह संपन्न करने हेतु परिवादी वि॰ प॰ सं॰ 2 से 5 लाख रुपया बतौर दहेज मांगा। यह कथन किया गया था कि चूँकि परिवादी आर्थिक रूप से संपन्न नहीं था क्योंकि वह वर्ष 2003 में स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति पहले ही ले चुका था,

उसने इतनी बड़ी राशि का भुगतान करने में अपनी अक्षमता व्यक्त की जिस कारण विवाह निश्चित नहीं किया जा सका था। परिवादी ने अभिकथन किया कि याचीगण ने अपने आचरण द्वारा छल किया और याची सं॰ 1 ने विवाह जिसे संपन्न नहीं किया जा सका था, के झूठे आश्वासन पर उसकी पुत्री के साथ सहवास किया। परिवाद याचिका एस॰ डी॰ जे॰ एम॰ बोकारो को अंतरित कर दी गयी थी और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 202 के अधीन आरंभिक जाँच के बाद याची सुनील कुमार के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन प्रथम दृष्टया अपराध पाया गया था जबकि दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 के अधीन याची सं॰ 2 के विरुद्ध अपराध आकृष्ट होता पाया गया था और तद्नुसार उनदोनों के विरुद्ध समन जारी किए गए थे।

3. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री छाबरा ने निवेदन किया कि सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान पर दर्ज परिवादी का बयान और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 202 के अधीन जाँच के दौरान दर्ज किशोरी रेणुका कुमारी का बयान प्रकट करेगा कि वर्ष 2001 से रेणुका कुमारी का प्रेम प्रसंग याची सं॰ 1 के साथ चल रहा था और दोनों पक्षों के माताओं-पिताओं को उनके प्रेम और यौन संबंधों की पूरी जानकारी थी। उसने स्वीकार किया कि उसके और याची सं॰ 1 सुनील कुमार के बीच शारीरिक संबंध पहली बार वर्ष 2003 में स्थापित हुआ था जो किसी पक्ष के परिवार द्वारा किसी विरोध के बिना अनेक वर्षों तक बना रहा। यद्यपि उसने न्यायालय में कथन किया कि वह केवल 17 वर्ष की थी जब उसने पहली बार सुनील कुमार के साथ संभोग किया किन्तु आयु की ऐसी घोषणा किसी दस्तावेजी साक्ष्य अथवा किसी पुष्टिकरण साक्ष्य द्वारा सिद्ध नहीं की जा सकी थी, फिर भी विधि के अधीन स्वयं अपने निर्णय के और इच्छापूर्वक संभोग करने के लिए वह पूर्णत: सक्षम थी क्योंकि वह 16 वर्ष से अधिक आयु की थी और इस प्रकार धारा 376 के अधीन अपराध याची सं॰ 1 सुनील कुमार के विरुद्ध इस कारण से आकृष्ट नहीं हो सकता था क्योंकि रेणुका कुमारी एक सक्षम पक्ष थी।

4. भारतीय दंड संहिता की धारा 375 के अधीन बलात्कार का अपराध परिभाषित किया गया है जो कहता है:–

> *''किसी पुरुष को ''बलात्कार'' करता कहा जाता है जो यहाँ इसमें इसके बाद आपवादिक मामलों को छोड़कर निम्नलिखित छह वर्णनों में से किसी के अधीन आती परिस्थितियों के अधीन किसी स्त्री के साथ यौन संभोग करता है; षष्टम उसकी सहमति के साथ अथवा बिना जब वह 16 वर्ष की आयु से कम है।''*

5. अपना तर्क आगे बढ़ाते हुए विद्वान अधिवक्ता, श्री छाबरा ने निवेदन किया कि पिता याची सं॰ 2 के विरुद्ध अभिकथन कि उसने विवाह के लिए धन/दहेज मांगा था, झूठा और मनगढंत था। वस्तुत: याचीगण के विरुद्ध समस्त अभिकथन याचीगण विशेषत: किसी भी तरीके से परिवादी की पुत्री का विवाह याची सं॰ 1 सुनील कुमार के साथ करने के लिए दवाबा डालने के आशय से अभिप्रेरित था। यदि यह स्वीकार भी किया जाता है कि परिवादी की पुत्री का याची सुनील कुमार के साथ निरंतर और नियमित संभोग था, गर्भधारण अथवा कि किसी भी कारण से उसका गर्भपात करा दिया गया था के समर्थन में कोई चिकित्सीय साक्ष्य नहीं था। विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ 1, बोकारो, इस पहलू के अधिमूल्यन में विफल रहे और न्यायिक विवेक को लागू किए बिना याचीगण की उन्मोचन याचिका खारिज कर दिया जिससे आक्षेपित आदेश को अपास्त करने हेतु इस न्यायालय का हस्तक्षेप अपेक्षित है।

6. वि॰ प॰ सं॰ 2 को नोटिस भेजी गयी थी किन्तु नोटिस तामील किए जाने के बावजूद परिवादी वि॰ प॰ सं॰ 2 इस दांडिक पुनरीक्षण में उपस्थित नहीं हुआ था।

7. विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ श्री मो॰ हातिम ने याचीगण की ओर से उठाए गए प्रतिवाद का विरोध किया और उनके उन्मोचन के लिए याचीगण की याचिका को खारिज करते हुए विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश के संप्रेक्षण की ओर ध्यान आकृष्ट किया। विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश ने संप्रेक्षण किया।

> *"मैंने परिवादी और जाँच गवाह अर्थात् पीड़िता किशोरी का दं० प्र० सं० की धारा 202 के अधीन दर्ज एस० ए० का परिशीलन किया है। मैंने दोनों पक्षों द्वारा दाखिल किए गए दस्तावेजों का भी परिशीलन किया है। यह प्रतीत होता है कि परिवादी और पीड़िता किशोरी ने अपने जाँच में परिवाद का समर्थन किया है। पीड़िता किशोरी ने कथन किया है कि वर्ष 2002 में वह मैट्रिक में पढ़ रही थी, उनके प्रेम प्रसंग की जानकारी उसके माता-पिता को हुई और वर्ष 2003 में उक्त सुनील कुमार ने सैन्य सेवा ग्रहण कर लिया। उसने यह भी कहा है कि वर्ष 2007 में सुनील कुमार के पिता आए और उनदोनों के विवाह के लिए उसके पिता से धन मांगा और शादी करने से इन्कार किया। न्यायालय के प्रश्न में पीड़िता किशोरी ने कथन किया कि वर्ष 2003 में सुनील कुमार ने पहली बार यौन संबंध शुरू किया जब उसकी आयु 17 वर्ष थी। मैंने पीड़िता किशोरी के मैट्रिकुलेशन बोर्ड (बी० एस० ई० बी०) के प्रवेश पत्र की प्रति का भी परिशीलन किया है। मैं उसकी जन्म तिथि 4.1.88 पाता हूँ। अतः अभिलेख पर उपलब्ध कतिपय सामग्रियाँ दर्शाती हैं कि पीड़िता किशोरी अवयस्क थी जब उसके साथ अभियुक्त सुनील कुमार द्वारा अभिकथित शारीरिक संबंध शुरू किया गया था। यह दर्शाने के लिए भी सामग्री है कि सुनील कुमार और परिवादी की पुत्री के बीच विवाह के लिए कुछ धन मांगा गया था।*

8. किन्तु विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ ने निष्पक्षत: स्वीकार किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 202 के अधीन जाँच के दौरान दहेज की मांग का अभिकथन पर्याप्त रूप से संपुष्ट नहीं किया जा सका था।

9. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए मैं पाता हूँ कि विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰। बोकारो यह संप्रेक्षण करने में न्यायोचित थे कि वर्ष 2003 में परिवादी की पुत्री और याची सुनील कुमार के बीच संभोग के पहले अवसर पर किशोरी निश्चय ही 16 वर्ष से कम आयु की थी क्योंकि मैट्रिकुलेशन बी॰ एस॰ इ॰ बी॰ के प्रवेश पत्र में किशोरी की जन्मतिथि दिनांक 4.1.1988 दर्ज की गयी थी और विद्यालय जहाँ किशोरी पठन कर रही थी, के प्रवेश रजिस्टर पर आधारित प्रवेश पत्र में जन्मतिथि का ऐसा प्रकटीकरण प्रासंगिक है और पूर्वाग्रह के बिना किसी अन्य साक्ष्य पर प्रथम दृष्टया हावी होगा।

10. विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन प्रस्तावित आरोप से याची सुनील कुमार के उन्मोचन के लिए प्रार्थना अस्वीकार करने में न्यायोचित थे किन्तु तथ्यों और परिस्थितियों के अधीन यह मत बनाने के लिए मैं पर्याप्त सामग्री नहीं पाता हूँ कि दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 के अधीन याची सं॰ 2 शिव जतन प्रसाद उर्फ शिव जतन प्रसाद के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला आकृष्ट होता था और, इसलिए यह दांडिक पुनरीक्षण अंशत: अनुज्ञात किया जाता है जहाँ तक उसके उन्मोचन के लिए याची सं॰ 2 शिव जतन प्रसाद उर्फ शिव जतन प्रसाद की प्रार्थना का संबंध है और इस प्रकार आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा उसके उन्मोचन के लिए याची सं॰ 2 शिव जतन प्रसाद उर्फ शिव

जतन प्रसाद की प्रार्थना अस्वीकार कर दी गयी थी, अपास्त किया जाता है। तद्नुसार, सी॰ पी॰ केस सं॰ 329 वर्ष 2007 से उद्भुत सत्र विचारण सं॰ 199 वर्ष 2008 में शिव जतन प्रसाद उर्फ शिव जतन प्रसाद को उन्मोचित किया जाता है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

झारखंड राज्य

बनाम

मंजूदा महाली

Cr. Reference No.1 of 2010. Decided on 14th May, 2010.

भारत का संविधान, 1950—अनुच्छेद 22 (1)–दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 303—दं॰ प्र॰ सं॰ अपने चयनित अधिवक्ता द्वारा बचाव किए जाने का अधिकार अनुज्ञात करता है किन्तु यह गारंटीकृत अधिकार नहीं है–संवैधानिक अधिकार, जैसा अनुच्छेद 22(1) में प्रतिष्ठापित किया गया है, के अल्पीकरण में न्यायालय द्वारा पारित कोई आदेश असंवैधानिक, शून्य और गैर-कानूनी होगी–अभियुक्त द्वारा चयनित अधिवक्ता को विवर्जित करता सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश संपोषणीय नहीं है–न्यायिक कार्यवाहियों पर न्यायालय को नियंत्रण करने की शक्ति है–नैसर्गिक न्याय का नियम मांग करता है कि न्यायालय में उपस्थित होने से किसी वकील को विवर्जित करता कोई आदेश पारित करने के पहले, उसे मामले में सुनना होगा–आक्षेपित आदेश अपास्त। (पैरा 11, 13 एवं 14)

निर्णयज विधि.–(2009)8 SCC 106—Relied. (2003)2 SCC 45—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. B. M. Tripathy, Amicus Curiae, For the Applicant; Mr. Ramesh Kumar Singh, Amicus Curiae, For the Accused.

आदेश

सत्र विचारण सं॰ 76 वर्ष 2009, जिसमें अभियुक्त मंजूदा महाली भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन आरोप का सामना कर रहा था, मामले की सुनवाई करते हुए विद्वान सत्र न्यायाधीश, जामतारा ने साक्ष्य के लिए दिनांक 14.12.2009 को नियत किया जिस तिथि पर अभियोजन का गवाह उपस्थित हुआ किन्तु न तो अभियुक्त जो जमानत पर था, न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुंआ और न ही उसका अधिवक्ता अर्थात् विभूति भूषण सिंह उपस्थित हुए और इस कारण अभियुक्त का जमानत पत्र रद्द कर दिया गया और उसी समय वचाव पक्ष के अधिवक्ता, श्री विभूति भूषण सिंह को उक्त अभियुक्त की पैरवी करने से विवर्जित कर दिया गया था। आगे आदेश दिया गया था कि अभियुक्त की ओर से दाखिल जमानत आवेदन केवल तब ग्रहण किया जाएगा यदि इसे किसी अन्य अधिवक्ता द्वारा न कि श्री विभूति भूषण सिंह द्वारा दाखिल किया जाता है।

2. तत्पश्चात्, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने मामला पंचम अपर सत्र न्यायाधीश-सह-एफ॰ टी॰ सी॰; जामतारा के समक्ष अंतरित कर दिया। दिनांक 17.1.2010 को अभियुक्त मंजूदा महाली गिरफ्तार कर लिया गया था और दिनांक 21.1.2010 को अभियुक्त की ओर से जमानत याचिका उसी अधिवक्ता श्री विभूति भूषण सिंह द्वारा दाखिल की गयी थी। जब उसके द्वारा आवेदन दिया जा रहा था, दिनांक 14.12.2009 के आदेश, जिसके अधीन विद्वान सत्र न्यायाधीश, जामताड़ा ने अभियुक्त का बचाव करने के लिए श्री विभूति भूषण सिंह को विवर्जित कर दिया था, को निर्दिष्ट करते हुए विद्वान ए॰ पी॰ द्वारा उनकी उपस्थिति पर आपत्ति उठायी गयी थी जो कि विद्वान पंचम अपर सत्र न्यायाधीश, जामताड़ा को दुविधा में डाल दिया क्योंकि एक ओर अभियुक्त को स्वयं द्वारा चयनित अधिवक्ता द्वारा बचाव किए जाने

का संवैधानिक और विधिक अधिकार है किन्तु दूसरी ओर अभियुक्त के बचाव के लिए अभियुक्त द्वारा चयनित अधिवक्ता को विवर्जित करता विद्वान सत्र न्यायाधीश का आदेश था जिस आदेश को उत्तरवर्ती न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 362 में अंतर्विष्ट प्रावधान की दृष्टि में वापस पुनरीक्षित नहीं किया जा सकता था और इस कारण दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 395 (2) के अधीन निम्नलिखित प्रश्नों को इस न्यायालय द्वारा विनिश्चित किए जाने हेतु निर्दिष्ट किया गया था:-

(1) क्या विद्वान सत्र न्यायाधीश, जामताड़ा द्वारा पारित दिनांक 14.12.2009 के आदेश को वापस लिए बिना वर्तमान मामले में वचाव पक्ष के अधिवक्ता, श्री विभूति भूषण सिंह को उपस्थित होने की अनुमति दी जा सकती है?

(2) क्या यह न्यायालय विद्वान सत्र न्यायाधीश, जामताड़ा द्वारा पारित पूर्वोक्त आदेश को वापस/पुनरीक्षित कर सकता है जो इस न्यायालय के मत में नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह न्यायालय भी अपर सत्र न्यायाधीश की तरह सत्र न्यायालय की अधिकारिता का प्रयोग कर रहा है।

(3) वर्तमान सत्र विचारण में अग्रसर कैसे हुआ जाए जब अभियुक्त किसी अन्य अधिवक्ता की मदद लेने के लिए तैयार नहीं है और किसी अन्य की मदद लेने के लिए अभियुक्त को मजबूर करना क्या स्वयं उसके द्वारा चयनित अधिवक्ता द्वारा बचाव किए जाने के उसके विधिक अधिकार पर प्रभाव नहीं डालेगा।

3. मामले की संस्थापना पर, श्री बी॰ एम॰ त्रिपाठी को संदर्भ के पक्ष में इस न्यायालय की मदद करने के लिए न्याय मित्र नियुक्त किया गया जबकि विद्वान अधिवक्ता, श्री रमेश कुमार सिंह को संदर्भ के विरुद्ध इस न्यायालय की सहायता करने के लिए न्यायमित्र नियुक्त किया गया।

4. विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री बी॰ एम॰ त्रिपाठी भारत के संविधान के अनुच्छेद 22 (1) और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 303 को भी निर्दिष्ट करते हुए निवेदन करते है कि अपने चयन के अधिवक्ता द्वारा संहिता के अधीन संस्थापित कार्यवाही में बचाव किए जाने का संवैधानिक और विधिक अधिकार अभियुक्त को है और इस मूल अधिकार को केवल विधि की सम्यक प्रक्रिया द्वारा ही वापस लिया जा सकता है और इसलिए अभियुक्त को बचाने के लिए अभियुक्त द्वारा चयनित अधिवक्ता को विवर्जित करता कोई आदेश मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होगा और इस प्रकार आदेश शून्य होगा।

5. इस संबंध में विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि उक्त आदेश अन्यथा भी दोषपूर्ण है क्योंकि अभियुक्त द्वारा चयनित अधिवक्ता को विवर्जित करता आदेश पारित करने के पहले विद्वान वचाव पक्ष के अधिवक्ता को कोई कारण बताओ नोटिस अथवा सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था जो नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन में है।

6. आर॰ के॰ आनन्द बनाम रजिस्ट्रार, दिल्ली उच्च न्यायालय [(2009)8 SCC 106] मामले को निष्पक्षत: निर्दिष्ट करते हुए विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि निश्चय ही न्यायालय को न्यायालय में मामलों को संचालित करने का पर्यवेक्षण और नियंत्रण करने की शक्ति है और उस शक्ति के प्रयोग में उसको सम्यक अवसर देने के बाद किसी अधिवक्ता को न्यायालय विवर्जित कर सकता है यदि अधिवक्ता न्यायालय के अवमान का अथवा अशोभनीय अथवा अव्यवसायिक आचरण का दोषी है किन्तु वर्तमान मामला ऐसा नहीं है जहाँ अधिवक्ता का आचरण अव्यवसायिक अथवा अशोभनीय पाया गया था और इसलिए अभियुक्त द्वारा चयनित अधिवक्ता को विवर्जित करता सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश पूर्णत: गैर-कानूनी है जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 के अधीन शक्ति के प्रयोग में इस न्यायालय द्वारा अभिखंडित किए जाने की अपेक्षा करता है क्योंकि एक आदेश जो असंवैधानिक है वैध होगा जब तक इसे सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा अपास्त नहीं किया जाता है।

7. दूसरी ओर, **भूतपूर्व कैप्टेन हरीश उत्तल बनाम भारत संघ [(2003)2 SCC 45],** जिसे **आर॰ के॰ आनन्द बनाम रजिस्ट्रार, दिल्ली उच्च न्यायालय [(2009)8 SCC 106] (ऊपर)** के मामले में अनुमोदित किया गया था, मामले के पैराग्राफ 34 में किए गए संप्रेक्षण को निर्दिष्ट करते हुए विद्वान अधिवक्ता, श्री आर॰ के॰ सिंह निवेदन करते हैं कि अबाध क्रिया कलाप करते रहने के लिए न्यायालय की कार्यवाही को विनियमित करने के लिए न्यायालय के पास पर्याप्त शक्ति है भले ही यह किसी अधिवक्ता के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

8. मामला, जैसा ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, में किए गए संप्रेक्षण से ताकत हासिल करते हुए विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते है कि अभियुक्त को बचाने से वचाव पक्ष के अधिवक्ता को विवर्जित करके विद्वान सत्र न्यायाधीश ने कोई अवैधता नहीं की है।

9. ऊपर किए गए निवेदन के संदर्भ में भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(1) को निर्दिष्ट किया जा सकता है जिसका पठन निम्नलिखित है:-

> *''कोई भी व्यक्ति जो गिरफ्तार किया जाता है, ऐसी गिरफ्तारी के लिए आधारों के बारे में शीघ्रातीशीघ्र सूचित किए बिना अभिरक्षा में निरुद्ध नहीं रखा जाएगा और न ही स्वयं द्वारा चयनित अधिवक्ता से परामर्श और उसके द्वारा बचाए जाने के अधिकार से उसे वंचित किया जाएगा।''*

10. साथ साथ मैं दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 303 को निर्दिष्ट कर सकता हूँ जिसका पठन निम्नलिखित है:-

> ***''व्यक्ति, जिसके विरुद्व कार्यवाही संस्थापित की गयी है, को प्रतिवाद का अधिकार.***-*दांडिक न्यायालय के समक्ष किसी अपराध का अभियुक्त किसी व्यक्ति या जिसके विरुद्व अथवा इस संहिता के अधीन कार्यवाही संस्थापित की गयी है, को स्वयं द्वारा चयनित अधिवक्ता द्वारा बचाव किए जाने का अधिकार है।*

11. दोनों प्रावधानों के सह-पठन पर यह कहा जा सकता है कि दंड प्रक्रिया संहिता चयनित अधिवक्ता द्वारा बचाव का अधिकार अनुज्ञात करती है किन्तु यह गारंटीकृत अधिकार नहीं है। चाहे जो भी हो, संविधान निर्माताओं ने इस अधिकार पर गंभीर विचार किया है और चिरभोग सम्मिलित करके संविधान को परिवर्तित किए बिना इसको परिवर्तित करने की किसी प्राधिकारी की शक्ति के परे रख दिया है। पहला है, जैसे ही गिरफ्तारी की जाती है, गिरफ्तारी को कारण बताए जाने का अधिकार, दूसरा है, 24 घंटे के भीतर दंडाधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किए जाने का अधिकार, और तीसरा है अपने पसंदीदा वकील द्वारा बचाव करवाने का अधिकार। इस प्रकार, संवैधानिक अधिकार जैसा भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(1) में प्रतिष्ठापित किया गया है, के अल्पीकरण में न्यायालय द्वारा पारित कोई आदेश असंवैधानिक, शून्य और गैर-कानूनी होगा। अत: अभियुक्त द्वारा चयनित अधिवक्ता को विवर्जित करता हुआ सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश असंपोषणीय है।

12. श्री सिंह द्वारा किए गए निवेदन के प्रति निष्पक्ष रूप से मैं **भूतपूर्व कैप्टन हरीश उत्तल बनाम भारत संघ (ऊपर)** मामले के पैराग्राफ 34 में न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के अधिवक्ता के अधिकार के संबंध में किए गए संप्रेक्षण को निर्दिष्ट करूंगा जिसका पठन निम्नलिखित है:-

> *"34. एक अंतिम बात जिसे उल्लिखित किया जाना ही चाहिए यह है कि न्यायालयों में उपस्थित होने का अधिकार अभी भी न्यायालयों के नियंत्रण और अधिकारिता में है। अधिवक्ता अधिनियम की धारा 30 प्रभाव में नहीं लायी गयी है और ऐसा सही किया गया है। न्यायालय में आचरण पर नियंत्रण केवल न्यायालयों के परिक्षेत्र में ही रह सकता है। अतः भारत के संविधान का अनुच्छेद 145 सर्वोच्च न्यायालय को और अधिवक्ता अधिनियम की धारा 34 उच्च न्यायालय को शर्त, जिन पर कोई व्यक्ति (अधिवक्ता सहित) सर्वोच्च न्यायालय में एवं/या उच्च न्यायालय और उसके अधीनस्थ न्यायालयों*

में वकालत कर सकता है, के संबंध में नियमों सहित नियमों की विरचना की शक्ति देता है। इस निमित्त अनेक न्यायालयों ने नियमों को विरचित किया है। ऐसा नियम वैध और सबों पर बाध्यकारी होगा। बार ध्यान में रखे कि जब तक आत्म संयम का प्रयोग नहीं किया जाता है, न्यायालयों के समक्ष उपस्थित होने से अवमान एवं/या अव्यावसायिक अथवा अशोभनीय आचरण के दोषी अधिवक्ताओं को विवर्जित करते हुए विनिर्दिष्ट नियमों की विरचना पर न्यायालयों को विचार करना पड़ सकता है। ऐसे नियम, यदि विरचित किया जाता है, का बार काउँसिल की अनुशासनिक अधिकारिता से कुछ लेना-देना नहीं होगा। यह न्यायालयों के गरिमापूर्ण और सुव्यवस्थित, क्रिया कलाप करने से संबंधित होगा। व्यवसाय करने का अधिवक्ता का अधिकार अपने व्यवसायिक कर्तव्यों के निर्वहन में उसके द्वारा पालन किए जाने वाले अनेक कृत्यों को आचछादित करता है। न्यायालयों में उपस्थित होने के अतिरिक्त, वह मांगे जाने पर अपने मुवक्किलों को परामर्श दे सकता है वह ईप्सित किए जाने पर अपना विधिक परामर्श दे सकता है, वह लिखतों, अभिवाकों, शपथपत्रों अथवा किसी अन्य दस्तावेज को प्रारूपित कर सकता है, विधिक चर्चाओं को अंतर्ग्रस्त करते किसी बैठक में भाग ले सकता है, वह विधिक अधिकारी के रूप में किसी कार्यालय अथवा फर्म में काम कर सकता है, वह मध्यस्थ अथवा मध्यस्थों के समक्ष अपने मुवक्किल की ओर से उपस्थित हो सकता है, इत्यादि। अपने व्यवसाय के दौरान अधिवक्ता द्वारा किए गए सारे कृत्यों के साथ ऐसे नियम का कुछ लेना-देना नहीं होगा। वह अपने मुवक्किल की ओर से वकालतनामा भी दाखिल कर सकता है भले ही न्यायालय के भीतर उसकी उपस्थित होने की अनुमति नहीं है। न्यायालय में आचरण न्यायालय से जुड़ा मामला है और इसलिए बार काउँसिल दावा नहीं कर सकता है कि न्यायालय के भीतर जो कुछ होना चाहिए वह उनकी अनुशासनिक शक्तियों के प्रयोग में उनके द्वारा भी विनियमित किया जा सकता था। निसंदेह, व्यवसाय का अधिकार जीनस है जिसका स्पेसी न्यायालयों में उपस्थित होने और मामलों को संचालित करने का अधिकार हो सकता है। किन्तु न्यायालय में उपस्थित होने और मामलों को संचालित करने का अधिकार ऐसा मामला है जिस पर न्यायालय को मुख्य पर्यवेक्षणीय और नियंत्रणीय शक्ति होनी चाहिए और है। अतः न्यायालयों को मात्र इसलिए न्यायालय में आचरण के नियंत्रण अथवा पर्यवेक्षण से निर्निहित नहीं किया जा सकता है और नहीं किया गया है क्योंकि यह अधिवक्ता के अधिकार को अंतर्ग्रस्त कर सकता है। कोई नियम अनुबंधित कर सकता है कि व्यक्ति, जिसने न्यायालय का अवमान किया है अथवा अव्यवसायिक रूप से और अशोभनीय तरीके से आचरण किया है, को न्यायालयों में उपस्थित होते रहने, अभिवाक करते रहने और मामलों को संचालित करते रहने का अधिकार नहीं होगा। न्यायालय की कार्यवाहियों के सुव्यवस्थित संचालन से संबंधित ऐसे विनियमन को बार काउँसिल पलट नहीं सकती है। इसके विपरीत यह देखना उनका कर्तव्य होगा कि ऐसे नियम का कठोरतापूर्वक पालन किया जा रहा है। विधि के न्यायालय की संरचना ऐसे ढाँचे में की गयी है ताकि यह विधि और न्याय की महिमा के प्रति श्रद्वा और भक्ति का भाव उत्पन्न□ कर सके। विधि के अनुसार न्याय प्रदान करने की मशीनरी न्यायालय द्वारा प्रवर्तित की जाती है। न्यायालय के भीतर हो रही कार्यवाही को सदैव गरिमामय और सुव्यवस्थित तरीके से संचालित किए जाने की अपेक्षा की जाती है। न्यायालय में उपस्थित किसी अधिवक्ता, जो न्यायालय के अवमान का अथवा अव्यवसायिक अथवा अशोभनीय आचरण का दोषी है, की दृश्यता न्यायालयों के संस्थान की प्रभावशीलता में लोक विश्वास को क्षीण करने के अलावा न्यायालय की गरिमा को धीरे-धीरे समाप्त कर देगी और इसकी महिमा को भी नष्ट कर देगी। ऐसे नियमों की विरचना की शक्ति को विधि का व्यवसाय करने के अधिकार के साथ भ्रमित नहीं करना चाहिए। जहाँ बाद वाले पर बार काउँसिल नियंत्रण रख सकता है, न्यायालय का नियंत्रण पहले वाले पर है। यह सुभिन्नता एक ओर अधिवक्ता अधिनियम की धारा 49 और दूसरी ओर भारत के संविधान के अनुच्छेद 145 और अधिवक्ता अधिनियम की धारा 34 (1) में प्रयुक्त भाषा की भिन्नता द्वारा स्पष्टतः सामने लायी गयी है। धारा 49 शर्तों, जिसके अधीन अधिवक्ता को व्यवसाय अर्थात ऊपर बताए गए सारे अन्य कृत्यों को करने का अधिकार होगा, को अधिकथित करते हुए नियमों की विरचना के लिए बार काउँसिल को सशक्त मात्र करती है। किन्तु भारत के संविधान

का अनुच्छेद 145 अन्य बातों के साथ इस न्यायालय के समक्ष अभ्यास करने वाले व्यक्ति के प्रति नियमों सहित इस व्यवसाय और न्यायालय की प्रक्रिया को विनियमित करने हेतु नियमों की विरचना के लिए सर्वोच्च न्यायालय को सशक्त करता है। इसी प्रकार, अधिवक्ता अधिनियम की धारा 34 अन्य बातों के साथ शर्तों जिन पर न्यायालयों में व्यवसाय करने हेतु अधिवक्ता को अनुज्ञा दी जाएगी, के अधिकथन और नियमों की विरचना के लिए उच्च न्यायालय को सशक्त करती है। भारत के संविधान का अनुच्छेद 145 और अधिवक्ता अधिनियम की धारा 34 स्पष्टतः दर्शाती है कि न्यायालय में उपस्थित होने का अधिवक्ता को संपूर्ण अधिकार नहीं है। अधिवक्ता ऐसी शर्तों, जिन्हें न्यायालय द्वारा अधिकथित किया जाता है, के अधीन ही न्यायालय में उपस्थित होता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि धारा 30 प्रभाव में नहीं लायी गयी है और यह इस बात को भी दर्शाता है कि न्यायालय में उपस्थित होने का अधिकार संपूर्ण नहीं है। यदि धारा 30 प्रभाव में लायी भी जाती तो भी न्यायालय में कार्यवाहियों का नियंत्रण सदैव न्यायालय के साथ बना रहेगा। अतः तब भी न्यायालय में उपस्थित होने का अधिकार न्यायालयों द्वारा अधिकथित शर्तों के अनुपालन के अधीन होगा जैसे कि न्यायालयों के बाहर व्यवसाय भारत के बार काउँसिल द्वारा अधिकथित शर्तों के अधीन होगा। इस प्रकार, एक ओर अधिवक्ता अधिनियम के प्रावधानों और दूसरी ओर धारा 34 और भारत के संविधान के अनुच्छेद 145 के बीच कोई विराध नहीं है।''

13. इस प्रकार, यह अधिकथित किया गया है कि कार्यवाही के क्रम में न्यायालय को निश्चय ही नियंत्रणीय शक्ति है और यदि अधिवक्ताओं में से कोई भी अवमान और/अथवा अव्यवसायिक अथवा अशोभनीय आचरण का दोषी पाया जाता है, उसे अभियुक्त की ओर से उपस्थित होने से विवर्जित किया जा सकता है। किन्तु जैसा **आर० के आनन्द बनाम रजिस्ट्रार, दिल्ली उच्च न्यायालय (ऊपर)** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त किया गया है, नैसर्गिक न्याय का नियम मांग करता है कि किसी न्यायालय में उपस्थित होने से किसी अधिवक्ता को विवर्जित करते हुए किसी आदेश को पारित करने के पहले उसे मामले में सुना जाना ही होगा।

14. यहाँ वर्तमान मामले में, उसकी अनुपस्थिति के बारे में अभियुक्त की ओर से उपस्थित होने वाले अधिवक्ता से कोई स्पष्टीकरण मांगे बिना विद्वान सत्र न्यायाधीश ने उसे अभियुक्त का बचाव करने से विवर्जित कर दिया था और उस दशा में, अधिवक्ता का आचरण अव्यवसायिक नहीं कहा जा सकता है यदि नियत तिथि पर वह मामले में उपस्थित नहीं हुआ था क्योंकि नियम तिथि पर उसकी अनुपस्थिति के अनेक कारण हो सकते हैं और इसलिए आदेश, जिसके अधीन अभियुक्त के अधिवक्ता को अभियुक्त के लिए उपस्थित होने से विवर्जित कर दिया गया था, न केवल गैर कानूनी है बल्कि असंवैधानिक भी है, जो विधि में असंपोषणीय है और इसलिए स्वप्रेरित पुनरीक्षण शक्ति के प्रयोग द्वारा मैं सत्र विचारण सं० 76 वर्ष 2009 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, जामतारा द्वारा पारित दिनांक 14.12.2009 के आदेश को अपास्त करता हूँ।

15. तद्नुसार, विद्वान पंचम अपर सत्र न्यायाधीश विधि के अनुरूप मामले में अब अग्रसर होंगे। ऐसी स्थिति में, किए गए निर्देश का किसी विनिर्दिष्ट निबंधनों में उत्तर देना आवश्यक नहीं है।

16. इस आदेश को पारित करने के पहले, मैं दोनों अधिवक्ताओं की सराहना करूँगा जिन्होंने अपनी सर्वश्रेष्ठ क्षमतानुसार, न्यायोचित निर्णय पर आने में न्यायालय की सहायता की।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

अब्दुल जब्बार एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W. P. (S) No. 2417 of 2005. Decided on 5th May, 2010.

सेवा विधि–वेतनमान–ए॰ सी॰ पी॰ लाभों के लिए दावा–ए॰ सी॰ पी॰ लाभों को प्रदान के बाद वेतनमान के नियतिकरण के अनुसरण में और वेतनमान पुनरीक्षण के अनुसरण में समान वेतनमान प्रदान किए जाने के मामले में उसके पारिणामिक लाभों को देने से और याचीगण को सहायकों के सामान्य ग्रेड में मानने से प्रत्यर्थीगण का इंकार–एक ही विज्ञापन के अनुसरण में याचीगण और निजी प्रत्यर्थीगण को सहायकों के रूप में नियुक्त किया गया था–प्रत्यर्थी-राज्य द्वारा कोई कारण नहीं दिया गया है कि किस आधार पर राज्य वित्त विभाग ने उनलोगों जो सामाजिक सुरक्षा विभाग में काम कर रहे थे और उनलोगों जो विभिन्न जिला समाहरणालय में काम रहे थे के बीच भेद किया गया–प्रथम ए॰ सी॰ पी॰ प्रदान किए जाने पर वेतनमान के नियतिकरण के अनुसरण में समान वेतनमान का याचीगण का दावा युक्तियुक्त, वास्तविक और वैध है–आवेदन अनुज्ञात। (पैरा 4 से 6)

अधिवक्तागण.–Ms. Sujata Bhattacharjee, For the Petitioners; Mr. A. Allam, Sr. S.C. II and Ms. Nehala Sharmin, J.C. to Sr. S.C. II, For the State.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. इस रिट आवेदन में याचीगण की शिकायत ए॰ सी॰ पी॰ लाभों के प्रदान के पश्चात वेतनमान के नियतिकरण के अनुसरण में और वेतनमान के पुनरीक्षण के अनुसरण में समान वेतनमान प्रदान किए जाने के मामले में उसके परिणामिक लाभों को देने से और याचीगण को सहायकों के सामान्य ग्रेड में मानने से प्रत्यर्थी के इंकार के विरुद्ध है।

3. यह प्रतीत होता है कि धनबाद जिला में श्रम, नियोजन एवं प्रशिक्षण विभाग द्वारा जारी दिनांक 23.4.1981 के एक ही विज्ञापन के प्रत्युत्तर में सहायकों के 30 रिक्त पदों को भरने के लिए सामान्य श्रेणी में पात्र उम्मीदवारों से आवेदन आमंत्रित किया गया था।

जिसके प्रत्युत्तर में, याचीगण ने आवेदन दिया था।

चयन प्रक्रिया पूरी कर लिए जाने के बाद, एक सामान्य चयन सूची तैयार की गयी थी जिसमें याचीगण और निजी प्रत्यर्थीगण का नाम चयनित उम्मीदवार होने के नाते प्रकाशित किया गया था।

विज्ञापन, जिसके विरुद्ध आवेदन आमंत्रित किए गए थे, ने घोषणा की थी कि विज्ञापन में अनुबंधित वेतनमान उम्मीदवारों पर लागू किए जाने योग्य होगा। उनके चयन पर दिनांक 19 अगस्त, 1981 का एक ही नियुक्ति पत्र जारी किया गया था और तत्पश्चात् चयनित उम्मीदवारों को अनेक विभागों में पदस्थापित किया गया था, कुछ को जिला समाहरणालय में और कुछ को जैसे याचीगण को कल्याण विभाग में और कुछ को जिलों के सामाजिक सुरक्षा विभागों में और कुछ को उसी जिला के अन्य विभागों में पदस्थापित किया गया था।

यह प्रतीत होता है कि नियुक्ति किए जाने के बाद नियुक्त उम्मीदवारों के बीच यह देखते हुए भिन्नता किया जाना ईप्सित किया गया था कि उनमें से कुछ के लिए भिन्न काडरों को बनाया गया था और विज्ञापन में अनुबंधित वेतनमान उनको प्रस्तावित किया गया था जबकि अन्य को निम्न वेतनमान प्रस्तुत किया गया था।

आगे यह प्रतीत होता है कि समरुप स्थितियों के अधीन, चयनित उम्मीदवारों में से कुछ, जिन्हें गिरिडीह समाहरणालय में चयनित और नियुक्त किया गया था, ने सी० डब्ल्यू० जे० सी० सं० 169 वर्ष 1991 (R) के तहत रिट आवेदन दाखिल किया था। यह घोषणा करते हुए कि इस तथ्य की दृष्टि में कि एक ही चयन प्रक्रिया अपनायी गयी थी और एक ही पैनल के अधीन रिट याचीगण और अन्य नियुक्त उम्मीदवारों को नियुक्त किया गया था और चूँकि विज्ञापन ने घोषणा की थी कि उनके चयन पर वही वेतनमान, जिसके विरुद्ध उम्मीदवारों ने आवेदन दिया था, उन पर लागू किए जाने योग्य होगा, प्रत्यर्थीगण-प्राधिकारीगण उम्मीदवारों में से कुछ को निम्नतर वेतनमान देकर और अन्य को उच्चतर वेतनमान देकर नियुक्तों के बीच भेदभाव नहीं कर सकते हैं, उक्त रिट आवेदन निपटाया गया था। पूर्वोक्त रिट आवेदन में पारित आदेश के अनुसरण में, संबंधित जिला में राज्य सरकार के संबंधित प्राधिकारीगण ने समस्त नियुक्त उम्मीदवारों का वेतनमान नियमित कर दिया था।

आगे यह प्रतीत होता है कि जब अंततः विवाद्यकों का समाधान कर लिया गया था, उम्मीदवारों, जिन्होंने इसके लिए पात्रता अर्जित कर ली थी, को प्रथम ए० सी० पी० के लाभों को दिए जाने के समय इस अभिवाक् पर कि सामाजिक सुरक्षा विभाग में काम कर रहे लेखा क्लर्कों के लिए वित्त विभाग ने निम्नतर वेतनमान नियत किया था और जिला समाहरणालय में काम करते सहायकों के लिए उच्चतर वेतनमान नियत किया था, एक नया विवाद उद्भूत हुआ। ए० सी० पी० लाभों के प्रदान किए जाने पर पुनरीक्षित वेतनमान सामाजिक सुरक्षा विभाग में काम करते याचीगण के लिए निम्नतर वेतनमान पर नियत किया गया है जबकि जिला समाहरणालयों में काम करने वालों के लिए उच्चतर वेतनमान नियत किया है।

प्रत्यर्थीगण के प्रति शपथपत्र के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि नियुक्तों का भिन्न वेतनमान नियत करने वाले वित्त विभाग के संकल्प के संबंध में पूर्वोक्त दृष्टिकोण अपनाते हुए एक नया आधार बनाया गया है कि वर्ष 2002 में ही राज्य सरकार के वित्त विभाग द्वारा जारी ऐसे संकल्प को व्यथित याचीगण में से किसी के द्वारा चुनौती नहीं दी गयी थी।

4. स्वीकृत तथ्यों के मुताबिक, इसमें के याचीगण और निजी प्रत्यर्थीगण एक ही विज्ञापन के अनुसरण में नियुक्त किए गए थे जिसमें केवल एक ग्रेड से बने की घोषणा की गयी थी और सहायकों और लेखा क्लर्कों के बीच भिन्नता नहीं की गयी थी। जैसा सी० डब्ल्यू० जे० सी० सं० 169 वर्ष 1991 (R) के तहत इस न्यायालय द्वारा घोषणा की गयी है, उन नियुक्तों, जिन्हें उनके चयन के अनुसरण में सामाजिक सुरक्षा विभाग में नियुक्त किया गया था और जो जिला समाहरणालय में कार्यरत हैं, के बीच प्रत्यर्थीगण-प्राधिकारीगण कोई मनमाना भेद संभवतः नहीं कर सकते हैं। स्वीकृत रूप से, वर्तमान याचीगण और निजी प्रत्यर्थीगण सहित समस्त उम्मीदवार मूलतः सहायक के रूप में नियुक्त किए गए थे। प्रत्यर्थी-राज्य द्वारा कोई कारण नहीं दिया गया है कि किस आधार पर राज्य वित्त विभाग ने जो सामाजिक सुरक्षा के विभाग में कार्यरत हैं और वे जो विभिन्न जिला समाहरणालयों में कार्यरत है, के बीच भेद किया है।

5. उक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों से, मैं संतुष्ट हूँ कि प्रथम ए० सी० पी० प्रदान किए जाने पर वेतनमान के नियतिकरण के अनुसरण में समान वेतनमान का याचीगण का दावा युक्तियुक्त, वास्तविक और वैध

है। याचीगण के लिए निम्नतर वेतनमान का नियतिकरण प्रकटत: मनमाना और भेदभाव पूर्ण हैं और इसे विधि में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

6. उक्त चर्चाओं की दृष्टि में, मैं इस रिट आवेदन में गुणागुण पाता हूँ। तद्नुसार, यह रिट आवेदन अनुज्ञात किया जाता है। प्रत्यर्थीगण-प्राधिकारीगण को निर्देश दिया जाता है कि वे याचीगण को निजी प्रत्यर्थीगण के समान आधार वाले के तौर पर मानें एवं याचीगण को निजी प्रत्यर्थीगण के समान वेतनमान का लाभ दें एवं उक्त निर्देशों के आलोक में सम्बन्धित प्राधिकारीगण द्वारा इस आदेश की एक प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से एक माह के भीतर यथोचित तत्सम आदेश पारित किया जाना चाहिए ताकि वर्तमान याचीगण समान वेतनमानों का लाभ प्राप्त करने में सक्षम हो सके।

7. इस आदेश की एक प्रति प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को दी जाए।

माननीय रमेश कुमार मेराठिया, न्यायमूर्ति

डॉ॰ बिमल कुमार सहाय

बनाम

निदेशक, राजेन्द्र इंस्टिच्यूट ऑफ मेडिकल साइन्सेज, बरियातू राँची एवं एक अन्य

W.P. (S) No. 3680 of 2004. Decided on 17th May, 2010.

(क) सेवा विधि–वेतन–भूतलक्षी प्रभाव से प्रोन्नति के धनीय लाभों के लिए दावा–याची युक्तियुक्त समय के भीतर विधि के न्यायालय के समक्ष नहीं गया–रिट याचिका में निर्णय के बाद उसकी सेवानिवृत्ति के बाद भूतलक्षी प्रभाव से याची को प्रोन्नति दी गयी थी–याची सारे पारिणामिक लाभों के साथ इस रिट याचिका के दाखिल किए जाने की तिथि से धनीय लाभों का हकदार है। (पैरा 4 से 6)

(ख) न्यायिक अनुशासन–बाध्यकारी पूर्व निर्णय–मामले में प्राप्त ताथ्यिक स्थितियों के संदर्भ में निर्णय पढ़ा जाना होगा। (पैरा 4)

निर्णयज विधि.–1990(2) PLJR 248; 1999(1) PLJR 272; 2002(2) BLJ 790—Referred. (2007) 6 SCC 524—Followed.

अधिवक्तागण.–Mr. Rajesh Lala, For the Petitioner; Mr. Rajesh Kumar, For the Respondent No. 1; Mr. P.A.S. Pati, J.C. to A.G., For the Respondent No. 2.

आदेश

पक्षों को सुना गया।

2. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री राजेश लाला ने निवेदन किया कि याची का एकमात्र दावा जो इस रिट याचिका में अवशेष यह है कि उसे एसोसिएट प्रोफेसर और प्रोफेसर के पद के बीच दिनांक 1.5.1993 से वेतन का अंतर/बकाया दिया जाना चाहिए। उन्होंने **डॉ॰ पारस नाथ प्रसाद बनाम बिहार राज्य एवं अन्य** [1990(2) PLJR 248]; **रंजीत सहाय जमुआर एवं एक अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य** [1999(1) PLJR 272] एवं **सीता राम प्रसाद श्रीवास्तव बनाम बिहार राज्य एवं अन्य [2002(2) BLJ 790]** के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया।

3. दूसरी ओर, राज्य की ओर से उपस्थित श्री पी॰ ए॰ एस॰ पति ने निवेदन किया कि स्थापित नियम के तौर पर समस्त मामलों में भूतलक्षी प्रभाव से प्रोन्नति के साथ धनीय लाभों को नहीं दिया जा सकता

है बल्कि अनेक कारकों पर विचार करना होगा यदि ऐसा दावा उठाया जाता है। उन्होंने **केरल राज्य एवं अन्य बनाम ई॰ के॰ भास्करण पिल्लई [(2007)6 Supreme Court Cases 524]** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है।

4. श्री लाला द्वारा विश्वास किया गया निर्णय भिन्न स्थितियों में दिया गया था। **डॉ॰ पारस नाथ प्रसाद** एवं **रंजीत सहाय जमुआर (ऊपर)** के मामले में, दीर्घकालिक मुकदमें के बाद वरीयता विनिश्चित की गयी थी और उस पृष्ठभूमि में, यह कहा गया था कि उसमें प्रत्यर्थीगण बिहार सेवा संहिता के नियम 68 और दिनांक 4.4.1985 के मेमो सं॰ 2074 में अंतर्विष्ट वित्त विभाग के परिपत्र पर विश्वास नहीं कर सकते थे। **सीता राम प्रसाद श्रीवास्तव (ऊपर)** में निर्णय मुख्यतः **डॉ॰ पारस नाथ प्रसाद (ऊपर)** पर विश्वास करते हुए दिया गया था। यह तय स्थिति है कि मामलों में प्राप्त ताथ्यिक स्थितियों के संदर्भ में निर्णय का पठन करना होगा। खासकर वर्तमान में **ई॰ के॰ भास्करण पिल्लई (ऊपर)** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित संप्रेक्षित किया:–

> *''हमनें दोनों पक्षों की ओर से उद्धृत निर्णयों पर विचार किया है। जहाँ तक भूतलक्षी प्रभाव से प्रोन्नति के साथ धनीय लाभों के संबंध में स्थिति का संबंध है, वह स्वयं मामला पर निर्भर करता है। अनेक पहलू है जिन पर विचार करना होगा। कभी-कभी, विभागीय जाँच मामला में अथवा दांडिक मामला में, मामले में अंतर्ग्रस्त अपचारिता की प्रकृति को देखते हुए संपूर्ण बकाया मजदूरी या बकाया मजदूरियों का 50% मंजूर करना प्राधिकारीगण पर निर्भर करता है अथवा दांडिक मामले में जहाँ पदधारी को संदेह का लाभ देते हुए दोषमुक्त किया गया है अथवा पूर्ण दोषमुक्ति दी गयी है। कभी-कभी, ऐसे मामले में जहाँ व्यक्ति को अधिक्रांत किया गया है और उसने इसे न्यायालय अथवा अधिकरण के समक्ष इसे चुनौती दी है और वह उसमें सफल होता है और जिस तिथि से उससे कनीय व्यक्तियों को प्रोन्नत किया गया था, उस तिथि से उसके मामले पर पुनर्विचार करने का निर्देश दिया गया है, ऐसे मामले में न्यायालय कभी भूतलक्षी प्रभाव से पूर्ण लाभों को प्रदान कर सकता है और कभी नहीं कर सकता है। विशेषतः जब प्रशासन ने उसके देयों से गलत रूप से इंकार किया है, तब उस मामले में, विधि में किसी परिवर्तन अथवा किसी अन्य एकदम से बीच में आ गए कारकों के अधीन धनीय लाभ सहित पूरे लाभों को दिया जाना चाहिए। किन्तु किसी कठोर नियम को स्थापित करना बहुत मुश्किल है। ''काम नहीं वेतन नहीं'' का सिद्वान्त स्थापित नियम के तौर पर स्वीकार वहीं किया जा सकता है। अनेक अपवाद है जहाँ न्यायालय ने धनीय लाभों को भी प्रदान किया है।''*

5. इस मामले में आविभूर्त कारक यह है कि याची ने पहले-पहल दिनांक 5.6.2004 को अभ्यावेदन (परिशिष्ट-8) दाखिल करके दिनांक 1.5.1993 के प्रभाव से प्रोन्नति की शिकायत उठायी थी और उस आधार पर दिनांक 22.7.2004 अर्थात् 11 वर्ष बाद इस रिट याचिका को दाखिल किया। यह प्रतीत होता है कि याची और कई अन्य की प्रोन्नति का मामला प्रत्यर्थीगण के समक्ष लंबित पड़ा रहा। युक्तियुक्त समय के भीतर याची ने विधि के न्यायालय की शरण नहीं ली अन्यथा स्थिति भिन्न हो सकती थी। जब उसने दावा करते हुए कि वह अपनी आयु के 60 वर्ष तक सेवा में बने रहने का हकदार है, रिट याचिका-डब्ल्यू॰ पी॰ एस॰ सं॰ 5736 वर्ष 2003 दाखिल किया, तब भी उसने ऐसी शिकायत नहीं उठाई। इस रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान वह दिनांक 30.11.2005 को सेवानिवृत्त हो गया। किंतु कई अन्य के साथ याची की प्रोन्नति के मामले पर विचार किया गया था। उस प्रक्रिया में, दिनांक 14.10.2006 के मेमो सं॰ 310 (2) राँची के अधीन प्रोफेसर के पद पर दिनांक 1.5.1993 के प्रभाव से याची को प्रोन्नति दी गयी है और उस संबंध में औपचारिकताएँ भी पूरी कर ली गयी थी।

6. इ॰ के॰ भाष्करण पिल्लई (ऊपर) के उक्त निर्णय के अनुसरण में, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि सभी पारिणामिक लाभों सहित इस रिट याचिका को दाखिल करने की तिथि अर्थात् दिनांक 22.7.2004 से धनीय लाभों का याची हकदार है। आज से आठ सप्ताह के भीतर अथवा शीघ्रताशीघ्र उसकी गणना के साथ सारे लाभों को देने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को दिया जाता है।

इन संप्रेक्षणों और निर्देशों के साथ यह रिट याचिका निपटायी जाती है। किन्तु व्यय नहीं।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

बिहारी पुरु

बनाम

स्वामी शैलेन्द्र नन्द पुरी एवं अन्य

W.P. (C) No. 7218 of 2005. Decided on 11th May, 2010.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश VIII, नियम 1—लिखित कथन स्वीकार करने के लिए आवेदन की अस्वीकृति–यद्यपि सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश VIII, नियम 1 के अधीन विहित समय सीमा आज्ञापक प्रकृति की नहीं है और युक्तियुक्त रूप से 90 दिनों तक अवधि बढ़ाने के लिए विचारण न्यायालय को स्वविवेक प्रदान करती है किन्तु ऐसा स्वविवेक तभी अनुज्ञात किया जा सकता है जब न्यायालय संतुष्ट है कि समय पर अपना लिखित कथन दाखिल करने से युक्तियुक्त और न्यायोचित कारण द्वारा प्रतिवादी रोका गया था–विलम्ब के लिए कोई युक्तियुक्त स्पष्टीकरण देने में याची सक्षम नहीं हुआ है–आक्षेपित आदेश किसी अवैधता से ग्रस्त नहीं है–विचारण को शीघ्र पूरा करने का निर्देश विचारण न्यायालय को दिया गया।

(पैरा 5 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. A. K. Amar, For the Petitioner; Mr. Anand Kr. Pandey, For the Respondents.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान रिट याचिका याची/प्रतिवादी द्वारा अभिधान वाद सं॰ 102 वर्ष 2001 में सब-जज-I, पलामू, डालटेनगंज द्वारा पारित दिनांक 29.9.2005 के आदेश को चुनौती देने के लिए दाखिल की गयी है, जिसके द्वारा उसके लिखित कथनों को स्वीकार करने के लिए याची का दिनांक 16.5.2005 का आवेदन अवर न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था।

3. परस्पर विरोधी निवेदनों से, उभरने वाले तथ्य निम्नलिखित है:–

वाद संपत्ति में उसका अधिकार, अभिधान और हित की घोषणा के लिए वर्ष 2001 में किसी समय अवर न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी/वादी ने पूर्वोक्त अभिधान वाद दाखिल किया था। समन पाने पर प्रतिवादी दिनांक 17.1.2002 को वाद में उपस्थित हुआ। तत्पश्चात कुछ कारणों से सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VIII, नियम 1 के अधीन अनुबंधित अवधि के भीतर और अपनी उपस्थिति के बाद 90 दिनों की अवधि के परे भी अपना लिखित कथन दाखिल करने का प्रयास प्रतिवादी ने नहीं किया था। अंततः दो वर्षों के विलम्ब के बाद अर्थात दिनांक 18.5.2004 को उसने अपना लिखित कथन दाखिल किया।

याची द्वारा लिया गया अभिवाक् यह था कि उसकी उपस्थिति के बाद सी० पी० सी० के आदेश XXXIX, नियम 1 एवं 2 के अधीन व्यादेश के लिए प्रतिवादी के विरुद्ध वादी द्वारा याचिका दाखिल की गयी थी और विचारण न्यायालय द्वारा ऐसी याचिका अनुज्ञात किए जाने पर, प्रतिवादी व्यादेश के आदेश के विरुद्ध अपीलीय न्यायालय के पास गया था और मामला लंबे समय तक अपीलीय न्यायालय के समक्ष लंबित रहा और अपीलीय न्यायालय के समक्ष मामला लंबित रहने और अवर न्यायालय के अभिलेखों को अपीलीय न्यायालय को अंतरित कर दिए जाने के चलते याची/प्रतिवादी समय पर अपना लिखित कथन दाखिल नहीं कर सका था।

4. पहले की तिथि पर, जब यह विवाद्यक उठाया गया था, इस न्यायालय ने याची को विचारण न्यायालय के अभिलेखों के समस्त आर्डरशीट की प्रमाणित प्रतियाँ प्राप्त करने और इसे प्रस्तुत करने का निर्देश दिया था ताकि उस तिथि का आकलन किया जा सके कि अपीलीय न्यायालय ने कब विचारण न्यायालय के अभिलेखों को मंगाया था और कब इसे अपीलीय न्यायालय को प्रेषित किया गया था और कब इसे अपीलीय न्यायालय से विचारण न्यायालय के कार्यालय में वापस प्राप्त किया गया था। याची ने आर्डरशीट की प्रमाणित प्रति दाखिल नहीं किया है। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण यह है कि यद्यपि उसने विचारण न्यायालय के अभिलेखों के आर्डरशीट की प्रमाणित प्रति प्राप्त कर लिया है किन्तु 'पैरवीकार' की अनुपस्थिति में इसे शपथ पत्र के साथ दाखिल नहीं किया जा सका था। किन्तु विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के परिशीलन हेतु आर्डरशीट की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत की है। जैसा अवर न्यायालय के अभिलेखों की प्रति से प्रतीत होता है वादी द्वारा दाखिल व्यादेश आवेदन विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 8.3.2002 को निपटा दिया गया था और अपना लिखित कथन दाखिल करने का निदेश प्रतिवादी/याची को साथ-साथ दिया गया था। यह भी प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय के अभिलेखों, जिन्हें अपीलीय न्यायालय को प्रेषित किया गया था को दिनांक 16.12.2003 को विचारण न्यायालय के कार्यालय में वापस प्राप्त किया गया था। यह भी प्रतीत होता है कि यद्यपि दिनांक 8.3.2002 को व्यादेश आवेदन निपटाया गया था, वाद के अभिलेखों को विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 2.7.2002 तक रखा गया था जिसके बाद इसे अपीलीय न्यायालय को प्रेषित किया गया था। याची वाद में दिनांक 17.1.2002 को उपस्थित हुआ था और इसलिए उसमें अनुबंधित अवधि के भीतर सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश VIII, नियम 1 के अनुसार अपना लिखित कथन दाखिल करना उससे अपेक्षित था, किन्तु उसने ऐसा करना नहीं चुना। याची द्वारा इस अभिवाक पर यह छूट ली गयी थी कि आदेश VIII, नियम 1 के अधीन संशोधन जुलाई, 2002 के पहले प्रभावकारी नहीं था। यह प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय के अभिलेखों को अपीलीय न्यायालय से विचारण न्यायालय के कार्यालय में दिनांक 16.12.2003 को वापस प्राप्त किया गया था। फिर भी इसके बाद याची ने तत्परतापूर्वक अपना लिखित कथन दाखिल नहीं किया। आगे प्रतीत होता है कि यद्यपि विलंब की माफी के लिए याची ने याचिका दाखिल की थी किन्तु प्रस्तुत स्पष्टीकरणों से विचारण न्यायालय संतुष्ट नहीं था। याची यह स्पष्ट करने में सक्षम नहीं रहा है कि क्यों दिनांक 16.12.2003 को विचारण न्यायालय के अभिलेखों को विचारण न्यायालय के कार्यालय में वापस प्राप्त किए जाने के बाद भी उसने इसके बाद तत्परतापूर्वक अपना लिखित कथन दाखिल करना नहीं चुना और दिनांक 18.5.2004 तक अपनी जिम्मेदारियों से बचता रहा।

5. यह अब सुनिश्चित है कि सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश VIII, नियम 1 के अधीन विहित समय सीमा यद्यपि आज्ञापक प्रकृति की नहीं है और 90 दिनों तक युक्तियुक्त रूप से अवधि बढ़ाने के लिए विचारण न्यायालय को स्वविवेक अनुज्ञात करती है किन्तु ऐसा स्वविवेक केवल तभी अनुज्ञात किया जा सकता है यदि न्यायालय संतुष्ट है कि समय पर अपना लिखित कथन दाखिल करने से युक्तियुक्त और न्यायोचित आधारों के कारण प्रतिवादी को रोका गया था।

6. वर्तमान मामले में, याची विलम्ब का युक्तियुक्त स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में सक्षम नहीं रहा है।

7. अवर न्यायालय के आक्षेपित आदेश का परिशीलन करने पर, मैं पाता हूँ कि उसका लिखित कथन स्वीकार करने के लिए याची के मामला को अस्वीकार करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा पर्याप्त कारण दिया गया है। मेरे मत में, आक्षेपित आदेश किसी औचित्यता अथवा अवैधता से पीड़ित नहीं है। इस प्रकार, इस रिट याचिका में कोई गुणागुण नहीं होने के चलते इसे खारिज किया जाता है। किन्तु तथ्यों और परिस्थितियों के अधीन व्यय का आदेश नहीं होगा।

8. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा सूचित किया गया है कि केवल इस रिट याचिका के लंबित रहने के कारण, विचारण न्यायालय के समक्ष अभिधान वाद में कार्यवाही में प्रगति नहीं हुई है यद्यपि इस न्यायालय द्वारा कार्यवाही के स्थगन पर कोई आदेश पारित नहीं किया गया है। अत: इस आदेश की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर जितना शीघ्र संभव हो विचारण को पूरा करने और निष्कर्षित करने का निर्देश विचारण न्यायालय को दिया जाता है।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

बुधनी कुई

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) No. 3192 of 2009. Decided on 4th May, 2010.

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872—धारा 45—हस्तलेखन विशेषज्ञ का मत प्राप्त करने के लिए आवेदन की अस्वीकृति–भूमि के रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख की प्रामाणिकता को चुनौती–विवादित विक्रय विलेखों में अंगूठे का निशान मूल वादी के अंगूठा का निशान है या नहीं और यह कि अन्य अविवादित दस्तावेजों से इसकी तुलना की जा सकती है, धारा 45 के मुताबिक यह कार्य हस्तलेखन विशेषज्ञ के माध्यम से निपटाया जा सकता है–भले ही मूलवादी की मृत्यु हो चुकी हो, विवादित दस्तावेज पर मूल वादी के अंगूठे की निशान का मिलान अविवादित दस्तावेजों के साथ किया जा सकता है–आक्षेपित आदेश अपास्त–याचिका अनुज्ञात।

(पैरा 4 एवं 5)

अधिवक्तागण.–Mr. M.K. Dey, For the Petitioner; Mr. J.C. to G.P.I., For the Respondents.

आदेश

वर्तमान याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन कोल्हन अभिधान वाद सं॰ 3/2002-2003 में दिनांक 12 नवम्बर, 2008 को अपर उपकलक्टर, पश्चिम सिंहभूम द्वारा पारित आदेशों (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-2) और कोलहन अभिधान अपील सं॰ 1 वर्ष 2008 में दिनांक 19 मार्च, 2009 को कमिश्नर, सिंहभूम, कोलहन डिविजन, चाईबासा द्वारा पारित आदेश (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-3) के विरुद्ध दाखिल की गयी है।

2. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि मूल वादी वर्तमान याची का पति था जिसकी मृत्यु कोलहन अभिधान वाद सं॰ 3/2002-2003 के क्रम के दौरान हो गयी थी और वर्तमान याची विधवा होने के नाते वादी के रूप में प्रतिस्थापित की गयी थी। उक्त कोलहन अभिधान वाद सं॰ 3/2002-2003 में, तीन रजिस्टर्ड विक्रय-विलेखों को अकृत और शून्य घोषित किया जाना था क्योंकि

ये मनगढ़ंत दस्तावेज थे जिन पर वर्तमान याची के पति के बांए अंगूठे का निशान था और इसलिए, चूँकि मूल वादी की मृत्यु पहले ही हो गयी है, यह अभिनिश्चित करने के लिए हस्त लेखन विशेषज्ञ का मत आवश्यक होगा कि क्या विक्रय विलेखों, जिन्हें, शून्य एवं अकृत घोषित किया जाना था, पर मूलवादी के बांए अंगूठे का निशान था या नहीं। इन विवादित दस्तावेजों की तुलना वाद पत्र और उक्त कोलहन अभिधान वाद में दी गयी हाजिरी सरीखे अविवादित दस्तावेजों के साथ की सकती है। इस प्रकार विवादित बांए अंगूठे के निशान का मिलान अथवा तुलना अविवादित दस्तावेजों जिन पर मूल वादी के बांए अंगूठे का निशान था, से सदैव किया जा सकता है और इसलिए अपर उप-कलक्टर, चाईबासा के समक्ष आवेदन दिया गया था जिसे दिनांक 29 नवम्बर, 2006 के आदेश के तहत अनुज्ञात किया गया था। दिनांक 29 नवम्बर, 2006 के आदेश के मुताबिक पूर्वोक्त आधार पर विशेषज्ञ का साक्ष्य लिया जाना अपेक्षित था किन्तु अचानक, पक्षों में से किसी के भी द्वारा कोई आवेदन न होने पर भी अपर उप-कलक्टर, चाईबासा ने स्वप्रेरणा पर अपना पूर्व आदेश वापस कर लिया और दिनांक 12 नवम्बर, 2007 को एक नया आदेश पारित किया और हस्तलेखन विशेषज्ञ का मत प्राप्त करने हेतु दिया गया आवेदन खारिज कर दिया। इस आदेश के विरुद्ध कमिश्नर, सिंहभूम, कोलहन डिविजन, चाईबासा के समक्ष अपील सं॰ 1 वर्ष 2008 दाखिल की गयी थी जिन्होंने भी मामले के पूर्वोक्त तथ्यों का अधिमूल्यन नहीं किया और दिनांक 19 मार्च, 2009 के आदेश के तहत अपील खारिज कर दी। यदि मूल वादी की मृत्यु हो भी गयी है, विवादित दस्तावेजो अर्थात रजिस्टर्ड विक्रय विलेखों पर अंगूठे के निशान की तुलना अविवादित दस्तावेजों अर्थात वादपत्र और कोलहन अभिधान वाद सं॰ 3/2002-2003 में उपस्थित रजिस्टर के साथ की जा सकती है। इन दोनों दस्तावेजों पर मूलवादी के बांए अंगूठे का निशान था। मामले के इस पहलू पर दोनो अवर प्राधिकारीगण द्वारा अर्थात् अपर उप-कलक्टर, चाईबासा, पश्चिम सिंहभूम तथा कमिश्नर, सिंहभूम, कोलहन डिविजन, चाईबासा द्वारा समुचित रूप से विचार नहीं किया गया है और इसलिए दिनांक 12 नवम्बर 2007 का आदेश (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-2) और दिनांक 19 मार्च 2009 (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-3) अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है।

3. मैंने प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को सुना है, जिन्होंने जोरदार निवेदन किया है कि याची मूलवादी नहीं है बल्कि उसका पति मूलवादी था, जिसने कोलहन अभिधान वाद सं॰ 3/2002-2003 को संस्थापित किया है। याची के पति की मृत्यु हो चुकी है और इसलिए वादी मृतक के बांए अंगूठे के निशान के किसी साक्ष्य को लेने का प्रश्न नहीं है और इसलिए अपर उप-कलक्टर, चाईबासा पश्चिम सिंहभूम और कमिश्नर, सिंहभूम, कोलहन डिविजन, चाईबासा द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 12 नवम्बर, 2007 और दिनांक 19 मार्च, 2009 के आदेश (याचिका के मेमों का क्रमशः परिशिष्ट 2 और 3) इस मामले के साक्ष्य के पूर्णतः अनुरूप है और इसलिए दोनों आदेशों को अभिखंडित एवं अपास्त करने की आवश्यकता नहीं है।

4. पक्षों को सुनने के बाद और मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखते हुए मैं एतद् द्वारा कोलहन अभिधान वाद सं॰ 3/2002-2003 में दिनांक 12 नवम्बर, 2007 के अपर उप-कलक्टर, चाईबासा, पश्चिम सिंहभूम द्वारा पारित आदेश और कोलहन अभिधान अपील सं॰ 1 वर्ष 2008 में दिनांक 19 मार्च, 2009 के कमिश्नर, सिंहभूम, कोलहन डिविजन, चाईबासा द्वारा पारित आदेश (क्रमशः याचिका के मेमो का परिशिष्ट-2 और 3) को निम्नलिखित कारणों से अभिखंडित और अपास्त करता हूँः-

(I) वर्तमान याची का पति मूलवादी है जिसने कोलहन अभिधान वाद सं० 3/2002-2003 संस्थापित किया है जिसमें तीन विक्रय विलेख इस आधार पर चुनौती के अधीन है कि वादी का हस्ताक्षर और अंगूठे का निशान नहीं है और ये दस्तावेज झूठे और मनगढ़ंत दस्तावेज है और उक्त कारण से वर्तमान प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध वर्तमान याची के पति द्वारा कोलहन अभिधान वाद सं० 3/2002-2003 संस्थापित किया गया था।

(II) यह प्रतीत होता है कि मूलवादी की मृत्यु जनवरी, 2006 में हो गयी है और इसलिए वर्तमान याची को उसकी विधवा होने के नाते वादी के रूप में प्रतिस्थापित किया गया है।

(III) अब प्रश्न बना रहता है कि विवाहित विक्रय-विलेखों पर मूलवादी के बांए अंगूठे का निशान है या नहीं और यह तुलना अन्य विवादित दस्तावेजों के साथ की जा सकती है। इस पहलू का कमिश्नर, सिंहभूम कोलहन डिविजन, चाईबासा और अपर उप कलक्टर, चाईबासा, पश्चिम सिंहभूम द्वारा समुचित रूप से अधिमूल्यन नहीं किया गया है। यदि मूलवादी की मृत्यु हो भी गयी है, फिर भी उसके अंगूठे के निशान का मिलान अविवादित दस्तावेजों के साथ किया जा सकता है ताकि संबंधित प्राधिकारीगण द्वारा यह विनिश्चित किया जा सके कि विवादित दस्तावेज अथवा दस्तावेजों में अंगूठे का निशान मूलवादी का है या नहीं। यह कार्य साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 45 के मुताबिक हस्त लेखन विशेषज्ञ द्वारा पूरा किया जा सकता है।

(IV) दोनों अवर प्राधिकारीगण द्वारा पारित आदेशों को देखते हुए प्रतीत होता है कि उन्होंने अभिलेख पर प्रकट गलती की है कि जब एक बार मूल वादी की मृत्यु हो गयी है, मूल वादी के बांए अंगूठे के निशान का मिलान असंभव है अथवा अपेक्षित नहीं है। उन्होंने इस तथ्य को नजर अंदाज कर दिया है कि भले ही मूलवादी की मृत्यु हो गयी है विवादित दस्तावेज पर मूलवादी के अंगूठे के निशान का मिलान सदैव अविवादित दस्तावेजों जैसे वाद पत्र और कोलहन अभिधान वाद सं० 3/2002-2003 में रखे गए उपस्थिति रजिस्टर के साथ किया जा सकता है।

(V) आगे प्रतीत होता है कि आरंभ में अपर उप-कलक्टर, चाईबासा, पश्चिम सिंहभूम द्वारा दिनांक 29 नवम्बर, 2006 को याची के पक्ष में पहले ही एक आदेश (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-1) पारित किया गया था। इस आदेश द्वारा हस्तलेखन विशेषज्ञ का मत लेना आदेशित किया गया था और पक्षों में से किसी के द्वारा आवेदन न दिए जाने पर भी, स्वयं अपनी स्वप्रेरणा पर अपर उप-कलक्टर, चाईबासा, पश्चिम सिंहभूम ने अपना दिनांक 29 नवम्बर, 2006 का पूर्व आदेश वापस ले लिया है और दिनांक 12 नवम्बर, 2007 को अनावश्यकतः एक अन्य आदेश पारित किया है और यह आक्षेपित आदेश (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-2) इस रिट याचिका में चुनौती के अधीन है। शायद अपर उप-कलक्टर, चाईबासा, पश्चिम सिंहभूम द्वारा अपना पूर्व आदेश वापस लेने की आवश्यकता नहीं है। इस आदेश का वापस लिया जाना प्रतिस्थापित वादी के लिए मुश्किलें खड़ी करता है। अवर प्राधिकारीगण को अधिमूल्यन करना चाहिए था कि जब एक बार याची के पक्ष में आदेश पारित किया जाता है, न्यायोचित कारणों के बिना इसे वापस नहीं लिया जाना चाहिए था।

5. पूर्वोक्त तथ्यों और कारणों के संचित प्रभाव के कारण, मैं एतद् द्वारा कोलहन अभिधान वाद सं० 3/2002-2003 में अपर उप-कलक्टर, चाईबासा, पश्चिम सिंहभूम द्वारा दिनांक 12 नवम्बर, 2007 को पारित आदेश/याचिका के मेमो का परिशिष्ट-2) और कोलहन अभिधान अपील सं० 1 वर्ष 2008

में कमिश्नर, सिंहभूम, कोलहन डिविजन, चाईबासा द्वारा पारित दिनांक 19 मार्च, 2009 के आदेश (याचिका के मेमों का परिशिष्ट-3) को अभिखंडित और अपास्त करता हूँ। मैं कोलहन अभिधान वाद सं॰ 3/2002-2003 में अपर उप-कलक्टर, चाईबासा, पश्चिम सिंहभूम द्वारा पारित दिनांक 29 नवम्बर, 2006 के आदेश (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-1) को पुनर्जीवित करता हूँ। मैं, एतद् द्वारा, अपर उपकलक्टर, चाईबासा, पश्चिम सिंहभूम को जितना शीघ्र और संभव और व्यवहार योग्य हो, दिनांक 30 दिसम्बर, 2010 तक अथवा इसके पहले कोलहन अभिधान वाद सं॰ 3/.2002-2003 को पक्षों को अनावश्यक स्थगन दिए बिना सुनने और निपटाने का भी निर्देश देता हूँ। दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता ने आश्वासन दिया है कि वे अपर उप कलक्टर, चाईबासा, पश्चिम सिंहभूम के समक्ष पूर्वोक्त वाद के शीघ्र निपटारे में सहयोग करेंगे।

यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और निपटायी जाती है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

राम जपित कुमार

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 2877 of 2008. Decided on 14th May, 2010.

सेवा विधि–जन्म तिथि–सेवा निवृत्ति–सत्यापन के लिए मैट्रिक प्रमाण पत्र बी॰ एस॰ इ॰ बी॰ भेजा गया–बिहार विद्यालय परीक्षा बोर्ड से रिपोर्ट प्राप्त किए बिना याची की सेवाएं इस आधार पर समाप्त कर दी गयी कि उसने अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर ली थी–अपनी जन्मतिथि के शुद्धिकरण का दावा करते याची ने कभी कोई विवाद नहीं उठाया था और न ही उसकी जन्मतिथि के शुद्धिकरण के लिए उसके दावा के रूप में याची की शिकायत को सुनने का प्रत्यर्थी प्राधिकारीगण के पास ऐसा अवसर उपलब्ध था–प्रत्यर्थी ने याची की जन्म तिथि, जैसा यह उसके मैट्रिक प्रमाण पत्र में उल्लिखित है, की प्रविष्टि पर विवाद नहीं किया है–याची के मैट्रिक प्रमाण पत्र में परिलक्षित जन्मतिथि को सही तिथि के रूप में स्वीकार करना चाहिए और तद्नुसार उसके अधिवर्षिता की तिथि संगणित एवं आकलित की जानी चाहिए–आक्षेपित आदेश अपास्त–आवेदन अनुज्ञात। (पैरा 9 से 12)

अधिवक्तागण.–Mr. R. Krishna, For the Petitioner; Mr. Kaushik Sarkhel, J.C. to A.G., For the Respondents.

आदेश

पक्षों के अधिवक्ता को सुना गया।

2. इस रिट आवेदन में याची की शिकायत प्रत्यर्थीगण के दिनांक 31.5.2008 के आक्षेपित आदेश (परिशिष्ट-17) के विरुद्ध है जिसके द्वारा बिहार विद्यालय परीक्षा बोर्ड द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर विचार किए बिना प्रत्यर्थी सं॰ 4 ने घोषणा की है कि याची की जन्मतिथि सुधारी नहीं जा सकती है।

3. स्वीकृत तथ्यों से प्रतीत होता है कि वर्ष 1970 में याची को मैट्रिकुलेट कॉंस्टेबुल के रूप में नियुक्त किया गया था। सेवा में प्रवेश की तिथि पर, उसकी आयु 23 वर्ष दर्ज की गयी थी। आरंभ में वह

तत्कालीन बिहार राज्य के भोजपुर जिला के अधीन पदस्थापित किया गया था और बाद में उसकी सेवाएँ झारखंड राज्य को अंतरित कर दी गयी थी।

4. आगे प्रतीत होता है कि दिनांक 29.5.2007 के पत्र (परिशिष्ट-3) के तहत आरक्षी अधीक्षक, झारखंड सशस्त्र पुलिस प्रशिक्षण केन्द्र, पद्मा, हजारीबाग ने याची को अपना जन्म प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने का निर्देश दिया जो याची के उम्र का आकलन करने के लिए अपेक्षित था, क्योंकि उसकी सेवा पुस्तिका उस कार्यालय, जहाँ बिहार राज्य में याची पहले पदस्थापित था, से उपलब्ध नहीं करायी जा रही थी। यह दावा करते हुए कि उसने वर्ष 1965 में बिहार विद्यालय परीक्षा बोर्ड से मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण किया था, याची ने अपना मैट्रिक प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया। प्रमाण पत्र से संतुष्ट नहीं होने के चलते प्रत्यर्थीगण के संबंधित प्राधिकारी ने सत्यापन करना इप्सित किया और इस उद्देश्य हेतु बिहार विद्यालय परीक्षा बोर्ड से रिपोर्ट ईप्सित किया था। यह प्रतीत होता है कि बिहार विद्यालय परीक्षा बोर्ड से रिपोर्ट प्राप्त किए बिना याची की सेवाएँ इस आधार पर समाप्त कर दी गयी थी कि उसने अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर ली थी।

5. व्यथित होकर, याची ने इस न्यायालय के समक्ष डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 6406K वर्ष 2007 के तहत एक रिट आवेदन दाखिल किया। दिनांक 24.4.2008 के अपने आदेश के तहत रिट आवेदन निपटाते हुए इस न्यायालय ने प्रत्यर्थीगण के संबंधित प्राधिकारीगण अर्थात् प्रत्यर्थी सं॰ 4 को इस आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से छह सप्ताहों के भीतर याची की जन्मतिथि के संबंध में बिहार विद्यालय परीक्षा बोर्ड द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर विधि के अनुरुप समुचित आदेश पारित करने का निर्देश दिया था।

6. पूर्वोक्त निर्देशों के अनुपालन में, प्रत्यर्थी सं॰ 4 ने अन्य बातों के साथ यह घोषणा करते हुए कि सेवा में याची को लिए जाने के दस वर्षों बाद याची की जन्मतिथि में कोई शुद्धिकरण नहीं किया जा सकता है क्योंकि बिहार राज्य सरकार द्वारा जारी परिपत्रों के अधीन ऐसे शुद्धिकरण प्रतिबंधित है। आक्षेपित आदेश पारित किया है।

7. व्यथित होकर, याची ने आक्षेपित आदेश को चुनौती दी है।

8. आक्षेपित आदेश का विरोध करते हुए, याची के अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि आक्षेपित आदेश पूर्व रिट आवेदन में इस न्यायालय के आदेश में अंतर्विष्ट निर्देशों को गलत समझते हुए पारित किया गया प्रतीत होता है। विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि प्रत्यर्थीगण ने उसकी जन्मतिथि के शुद्धिकरण के लिए याची के दावा के प्रति विवाद्यक का गलत अर्थ लगाया है जबकि अन्यथा उपदर्शित किए गए तथ्य यह है कि बिहार विद्यालय परीक्षा बोर्ड से ईप्सित की गयी और प्राप्त की गयी रिपोर्ट के आधार पर उसकी जन्मतिथि के प्रति निदेश द्वारा याची की आयु के आकलन की अपेक्षा प्रत्यर्थीगण से की जाती थी। जन्मतिथि जिसपर प्रत्यर्थीगण द्वारा विवाद भी नहीं किया गया है, मैट्रिक प्रमाण पत्र में प्रविष्टियों के मुताबिक दिनांक 7.7.1948 है। इस तिथि को स्वीकार करने से प्रत्यर्थीगण ने गलत रूप से इंकार किया है और एक कल्पित तिथि दिनांक 31.12.1947 पर जोर दिया है जो तिथि उसकी सेवा पुस्तिका में एक अन्य कलम द्वारा याची को छोड़कर किसी अन्य व्यक्ति के हस्तलेखन में लिखा गया प्रतीत होता है।

9. दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता तर्क करेंगे कि याची की शिकायत मुख्यत: उसकी जन्मतिथि के शुद्धिकरण के लिए उसके दावा के संबंध में है। यह निष्कर्ष इस तथ्य के कारण है कि उसकी सेवा पुस्तिका में, जो बाद में प्राप्त की गयी थी, उसकी जन्मतिथि दिनांक 31.12.1947 उल्लिखित की गयी थी और इसे उसकी स्वीकृत जन्मतिथि मानते हुए उसकी अधिवर्षिता की तिथि आकलित की गयी

थी और इसलिए उसे अधिवर्षित कर दिया गया था यद्यपि अधिवर्षिता की ऐसी तिथि बिहार विद्यालय परीक्षा बोर्ड से रिपोर्ट की प्राप्ति के पहले ही अवसरित हो सकती है।

10. प्रत्यर्थीगण द्वारा किया गया अभिवाक् और प्रस्तुत स्पष्टीकरण पूर्व रिट आवेदन में इस न्यायालय के आदेश में अंतर्विष्ट निर्देशों के अनुरूप नहीं प्रतीत होता है। जैसा प्रतीत होता है, स्वीकृत रूप से याची ने उसे सूचित करते हैं कि वह समयपूर्व तिथि पर अधिवर्षित होगा, प्रत्यर्थीगण की कार्रवाई का विरोध किया था।

11. जैसा याची के अधिवक्ता द्वारा इंगित किया गया है, पूर्व रिट आवेदन में प्रत्यर्थीगण के प्रति शपथपत्र में, प्रत्यर्थीगण द्वारा यह अभिस्वीकृति किया गया था कि याची की जन्मतिथि के संबंध में बिहार विद्यालय परीक्षा बोर्ड से रिपोर्ट प्राप्त करने के पहले ही याची के अधिवर्षिता का आदेश पारित किया गया था। याची के मामले के इन पहलूओं पर विचार करने के बाद ही इस न्यायालय ने बिहार विद्यालय परीक्षा बोर्ड द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर विधि के अनुरुप समुचित आदेश पारित करने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को दिया था। ऐसी परिस्थितियों के अधीन, यह प्रत्यर्थीगण पर बाध्यकारी था कि वे तद्नुसार रिपोर्ट पर विचार करें और समुचित निर्णय लें। यह ध्यान में लिया जा सकता है कि अपनी जन्मतिथि के शुद्धिकरण का दावा करते हुए याची ने कभी कोई विवाद नहीं उठाया था और ना ही उसकी जन्मतिथि के शुद्धिकरण के लिए याची की शिकायत को उसका दावा मानने का ऐसा कोई अवसर प्रत्यर्थीगण को उपलब्ध था। जैसा याची के अधिवक्ता द्वारा इंगित किया गया है कि उसके मैट्रिक प्रमाण पत्र में उल्लेखानुसार याची की जन्म तिथि की प्रविष्टि प्रत्यर्थीगण द्वारा विवादित नहीं की गयी है। यदि ऐसा है तो, कोई कारण नहीं है कि क्यों नहीं जन्म तिथि, वैसा याची के आयु संगणित एवं आकलित किया जाना चाहिए।

12. उक्त चर्चाओं की दृष्टि में, और मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में, मैं इस रिट आवेदन में गुणागुण पाता हूँ और तद्नुसार इसे अनुज्ञात किया जाता है। परिशिष्ट-17 के तहत प्रत्यर्थी सं० 4 का आक्षेपित आदेश एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। चूँकि याची ने अब अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर ली है, प्रत्यर्थीगण के संबंधित प्राधिकारीगण को धनीय लाभों सहित लाभों जो याची को प्रोद्भूत होते हुए यदि मैट्रिक प्रमाण-पत्र में उल्लिखित उसकी जन्मतिथि के मुताबिक उसकी अधिवर्षिता की तिथि तक उसे सेवा में बने रहने की अनुमति दी जाती। इस तरह आकलित राशि प्रत्यर्थीगण के संबंधित प्राधिकारीगण द्वारा इस आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुती की तिथि से दो माह के भीतर याची को भुगतान करना होगा। इस आदेश की प्रति प्रत्यर्थी राज्य के अधिवक्ता को दी जाए।

माननीय सुशील हरकौली, न्यायमूर्ति

कंदर्प झा एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) No. 1016 of 2010. Decided on 17th May, 2010.

शैक्षणिक विधि–दंड–जूनियर छात्रों की पिटाई करने के लिए छात्रों को महाविद्यालय से निष्कासन–रैंगिंग से जुड़ा मामला–किसी व्यावसायिक पाठ्यक्रम के मध्य में महाविद्यालय से किसी छात्र के निष्काषण का दंड वस्तुतः महत्तम दंड है जिसे अधिनिर्णीत किया जा सकता है–सुनवाई का पर्याप्त और युक्तियुक्त अवसर दिए बिना अधिनिर्णीत महत्तम दंड संपोषित नहीं किया जा सकता है और अपास्त किया जाता है–सीमित अवधि के लिए महाविद्यालय से निलम्बन न केवल याचीगण के लिए पर्याप्त सबक होगा बल्कि भविष्य में ऐसे रिष्टि से अन्यों को रोकने में उदाहरण के रूप में काम करेगा–याचिका अनुज्ञात।　　　　(पैरा 3 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. Anil Kumar Sinha, Mr. Saurav Arun, Ms. Neha Prashant, For the Petitioners; Mr. Ajit Kumar Sinha, Mr. Rahul Kumar, For the Respondents.

आदेश

याचीगण के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थी सं० 3 और 4 के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया। दिनांक 18.2.2010 के आक्षेपित आदेश द्वारा याचीगण के अभिभावकों को सूचित किया गया है कि याचीगण ने दिनांक 16.2.2010 को अपने जूनियर छात्रों में से दो की पिटाई की थी जिसके संबंध में प्राथमिकी दर्ज की गयी थी। आदेश कहता है कि घटना पर विचार करते हुए और महाविद्यालय की अनुशासनिक कमिटि की अनुशंसा पर महाविद्यालय के प्रबंधन ने महाविद्यालय से याचीगण को निष्काषित करने का निर्णय लिया है।

2. दिनांक 16.2.2010 के घटना के संबंध में दिनांक 17.2.2010 की प्राथमिकी इस रिट याचिका के परिशिष्ट के रूप में दाखिल की गयी है। प्राथमिकी के अनुसार, पीटे गए दो जूनियर छात्र 2008 बैच के थे। प्रहार करने वाली पार्टी 2007 और 2005 बैच की थी। प्राथमिकी स्वयं उल्लिखित करता है कि 2008 बैच के दो छात्रों की पिटाई का उकसावा यह था कि उन दोनों छात्रों ने अभिकथित रूप से पहले कुछ अन्य छात्रों के साथ लड़ाई और मारपीट किया था।

3. इन तथ्यों पर विचार करते हुए, प्रथमतः मामला केवल तकनीकी रूप से रैंगिंग का है। सामान्यतः रैंगिंग को नए छात्रों को परेशान किए जाने के रूप में देखा जाता है। स्वीकृत रूप से, जैसा ऊपर उल्लिखित किया गया है, प्रहार का कारण, अभिप्रेरण और उकसावा 2008 बैच के दो छात्रों द्वारा पूर्व अभिकथित प्रहार प्रतीत होता है।

4. आगे, यद्यपि प्रति शपथपत्र में यह अभिकथित किया गया है कि दिनांक 17.2.2010 की नोटिस याचीगण को दी गयी थी किन्तु महाविद्यालय के प्रति शपथपत्र के परिशिष्ट–C के रूप में संलग्न उस नोटिस की प्रति स्पष्टतः दर्शाती है कि यह केवल दिनांक 16.2.2010 की घटना के संबंध में प्राचार्य के कार्यालय में दिनांक 17.2.2010 को दोपहर तीन बजे अनुशासनिक कमिटि के समक्ष याचीगण और अन्य अंतर्ग्रस्त छात्रो की उपस्थिति की अपेक्षा करती है। नोटिस आगे कोई विवरण नहीं देती है और मेरे मत में यह सुनवाई का ''युक्तियुक्त'' अवसर गठित नहीं करता है। स्पष्टतः घटना की प्रकृति और उपलब्ध समय के प्रकाश में, सुनवाई का ''युक्तियुक्त'' अवसर नोटिस किए गए व्यक्ति के विरुद्ध अभिकथन का एक स्पष्ट उपदर्शन और लिखित उत्तर प्रस्तुत करने हेतु युक्तियुक्त समय प्रदान किया जाना अपेक्षित करता है। सुनवाई के दौरान क्या पता चला है अर्थात् नोटिस किया गया व्यक्ति ने क्या प्रतिवाद किया है, के बारे में मात्र मौखिक सुनवाई आपेक्षित आदेश में नोटिस न दिए जाने के दोष से पीड़ित हो सकती है। यह उच्चतर प्राधिकारीगण अथवा न्यायालयों के निर्णय हेतु मुश्किल करेगा कि प्रतिवाद पर समुचित परिप्रेक्ष्य में विचार किया गया है या नहीं।

5. आगे, दर्ज की गयी प्राथमिकी केवल भा० दं० सं० की धारा 323 के अधीन है और उपहति रिपोर्ट भी कोई महत्वपूर्ण उपहति उपदर्शित नहीं करते हैं जो प्राथमिकी को किसी उच्चतर धारा, उदाहरणस्वरुप गंभीर नुकसान/चोट, की ओर ले जाएगा। उपहति रिपोर्ट यह उपदर्शित भी नहीं करती है कि कारित उपहतियों के परिणामस्वरुप पीटे गए दो छात्रों में से किसी को अस्पताल में भरती किया गया था यद्यपि प्रहार के उद्देश्य से छड़ को अभिकथित रूप से इस्तेमाल किया गया था।

6. छात्र द्वारा अनुसरित किए जा रहे किसी व्यवसाय पाठ्यक्रम के मध्य में महाविद्यालय से किसी छात्र का निष्कासन का दंड वस्तुत: महत्तम दंड है जिसे अधिनिर्णीत किया जा सकता है।

7. ऊपर उल्लिखित समस्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए मेरा मत है कि सुनवाई का पर्याप्त और युक्तियुक्त अवसर दिए बिना अधिनिर्णीत परमदंड संपोषित नहीं किया जा सकता है और अपास्त किया जाता है। आगे, युक्तियुक्त समय, जो मामले की परिस्थिति में तीन दिन से सात दिन तक हो सकता है, के भीतर लिखित प्रतिवाद आमंत्रित करते हुए समुचित कारण बताओ नोटिस देने की छूट महाविद्यालय को होगी और तत्पश्चात् अनुशासनिक कमिटि को मामले पर विचार करना होगा कि याचीगण में से कोई सभी प्रहार में वास्तविक रूप से अंतर्ग्रस्त था या नहीं और यदि था, क्या उक्त प्रहार, न केवल तकनीकी रूप से बल्कि सारवान रूप से भी, रैंगिंग की परिभाषा के अधीन आ सकता है। अनुशासनिक कमिटि को यह भी विचार करना होगा कि सारे तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में लेते हुए क्या महत्तम दंड, जिसका परिणाम याचीगण की समस्त भावी संभावनाओं और कैरिअर को बर्बाद करने में होगा, दिया जाना आवश्यक है अथवा कम दंड अर्थात् सीमित अवधि के लिए महाविद्यालय से निलम्बन सबक के रूप में न केवल याचीगण के लिए पर्याप्त होगा बल्कि भावी रिष्टि से बचने के लिए अन्यों के लिए उदाहरण का काम करेगा।

8. उक्त कथन की दृष्टि में, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और प्रत्यर्थी महाविद्यालय को समुचित कार्रवाई करने की छूट होगी। परिशिष्ट-3 श्रृंखला के रूप में संलग्न आक्षेपित आदेश एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

मुख्तार अहमद एवं अन्य

बनाम

महमूदी खातून एवं अन्य

First Appeal (S.J.) No. 107 of 2000. Decided on 19th May, 2010.

विभाजन वाद सं० 164 वर्ष 1993/53 वर्ष 2000 में श्री अजित प्रसाद वर्मा, सब-जज-IX, राँची द्वारा पारित दिनांक 11.7.2000 के निर्णय एवं डिक्री (डिक्री दिनांक 22.7.2000 को हस्ताक्षरित) के विरुद्ध।

मोहम्मडन विधि–विभाजन–एकपक्षीय विभाजन डिक्री–सौतेले माता-पिता से सौतेले संतान विरासत नहीं पाते हैं और न हीं सौतेले माता-पिता सौतेली संतानों से विरासत पाते हैं–महिला के नाम की सारी संपत्ति अनन्यत: उसकी है–नाभिक की संयुक्तता की धारणा अथवा कोई ऐसी धारणा नहीं है कि संयुक्त परिवार के मुखिया के संयुक्त नाभिक से संपत्ति खरीदी गयी है। (पैरा 16 एवं 19)

अधिवक्तागण.–Mr. Sohali Anwar, Mr. Afaque Ahmed, For the Appellants; Mr. A. Allam, Ms. Nehala Sharmin, For the Respondent No. 6.; Mr. P.K. Prasad, For the Respondents.

प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति.—अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थी-वादीगण एवं प्रत्यर्थी-प्रतिवादीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. यह नोट करना महत्वपूर्ण है कि प्रतिवादी सं॰ 1, 2 और 3 ने इस अपील को दाखिल किया है और वादी प्रत्यर्थी सं॰ 1 है और शेष प्रतिवादी सं॰ 7 से 11 मामला में प्रत्यर्थीगण हैं।

3. यह अपील विभाजन वाद सं॰ 164 वर्ष 1993/53 वर्ष 2000 में श्री अजित प्रसाद वर्मा, सब-जज-IX, राँची द्वारा पारित दिनांक 11.7.2000 के निर्णय और डिक्री (डिक्री दिनांक 22.7.2000 को हस्ताक्षरित) के विरुद्ध दाखिल की गयी है, जिसके द्वारा पक्षों के मामले पर चर्चा करने के बाद विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश इस निश्चयात्मक निष्कर्ष पर आए कि वाद पत्र के अनुसूची-A में आइटम सं॰ 1, 2 और 3 वाद पत्र के अनुसूची-B के आइटम सं॰ 3 और वाद पत्र के अनुसूची-C के आइटम सं॰ 12 में उल्लिखित संपत्तियों के संबंध में वादी बँटवारा प्राप्त करने का हकदार है। अंतिम डिक्री तैयार किए जाते समय सर्वेक्षण के जानकार प्लीडर-कमिश्नर की नियुक्ति द्वारा पृथक तख्ता काटकर निकाला जाएगा। डिक्री प्रतिवाद कर रहे प्रतिवादी सं॰ 1, 2 और 3 के विरुद्ध और अन्य प्रतिवादी के विरुद्ध एकपक्षीय पारित की गयी थी क्योंकि उन्होंने वाद का प्रतिवाद नहीं किया था।

4. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि अनुसूची-A आइटम सं॰ 1, 2 और 3 में संपत्ति उनकी माता बीबी जैनाब के नाम पर दर्ज संपत्ति थी और वे प्रदर्श A/2, A/3 और A/4 के तहत खरीदी गयी थी। प्रदर्श A/3 मो॰ याकूब, अपीलार्थीगण और प्रतिवादीगण का पिता, द्वारा डाबर ऋण के बदले में अपनी पत्नी मोसमात जैनाब के पक्ष में निष्पादित की गयी थी और प्रदर्श A/2 भी मोस्मात जैनब द्वारा अपने नाम में खरीदी गयी थी। प्रदर्श A/4 भी बीबी जैनाब द्वारा खरीदा गया था और इस प्रकार अनुसूची A के आइटम सं॰ 1, 2 और 3 और अनुसूची-B के आइटम सं॰ 3 की संपत्तियाँ मुस्लिम कानून के मुताबिक केवल बीबी जैनाब के पुत्रों और पुत्रियों के बीच ही बाँटी जा सकती है। उन्होंने निवेदन किया है कि हिन्दु विधि के सिद्धान्तों जहाँ संपत्ति स्त्री को संपूर्ण संपत्ति नहीं है यदि स्रोत जिससे संपत्ति खरीदी गयी है, को संयुक्त परिवार का अथवा पति द्वारा सिद्ध किया जाता है, तब इसे स्त्री की संपत्ति नहीं माना जाएगा, पर विचार करते हुए विचारण न्यायालय ने विवाद्यक को गलत विनिश्चित किया है। किन्तु, मुस्लिम कानून में, मुस्लिम महिला के नाम में सारी संपत्तियाँ, धन के स्रोत, जिससे इसे खरीदा गया था, को ध्यान में लिए बिना उसकी होगी। मुस्लिम कानून में संयुक्तता की अवधारणा नहीं है और इस प्रकार यह विनिश्चित करते हुए कि समस्त संपत्तियाँ मो॰ याकूब के 17 उत्तराधिकारियों के बीच बाँटी जाएँगी और तद्द्वारा वादीगण और प्रतिवादीगण को 1/17 अंश प्रदान करते हुए विद्वान अवर न्यायालय ने विधि की गलती की।

5. वस्तुत: मोस्मात जैनाब की संपत्तियाँ केवल उसके तीन पुत्रों, जो तीन अपीलार्थी-प्रतिवादी सं॰ 1, 2 और 3 हैं, के बीच वितरित की जाएगी, जिनमें से प्रत्येक को 2/10 अंश मिलेगा और उनकी बहनों, वादी महमूदी खातुन, प्रतिवादी सं॰ 4 अहमदी खातुन, प्रतिवादी सं॰ 5 सगीरा खातुन और प्रतिवादी सं॰ 6 मुनीरा खातुन को 1/10 अंश प्रत्येक को मोस्मात जैनाब, जिसके नाम संपत्ति है, से मो॰ याकूब के पुत्र पुत्री होने के नाते मिलेगा।

6. दूसरी ओर, वादी जो अपील में प्रत्यर्थी सं॰ 1 के रूप में उपस्थित हुआ है, प्रतिवादी सं॰ 1, 2 और 3 का दावा स्वीकार करता है और निवेदन करता है कि यद्यपि वादीगण, जो मो॰ याकूब और मोसमात जैनाब की पुत्रियाँ हैं, ने वाद पत्र में दावा किया कि अनुसूची A आइटम सं॰ 1 और आइटम सं॰ 2 की संपत्तियाँ उसके पिता मो॰ याकूब द्वारा अर्जित की गयी थी किन्तु विक्रय-विलेखों प्रदर्श A/2 और A/3 में स्वीकार करता है कि वे मोस्मात जैनाब की अनन्य संपत्तियाँ है और यह भी स्वीकार करता है कि अनुसूची A आइटम सं॰ 1, 2 और 3 तथा अनुसूची B के आइटम सं॰ 3 में वह केवल 1/10 अंश

का हकदार है। अनुसूची C की संपत्ति जो उसके पिता की संपत्ति है, में सारे पुत्र-पुत्रियाँ बराबर हिस्सा पाने के हकदार हैं। किन्तु, अन्य प्रतिवादीगण, जो प्रत्यर्थी सं॰ 2 से 9(h) है और जिन्होंने विचारण न्यायालय में वाद का प्रतिवाद नहीं किया था, ने निवेदन किया कि चूँकि वादी ने अपने वादपत्र में स्वीकार किया है कि संपत्तियाँ अर्थात अनुसूची A में आइटम सं॰ 1, 2 और 3 अनुसूची B में आइटम सं॰ 3 और अनुसूची C संपत्तियाँ मो॰ याकूब द्वारा अर्जित की गयी थी और इसलिए अब वादी मुकर नहीं सकता है और नहीं कह सकता है कि अनुसूची A में आइटम सं॰ 1, 2 और 3 और अनुसूची B में आइटम सं॰ 3 संपत्तियाँ मोस्मात जैनाब की अनन्य संपत्तियाँ है और विचारण न्यायालय का निष्कर्ष कि मो॰ याकूब के सारे पुत्र-पुत्रियाँ 1/17 के बराबर के अंश के हकदार हैं, सुस्थापित है और इस न्यायालय के द्वारा हस्तक्षेप किए जाने की अपेक्षा नहीं करता है। यद्यपि इन अपीलार्थीगण ने विचारण न्यायालय में कोई दस्तावेज नहीं दिया है और न ही कोई विनिर्दिष्ट प्रतिवाद किया है और न ही उन्होंने कोई अपील दाखिल की है, अत: उन्होंने वादीगण द्वारा किया गया प्रतिवाद अपनाया है।

7. दोनों पक्षों को सुनने के बाद और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के परिशीलन के बाद, मैं पाता हूँ कि वादी-प्रत्यर्थी सं॰ 1 महमूदी खातुन ने तीनों प्रतिवादी-अपीलार्थी सं॰ 1, 2 और 3 और अपनी तीन बहनों अर्थात प्रतिवादीगण सं॰ 4, 5, 6 के रूप में अहमदी खातुन, सगीरा खातुन और मुनीरा खातुन के विरुद्ध सब-जज, राँची के समक्ष विभाजन वाद सं॰ 164 वर्ष 1993 दाखिल किया था।

8. वाद पत्र में वादी का मामला यह था कि वादी और प्रतिवादीगण मुसलमान हैं और उत्तराधिकार एवं विरासत के मामले में मुस्लिम विधि के हनीफ स्कूल द्वारा शासित होते हैं और वादी प्रत्यर्थीगण की सहोदर बहन है। आगे कथन किया गया है कि मो॰ याकूब वादी और प्रतिवादीगण का पिता था। उसका विवाह बीबी जैनाब खातुन के साथ हुआ था जिससे वादी और प्रतिवादीगण अर्थात् प्रतिवादी सं॰ 1 से 6 का जन्म हुआ था। उसने आगे कथन किया कि वर्ष 1993 में कभी मो॰ याकूब की मृत्यु हो गयी और अपने पति की मृत्यु के डेढ़ माह बाद उनकी माता मोस्मात जैनाब खातुन की मृत्यु वर्ष 1994 में हो गयी। अत: वादी और प्रतिवादीगण (प्रतिवादी सं॰ 1-6) अपने मृत पिता मो॰ याकूब और मृत माता जैनाब खातुन के विधिक उत्तराधिकारी थे। उसने प्राख्यान किया कि काँटा टोली, राँची में 14 कट्ठा वाली भवन संपत्ति जो वाद पत्र के अनुसूची A का आइटम सं॰ 1 है, मो॰ याकूब द्वारा अर्जित की गयी थी। इसी प्रकार, अनुसूची A के आइटम सं॰ 2 में गुदरी रोड, पी॰ एस॰ लोअर बाजार, राँची पर अवस्थित राँची नगरपालिका के वार्ड सं॰ IV, नगरपालिका सर्वे होल्डिंग सं॰ 683 के भीतर 5 कट्ठा माप वाली भूमि और भवन संपत्ति भी मो॰ याकूब द्वारा अर्जित की गयी थी और वाद पत्र के अनुसूची A के आइटम सं॰ 3 में वर्णित मोस्मात जैनाब खातुन के नाम में, मौजा कोन्का, पुराना हजारीबाग रोड, निकट काँटा टोली चौक, पी॰ एस॰ लोअर बाजार पर अवस्थित राँची नगरपालिका के वार्ड सं॰ IV नगरपालिका होल्डिंग सं॰ 694 के भीतर भूमि सहित भवन संपत्ति भी उसके पिता द्वारा अर्जित की गयी थी। उसने यह भी कथन किया कि वाद पत्र के अनुसूची-B में वर्णित अचल संपत्तियाँ उसके पिता द्वारा अर्जित की गयी थी जो भी वादीगण और प्रतिवादीगण के बीच न्यागत होगी। उसने यह अभिकथन भी किया कि उसके पिता का बहुत बड़ा व्यवसाय और अन्य अचल संपत्तियाँ थी जिन्हें प्रतिवादी सं॰ 1-3 द्वारा गैर-कानूनी रूप से रख लिया गया है और उसने वाद पत्र के अनुसूची C में उसके भाइयों और बहनों द्वारा गठित संयुक्त परिवार की कुछ अचल संपत्तियों की सूची भी दी है। वादी ने दावा किया कि अनुसूची A से C संपत्ति वादीगण और प्रतिवादीगण के संयुक्त परिवार की है और प्रतिवादी सं॰ 1-3 के गैर-कानूनी कब्जे में है और चूँकि प्रतिवादी सं॰ 1-3 ने संपत्तियों का कुप्रबंधन किया है, वाद में संपत्तियों का 1/12 अंश पाने के भी वादीगण हकदार है और प्रतिवादी सं॰ 1-3 संयुक्त रूप से 2/3 अंश पाने के हकदार हैं और प्रतिवादी सं॰ 4-6 को संपत्तियों में 1/12 अंश मिलेगा।

9. तद्नुसार, उसके पिता मो॰ याकूब और उसकी माता मोस्मात जैनाब की संपत्तियों में 1/12 अंश का डिक्री प्रदान करने के बाद वादी के लिए पृथक 'तख्ता' तैयार करने के लिए विभाजन वाद दाखिल किया गया था।

10. यह नोट करना महत्वपूर्ण है कि प्रतिवादी सं॰ 1-3 वाद में उपस्थित हुए और अपना लिखित कथन दाखिल किया। प्रतिवादीगण ने कथन किया कि पक्षों के कुसंयोजन के लिए वाद दोषपूर्ण है। मो॰ इस्लाम वाद पत्र के अनुसूची B के आइटम सं॰ 4 का खरीददार है और वह वाद पत्र के अनुसूची B के आइटम सं॰ 5 का भी खरीददार है। वाद पत्र के अनुसूची B के आइटम सं॰ 6 और 7 के कुसंयोजन के लिए भी वाद दोषपूर्ण था चूँकि वे पक्षों के स्वामित्व में नहीं थे बल्कि प्रतिवादी सं॰ 1 द्वारा परिसर को किराए पर लिया गया था। प्रतिवादीगण ने यह दावा भी किया कि वाद संपत्ति के किसी अंश के संबंध में पक्षों के बीच अधिकार, अभिधान एवं हित और कब्जा की एकता नहीं है। इन प्रतिवादी सं॰ 1-3 ने यह दावा भी किया कि वाद का कम मूल्यांकन किया गया था। उन्होंने स्वीकार किया कि मो॰ याकूब और मोसमात जैनाब खातुन उनके माता-पिता हैं किन्तु वाद पत्र के पैरा 9 में किए गए प्राख्यानों से इंकार किया और कथन किया कि अनुसची B में वर्णनानुसार आइटम 1 प्रतिवादी सं॰ 3 आफताब अहमद के स्वामित्व और कब्जा में है और अनुसूची B का आइटम सं॰ 2 प्रतिवादी सं॰ 3 इकबाल अहमद के स्वामित्व और कब्जा में है। यह कथन भी किया गया है कि 17½ कट्ठा की सीमा तक अनुसूची B के आइटम सं॰ 2 (C) और रजिस्टर्ड विक्रय विलेख के फलस्वरूप पक्षों की माता अर्थात् बीबी जैनाब खातून द्वारा अर्जित की गयी थी और उसके स्वामित्व एवं कब्जा में थी और अनुसूची B का आइटम सं॰ 4 मो॰ याकूब के ज्येष्ठ पुत्र मुमताज अहमद का था जिसे उसने अपने छोटे भाई मुख्तार अहमद को उपहार में दे दिया था और उसके पिता की उपस्थिति में उसके द्वारा उपहारस्वरुप स्वीकार किया गया था जिसे बाद में दिनांक 31.7.1989 और 4.1.1991 के दो रजिस्टर्ड विक्रय विलेखों द्वारा मो॰ इसलाम, पुत्र मो॰ छोटे, को अंतरित कर दिया गया था और संपत्तियाँ खरीददार के कब्जा में है।

11. इसी प्रकार, अनुसूची संपत्ति का आइटम सं॰ 5 मो॰ याकूब के जीवन काल में बेच दिया गया था। प्रतिवादीगण ने यह कथन भी किया कि वाद पत्र के अनुसूची B का आइटम सं॰ 6 और 7 किराए पर दिए गए परिसर हैं और प्रतिवादी सं॰ 1 मुख्तार अहमद के कब्जा में है और वह नियमित रूप से किराया दे रहा था। वाद पत्र के पैरा 10 और 11 में किए गए अभिकथनों को काल्पनिक बताया गया है। उन्होंने दावा किया कि कोई स्वर्णाभूषण नहीं है जैसा अनुसूची C के आइटम सं॰ 8 में अभिकथन किया गया है। उन्होंने अनुसूची C का ब्योरा भी दिया कि आइटम सं॰ 1 प्रतिवादी सं॰ 1, 2, 3 मुख्तार अहमद, इकबाल अहमद, आफताब अहमद द्वारा उनके अपने कोष और कमाई से संयुक्त रूप से शुरू किया गया था। इसी प्रकार अनुसूची C का आइटम सं॰ 2 प्रतिवादी सं॰ 3 आफताब अहमद द्वारा स्वयं अपने कोष और कमाई से शुरू किया गया था और इसे बाद में इसे समेट लिया गया था। अनुसूची C का आइटम सं॰ 3 प्रतिवादी सं॰ 2 इकबाल अहमद द्वारा स्वयं अपने कोष और कमाई से खरीदा गया था। अनुसूची C का आइटम सं॰ 4 इकबाल अहमद द्वारा स्वयं अपने कोष से खरीदा गया था। अनुसूची C का आइटम सं॰ 5 यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, काँटा टोली, शाखा, राँची के माध्यम से प्रतिवादी सं॰ 1 द्वारा खरीदा गया था। अनुसूची C का आइटम सं॰ 7 हाल फिलहाल में प्रतिवादी सं॰ 2 और 3 द्वारा स्वयं अपने पृथक कोषों और कमाई से खरीदा गया था। अनुसूची C का आइटम सं॰ 9 की संख्या केवल 2 है जिन्हें उनके ससुर द्वारा प्रतिवादी सं॰ 1 और 3 को दिया गया था। अनुसूची C का आइटम सं॰ 10 और 11 विद्यमान नहीं है। अनुसूची C का आइटम सं॰ 12 टूटी फूटी हालत में कुछ फर्नीचर है।

12. प्रतिवादी सं॰ 1, 2 और 3 ने अभिकथन किया है कि कोई संपत्ति संयुक्त नहीं है जैसा वादी द्वारा दावा किया गया है। उन्होंने यह दावा भी किया कि माता-पिता की मृत्यु के बाद पक्षों ने अपनी संपत्तियाँ सौहार्दपूर्ण रूप से व्यवस्थित कर ली थी और वादी को विनिर्दिष्ट शेयर आबंटित किया गया था। प्रतिवादीगण ने इंकार किया कि कुप्रबंधन हुआ था और निवेदन किया कि संपत्ति में वादी का हिस्सा 1/10 है, न कि 1/12 हिस्सा जैसा उसके द्वारा दावा किया गया है।

13. यह नोट करना महत्वपूर्ण है कि बाद में, उसकी दूसरी पत्नी मोस्मात चुरकी से मो॰ याकूब के पुत्र-पुत्री होने के नाते प्रतिवादी सं॰ 7-11 का नाम भी अंत:स्थापित किया गया था। किन्तु इन प्रतिवादीगण ने अपने शपथ पत्र के अधीन कोई लिखित बयान दाखिल नहीं किया था और किसी सुनील तिवारी द्वारा शपथ पत्रित एक औपचारिक लिखित कथन दाखिल किया गया था जिसमें उन्होंने वाद के लिए वाद हेतुक से इंकार किया था जैसा उसके वाद पत्र के पैरा 23 में वादी द्वारा दावा किया गया है। उन्होंने पैरा 3 में कथन किया कि इन प्रतिवादीगण को संपत्तियों के संबंध में पैरा 11 में वादी द्वारा दिए गए बयान के बारे में जानकारी नहीं है और उन्होंने पैरा 1-10, 12 और 13 में दिए गए बयानों को स्वीकार किया और स्वीकार किया कि पैरा 14 में दिए गए बयानों के संबंध में उन्हें जानकारी नहीं है। शेष पैराग्राफों 15, 16, 17, 18 और 20 को भी स्वीकार किया गया। अत: शेष प्रतिवादीगण सं॰ 7-11 का कोई विनिर्दिष्ट मामला नहीं था और उन्होंने वाद के बारे में प्रतिवाद नहीं किया जो उनके विरुद्ध एक-पक्षीय रूप से अग्रसर हुआ जैसा स्वयं अंतिम निर्णय से प्रतीत होता है।

14. अब वादीगण द्वारा दिए गए तर्कों से प्रतीत होता है कि उन्होंने पैरा 28 पर विचारण न्यायालय के निष्कर्ष की वाद पत्र के केवल अनुसूची A का आइटम सं॰ 1, 2 और 3, वाद पत्र के अनुसूची B का आइटम सं॰ 3 और वाद पत्र के अनुसूची C का आइटम सं॰ 12 ही मो॰ याकूब के उत्तराधिकारियों के बीच बँटवारे के लिए उपलब्ध है। अपीलार्थीगण ने निवेदन किया है कि विचारण न्यायालय ने गलत पाया कि संपत्तियाँ मो॰ याकूब द्वारा स्वयं अपने कोष से मोसमात जैनाब के नाम में खरीदी गयी थी और इस प्रकार संपत्ति मो॰ याकूब, उसकी पत्नी और संतानों के संयुक्त परिवार की है चूँकि इसे परिवार के सामान्य कोष से खरीदा गया था। अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि मुस्लिम विधि में संयुक्तता की अवधारणा नहीं थी।

15. पहले हम मुस्लिम विधि पर विचार करें जैसा यह ताहिर महमूद द्वारा अध्याय-12 (विरासत का कानून) भाग-II में दिया गया है:

II. मुस्लिम विधि-ज्ञात और अज्ञात अवधारणाएँ:

1. ''उत्तराधिकार की मुस्लिम विधि भारत के समानान्तर देशज प्रणालियों से मूलत: भिन्न है। 'जन्म स्वत्ववाद (जन्मजात अधिकार) का सिद्धान्त, जो उत्तराधिकार की मिताक्षरा विधि की नींव गठित करता है, मुस्लिम विधि को सर्वथा अज्ञात है। इस्लाम में उत्तराधिकार की विधि शास्त्रीय दायभाग विधि के कहीं ज्यादा निकट है यद्यपि अनेक मूल बिन्दुओं पर वह उससे भिन्नता रखता है। उत्तराधिकार की आधुनिक हिन्दु विधि जैसा हिन्दु उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 में अधिकथित किया गया है, पूर्वोक्त दोनों शास्त्रीय प्रणालियों से बिल्कुल भिन्न है; कतिपय संबंधों में यह उत्तराधिकार की मुस्लिम विधि के साथ उल्लेखनीय सामीप्यता रखता है।

2. विरासत (दया) का सप्रतिबन्ध (obstructed) एवं अप्रतिबन्ध (unobstructed) स्वअर्जित और पैतृक□में विभक्तिकरण मुस्लिम विधि के लिए समान रूप से विदेशी/अजनबी हैं जो कुछ संपत्ति (चाहे अपने पूर्वजों से अथवा अन्य से) जो कोई भी विरासत में, पाता है, मुस्लिम विधि के अनुसार वह संपत्ति का संपूर्ण स्वामी होता है, चाहे वह व्यक्ति पुरुष हो या स्त्री।

3. मुस्लिम विधि में, जब तक व्यक्ति जीवित है, वह अपनी संपत्ति का संपूर्ण स्वामी रहता/रहती है, किसी अन्य (पुत्र सहित) को इसमें किसी भी तरह का कोई अधिकार प्रोद्भूत नहीं होता है। स्वामी के मृत्यु हो जाने पर ही एवं इससे पहले नहीं, उत्तराधिकारियों के विधिक अधिकार प्रोद्भूत होते हैं। इस प्रकार, उत्तराधिकार के उसके भावी अधिकार पर किसी भी रूप में विचार करता हुआ भावी उत्तराधिकारी का प्रश्न ही नहीं है।

4. 'संयुक्त,' 'अविभक्त' परिवार, 'सहदायिकी,' 'कर्ता' 'उत्तरजीवीता और 'बँटवारा', आदि भारतीय विधिक अवधारणाओं का इस्लाम की विधि में कोई स्थान नहीं है। साथ रहते पिता और उसका पुत्र 'संयुक्त परिवार' गठित नहीं करता है; पिता

अपनी संपत्ति का मालिक हैं अगर उसका कोई पुत्र है तो वह (अवयस्क होने पर भी) भी अपनी संपत्ति का स्वामी होता है। यही दशा भाइयों और साथ रहते अन्य व्यक्तियों की है।

5. शास्त्रीय भारतीय विधि के विपरीत, संपत्ति विरासत में पाने से महिलायें वर्जित नहीं है। केवल लिंग के आधार पर उत्तराधिकार से किसी महिला को अपवर्जित नहीं किया गया है। महिलाओं को देख-भाल के बदले संपति धारित करने अथवा भरण-पोषण पाने का ही नहीं बल्कि स्वतंत्र रूप से संपत्ति विरासत में पाने का अधिकार भी है। इसके अलावा, प्रत्येक महिला, जो संपत्ति विरासत में पाती है, पुरुषों की भाँति इसकी संपूर्ण स्वामिनी है, स्त्रीधन अथवा उसकी मृत्यु पर अन्य को वापस जाता महिला के 'सीमित एस्टेट' की अवधारणा है ही नहीं।

6. उत्तराधिकार की यही योजना लागू होती है भले ही मृतक पुरुष हो या स्त्री यह उत्तराधिकार की मुस्लिम विधि के प्रमुख लक्षणों में से एक है जो इसे उत्तराधिकार के आधुनिक हिन्दू विधि से सुभिन्न करता है।''

16. इसी प्रकार, नियम 84 में मोहम्मडन विधि का मुल्ला का सिद्वान्त देते हुए यह स्पष्टत: कथित किया गया है कि **''सौतेली संतानें सौतले माता-पिता से विरासत नहीं पाते हैं, न हीं सौतेले माता-पिता सौतेली संतान से विरासत पाते हैं।''**

17. सैयद अमीर अली द्वारा दी गयी मोहम्मडन विधि की अवधारणा पर चर्चा करना प्रासंगिक है:-

पति द्वारा पत्नी को अंतरणः

''मोहम्मडन विधि के अधीन, पत्नी पति के साथ व्यवहार करने हेतु सक्षम है; और परिणामस्वरुप, उसके मेहर के बदले अपनी किसी संपत्ति को पति द्वारा पत्नी को अंतरित करना वैध और प्रर्वतनीय है। यदि इस समय पति कर्जदार है, अथवा अन्य देनदारों की प्रेरणा पर उसके विरुद्ध निष्पादन जारी किया जा सकता है, सुपुर्दगी/समनुदेशन वैध होगा यदि उसे उसके अंश पर किसी कपटपूर्ण आशय का संज्ञान नहीं है कि हस्तांतरण ऐसे देनदारों को विलम्बित अथवा कपट वंचित करता था, अथवा उसके पास कोई अन्य संपत्ति नहीं थी जिससे कर्ज चुकाया जा सकता है।

18. पूर्वोक्त चर्चाओं की दृष्टि में, यह प्रतीत होता है कि अनुसूची A के आईटम सं॰ 1, 2 और 3 की संपत्तियों को प्रतिवादी सं॰ 1-3 द्वारा सिद्ध किया गया था। अनुसूची A-आईटम सं॰ 1 संपत्ति दिनांक 6.3.1964 को बीबी जैनाब द्वारा किसी आर्थर बरला से खरीदी गयी थी जिसे प्रदर्श A/2 चिन्हित किया गया है। आइटम सं॰ 2 दिनांक 27.2.1953 को उसकी पत्नी बीबी जैनाब के पक्ष में मो॰ याकूब द्वारा निष्पादित रजिस्टर्ड विक्रय विलेख है जिसे प्रदर्श A/3 चिन्हित किया गया है और दिनांक 10.2.1956 को बीबी जैनाब के पक्ष में मो॰ याकूब द्वारा निष्पादित एक अन्य रजिस्टर्ड विक्रय विलेख को प्रदर्श A/4 चिन्हित किया गया है।

19. इसी प्रकार, अनुसूची B का आइटम सं॰ 3 रजिस्टर्ड विक्रय विलेख द्वारा बीबी जैनाब खातुन द्वारा अर्जित किया गया था और इस प्रकार मुस्लिम विधि के अनुसार, जैसी चर्चा ऊपर की गयी है। चूँकि किसी स्त्री के नाम में सारी संपत्तियाँ अनन्यत: उसीकी है और न्यूक्लियस की संयुक्तता की अवधारणा नहीं है अथवा किसी धारणा कि संपत्ति संयुक्त परिवार के मुखिया के संयुक्त न्यूक्लियस से खरीदी गयी थी, अत: अनुसूची-A आइटम सं॰ 1, 2 और 3 और अनुसूची B के आइटम सं॰ 3, जो बीबी जैनाब द्वारा अपने नाम में विक्रय विलेख द्वारा अनन्यत: खरीदी गयी थी, की सारी संपतियां केवल उसकी संतानों अर्थात् अपीलार्थीगण-प्रतिवादीगण सं॰ 1, 2 और 3 और उसकी तीन बहनों अर्थात् प्रतिवादीगण सं॰ 4-6 के बीच ही विभक्त की जाएँगी जैसा वादीगण के बीच तय किया गया है और जैसा प्रतिवादीगण द्वारा प्रस्तावित किया गया है। सभी तीनों भाईयों को संपतियों में से 2/10 अंश मिलेगा और वादी और उनकी तीन बहनों अर्थात् प्रतिवादीगण सं॰ 4, 6 और 7 संपतियों में 1/10 अंश पाएँगे, चूँकि, प्रतिवादीगण सं॰ 7-11, जिन्होंने वाद का प्रतिवाद नहीं किया था और कोई विनिर्दिष्ट प्रतिवाद भी नहीं किया है, वे केवल अनुसूची C आइटम सं॰ 12 की संपत्तियों में से 1/17 अंश पाएँगे।

20. विभाजन वाद सं॰ 164 वर्ष 1993/53 वर्ष 2000 में श्री अजित प्रसाद वर्मा, सब-जज-IX, राँची द्वारा पारित दिनांक 11.7.2000 का निर्णय और डिक्री (डिक्री दिनांक 22.7.2000 को हस्ताक्षरित) तद्नुसार परिवर्तित किया जाता है और वादी को वाद पत्र की अनुसूची A के आइटम सं॰ 1, 2 और 3 और वादपत्र की अनुसूची B के आइटम सं॰ 3 और वाद पत्र के अनुसूची C का आइटम सं॰ 12 में 1/10 अंश प्रदान किया जाता है और अंतिम डिक्री तैयार किए जाते समय सर्वे के जानकार प्लीडर कमिश्नर की नियुक्ति द्वारा पृथक तख्ता अलग काढ़ा जाएगा।

21. गवाहों पर चर्चा अपेक्षित नहीं है क्योंकि उपलब्ध संपतियों के संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को अपीलार्थी-प्रतिवादी सं॰ 1, 2 और 3 द्वारा और वादी-प्रतिवादी सं॰ 1 द्वारा भी स्वीकार किया गया है और केवल प्रतिवादी प्रत्यर्थीगण-प्रतिवादी सं॰ 7 से 11 ने ही वादी के मामला पर आपत्ति की है।

22. तद्नुसार, अपील अनुज्ञात की जाती है और अपीलार्थीगण का दावा कि अनुसूची A और B की संपतियाँ केवल बीबी जैनाब के पुत्रों और पुत्रियों के बीच ही बाँटी जा सकती है, स्वीकार और अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

अनन्त कुमार मिश्रा

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

W.P. (S) No. 616 of 2004. Decided on 21st April, 2010.

केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल अधिनियम, 1949—सी॰ आर॰ पी॰ एफ॰ नियमावली, 1955 के नियम 31 के साथ पठित धारा 10 (m)—ड्यूटी से अनाधिकृत अनुपस्थिति के लिए सी॰ आर॰ पी॰ एफ॰ से हटा दिया जाना–जाँच एक वरीय पदाधिकारी द्वारा संचालित की गई एवं न कि जाँच के किसी न्यायालय द्वारा–नियमावली एवं प्रक्रिया की अनभिज्ञता के कारण छुट्टी के उपरांत अनुपस्थिति जारी रहना–नियमावली में अधिकथित आज्ञापक प्रक्रिया के प्रतिकूल जाँच का संचालन–याची पर अधिरोपित दण्ड आरोप की गंभीरता एवं साथ-साथ जाँच पदाधिकारी द्वारा की गई अनुशंसा के भी अत्यधिक अननुपातिक–आक्षेपित आदेश अपास्त–अनुशासनिक प्राधिकारी को नई जांच संचालित करने का निर्देश दिया गया। (पैरा 11 से 14)

अधिवक्तागण.–M/s Saurav Arun, Abhishek Kumar and Pritish Kr. Lal, For the Petitioner Mr. Faiz-ur-Rahman, For the Respondent U.O.I.

आदेश

प्रत्यर्थी-भारत संघ के विद्वान अधिवक्ता प्रारम्भ में ही सूचित करते हैं कि दिनांक 20.3.2010 के आदेश में अन्तर्विष्ट निर्देशों के अनुपालन में उनके द्वारा 2000/- रुपये का व्यय जमा कर दिया गया है।

2. मामले के गुणावगुणों पर पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना।

3. याची, जो केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल में एक कॉन्स्टेबुल है, के विरुद्ध ड्यूटी से अनधिकृत अनुपस्थित रहने के कारण विभागीय कार्यवाही की गई थी। आरोप का स्पष्टीकरण देने के लिए उसे कारण पृच्छा नोटिस का तामीला कराया गया था। स्पष्टीकरण जो उसने रखा था कि वह यह था कि यद्यपि वह

15 दिनों के लिए छुट्टी पर चला गया था परंतु अपने अवकाश की अवधि के समाप्त होने पर ड्यूटी के लिए रिपोर्ट नहीं कर सका था क्योंकि जमशेदपुर के मेहरबाई टाटा मेमोरियल अस्पताल में उसकी माता के कैंसर का इलाज चल रहा था।

4. बाद में, जब उसने ड्यूटी के लिए रिपोर्ट किया, उसे गिरफ्तार कर लिया गया और हिरासत में ले लिया गया और 26.3.1999 को जमानत पर छोड़ा गया, जिसके उपरांत ड्यूटी से अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहने के आरोप पर विभागीय जाँच का सामना करने के लिए उसे निलम्बित कर दिया गया।

5. याची की व्यथा यह है कि अनुशासनिक प्राधिकारी ने याची की अनुपस्थिति के वास्तविक कारणों का मूल्यांकन किए बगैर और प्रस्तुत स्पष्टीकरणों को दिग्भ्रमित करने वाला मानते हुए, सेवा से बर्खास्त करने का आदेश पारित कर दिया है। याची का यह भी तर्क है कि यद्यपि विभागीय कार्यवाही में अभियोजन की ओर से कुल मिलाकर चार गवाहों को परीक्षित किया गया था और जाँच पदाधिकारी ने उक्त गवाहों के बयानों पर ही पूर्णत: भरोसा किया था परन्तु याची द्वारा दाखिल दस्तावेजों का सत्यापन करने और मूल्यांकन करने का कष्ट नहीं किया था जिनमें वे प्रमाण-पत्र शामिल थे, जो याची ने इस तर्क के समर्थन में पेश किए गए थे कि उसकी माता कैंसर से पीड़ित थी और यह कि सुसंगत अवधि के दौरान उसे देखभाल करनी पड़ी थी। विद्वान अधिवक्ता आगे यह भी तर्क रखते हैं कि अनधिकृत अनुपस्थिति/अभित्यजन के लिए केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल अधिनियम, 1949 की धारा 10(m) और सी० आर० पी० एफ० नियमावली, 1955 के नियम 31 दोनों के अधीन एक प्रक्रिया अधिकथित की गई है। विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि अधिनियम की धारा 10 (m) के अधीन बिना छुट्टी के अनुपस्थित रहने के लिए दण्ड का प्रावधान किया गया है और छुट्टी के बिना अनुपस्थिति के प्रभाव को एक कम गंभीर अपराध माना गया है जिसके लिए एक ऐसी अवधि के एक लघुतर कारावास के दण्ड का प्रावधान किया गया है जो एक वर्ष तक की हो सकती है या जुर्माने के साथ हो सकती है जो तीन महीनों तक का वेतन जितना हो सकता है और यह सेवा से बर्खास्तगी के दण्ड का प्रावधान नहीं करती है। इससे भी बढ़कर, अधिनियम के अधीन नियमावली के नियम 31 के अनुसार, अगर एक जाँच संचालित किया जाना ही है, तो जो अधिकथित प्रक्रिया है उसके अनुसार अभित्यजन/अनुपस्थिति या उल्लंघनकारी द्वारा छुट्टी में अधिक रह जाने के मामले की जाँच करने के लिए एक जाँच न्यायालय को गठित करना है या जिसमें कम-से-कम एक राजपत्रित पदाधिकारी एवं दो अन्य सदस्य सम्मिलित होने थे जो कमांडेंट से वरीय या उसके अधीनस्थ पदाधिकारी होंगे और जाँच के अनुक्रम में साक्ष्य अभिलिखित करने के उपरांत ही यथोचित दण्ड अधिरोपित किया जा सकता है। विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि वर्तमान मामले में, कोई उपयुक्त जाँच-न्यायालय गठित नहीं किया गया था क्योंकि जाँच-न्यायालय के एक सदस्य के तौर पर किसी राजपत्रित पदाधिकारी की नियुक्ति नहीं की गई थी। अन्त में यह निवेदन किया गया था कि अन्यथा भी, याची पर अधिरोपित दण्ड आरोप की गंभीरता का अनुपातिक नहीं है।

6. याची के आधारों का जवाब देते हुए, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि यह रिट आवेदन दाखिल करके इस न्यायालय के पास आने के बजाय याची को अपील दाखिल करना चाहिए था जिसका अधिनियम के प्रावधानों के अधीन प्रावधान किया गया है। याची के विद्वान अधिवक्ता जिरह करते हैं कि चूंकि जिस तरीके से जाँच संचालित की गई थी वह नियमावली के प्रावधानों के घोर उल्लंघन है और, आक्षेपित आदेश के प्रकटत: ही अनुचित होने के कारण यह न्यायालय आक्षेपित आदेश के साथ हस्तक्षेप करने और विधि के अनुसार यथोचित आदेश पारित करने के लिए अपनी असाधारण अधिकारिता का इस्तेमाल कर सकता है।

7. प्रत्यर्थी-भारत संघ के विद्वान अधिवक्ता सूचित करते हैं कि याची के तर्क के विपरीत, जाँच-न्यायालय राजपत्रित पदाधिकारी एवं अन्य सदस्यों की नियुक्ति करके विधिवत् गठित किया गया था, जिन्होंने नियमावली के अनुसार जाँच का संचालन किया था और अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों का विचार करने के उपरांत अपने निष्कर्ष अभिलिखित किए थे, यह घोषणा करते हुए कि याची के विरुद्ध आरोप सिद्ध होता है और आरोप की प्रकृति पर विचार करते हुए, सेवा से याची की बर्खास्तगी का आदेश उचित ही पारित किया गया था।

8. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और अभिलेख पर रखे दस्तावेजों का अवलोकन किया है।

9. जाँच रिपोर्ट (परिशिष्ट-2) के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि जाँच का संचालन एक वरीय पदाधिकारी द्वारा किया गया था और किसी जाँच-न्यायालय द्वारा नहीं जैसा कि अधिनियम के अधीन सी० आर० पी० एफ० नियमावली, 1955 के नियम 31 के अधीन प्रक्रिया में अधिकथित है। यह प्रतीत होता है कि याची के विरुद्ध दोष का अपना निष्कर्ष अभिलिखित करते हुए जाँच पदाधिकारी ने यह भी सम्परीक्षित किया है कि यद्यपि याची को प्रदत छुट्टी की अवधि से आगे जाकर उसे ड्यूटी से अनुपस्थित रहने का दोषी पाया गया है, उसकी ओर से किया गया ऐसा कार्य नियमों एवं प्रक्रिया से उसकी अनभिज्ञता के कारण था और इसलिए, जाँच पदाधिकारी ने याची पर अधिरोपित किया जाने वाले दण्ड के मामले में एक उदार दृष्टिकोण अपनाने की अनुशंसा की थी।

10. अनुशासनिक प्राधिकारी के आक्षेपित आदेश के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि याची के विरुद्ध एक गंभीर दृष्टिकोण लिया गया है यह समझकर कि याची के इस दावे के समर्थन में कि उसकी माता गंभीर रोगों से ग्रस्त थी, उसके द्वारा पेश किया गया प्रमाण-पत्र एक कूटरचित दस्तावेज था क्योंकि याची की अनुपस्थिति अवधि के तत्सम बनाने और जाँच पदाधिकारी को दिग्भ्रमित करने के लिए तिथि में उलटफेर किया गया है। अन्तिम तिथि को यह पहलु न्यायालय के ध्यान में लाए जाने पर प्रत्यर्थीगण को सम्बद्ध अस्पताल में अपेक्षित सूचना प्राप्त करने का निर्देश दिया गया था और सम्यक् सत्यापन के उपरांत यह अभिनिश्चित करने का निर्देश दिया गया था कि क्या याची की माता की बीमारी के लिए उस अवधि के दौरान इलाज चल रहा था जो कि याची द्वारा कथित और घोषित की गई है। प्रत्यर्थीगण द्वारा शपथ पर दाखिल कथनों से यह प्रतीत होता है कि यद्यपि उन्होंने इस संबंध में एक जाँच की है और सही पक्ष दोहराया है कि याची द्वारा पेश किया गया चिकित्सीय प्रमाण-पत्र याची की अनुपस्थिति की अवधि से मेल नहीं खाता और अतएव याची ने एक झूठा एवं कूटरचित प्रमाण-पत्र पेश करके दिग्भ्रमित किया है परन्तु प्रत्यर्थीगण इस तथ्य को भी स्वीकार करते हुए प्रतीत होते हैं कि याची की माता को अगस्त, 1996 में अस्पताल में भर्ती कराया गया था और फिर नवम्बर, 1996 में और उसका इसी बीमारी के लिए अभी तक इलाज चल रहा है। यह तथ्य कि वह अभी तक इलाज के अधीन है। परिशिष्ट-A एवं B से संपुष्ट होता है, जो याची की माता के चिकित्सीय इलाज से संबंधित चिकित्सीय संचिका की प्रतियाँ हैं।

11. तथ्यों की उपरोक्त परिचर्चाओं से यह प्रतीत होता है कि यद्यपि याची के विरुद्ध एक विभागीय जांच का संचालन किया गया था परन्तु, सी० आर० पी० एफ० नियमावली, 1955 के नियम 31 के निबंधनों में एक उपयुक्त जाँच न्यायालय का गठन नहीं किया गया था। इससे भी बढ़कर, यह भी प्रतीत होता है कि यद्यपि अनुशासनिक प्राधिकारी ने इस तथ्य को माना था कि याची की माता 1996 से ही कैंसर से पीड़ित थी और प्राय: उसे अस्पताल भर्ती कराया जाता था और बीमारी के अभी तक चिकित्सीय उपचार के अधीन है, अनुशासनिक प्राधिकारी ने यह निष्कर्ष निकाला था कि याची के विरुद्ध आरोप का स्तर गंभीर बन जाता है इस तथ्य के कारण कि याची ने एक ऐसा चिकित्सीय प्रमाण-पत्र प्रस्तुत किया है जो उसकी छुट्टी की अवधि से मेल नहीं खाता था और अपने इस दावे के समर्थन में उसने सुसंगत प्रमाण-पत्र प्रस्तुत नहीं किया है कि उक्त अवधि के दौरान उसकी माता की बीमारी के कारण वह अनुपस्थित रहा था।

12. मामले की इस दृष्टि में, यह प्रतीत होता है कि याची पर अधिरोपित दण्ड आरोप की गंभीरता के अत्यधिक अननुपाती है और स्वयं जाँच पदाधिकारी द्वारा की गई अनुशंसा के भी प्रतिकुल है।

13. उपरोक्त तथ्य वास्तव में इंगित करते हैं कि याची के विरुद्ध किये गए जाँच के संचालन का

तरीका नियमावली में अधिकथित आज्ञापक प्रक्रिया के विरुद्ध था और अतएव, ऐसी जाँच के निष्कर्षों पर अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश एवं निष्कर्षों को भी अनुचित मानना होगा।

14. तथ्यों एवं परिस्थितियों के आलोक में, मुझे समाधान है कि अनुशासनिक प्राधिकारी का आक्षेपित आदेश टिक नहीं सकता और यह एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। तथापि, नियमावली के अधीन यथा अधिकथित प्रक्रिया के अनुसार याची के विरुद्ध एक नई जाँच का संचालन करने और याची को सुनवाई के एक युक्तिसंगत अवसर देने के उपरांत एक यथोचित निर्णय लेने के लिए मामला अनुशासनिक प्राधिकारी को प्रतिप्रेषित किया जाता है।

15. प्रत्यर्थी भारत संघ के विद्वान अधिवक्ता को इस आदेश की एक प्रति दी जाय।

माननीय प्रशान्त कुमार, न्यायमूर्ति

श्रीमती केवली देवी एवं अन्य

बनाम

श्रीमती सुमति देवी एवं अन्य

Civil Revision No. 58 of 2005. Decided on 19th May, 2010.

सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115(1) के अधीन एक आवेदन के मामले में।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश XXI, नियम 32 सह-पठित धारा 94—निष्पादन मामले की खारिजी–निष्पादन आवेदन में की गई प्रार्थना डिक्री से आगे–निष्पादन न्यायालय डिक्री से आगे नहीं जा सकता–अगर वाद सम्पत्ति का कब्जा प्रदान करने का प्रतिवादी-निर्णीत ऋणी को निर्देश देने वाला कोई डिक्री नहीं है तो निष्पादन न्यायालय को निर्णीत-ऋणी के विरुद्ध बेदखली का कोई आदेश पारित करने की कोई शक्ति नहीं है–पुनरीक्षण आवेदन खारिज।
(पैरा 6 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. V. Shivnath, For the Petitioners; Mr. R.N. Sahay, For the Opp. Parties.

प्रशान्त कुमार, न्यायमूर्ति–निष्पादन केस सं॰ 17 वर्ष 2000/निष्पादन केस सं॰ 09 वर्ष 2002 में 5वें सब-जज, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 17.5.2005 के आदेश के विरुद्ध यह सिविल पुनरीक्षण निर्दिष्ट है, जिसके द्वारा एवं जिसके अधीन निष्पादन इस सम्परीक्षण के साथ खारिज कर दिया गया है कि अगर डिक्री धारक की ऐसी इच्छा हो, वह व्ययों की वसूली के लिए एक नया निष्पादन दाखिल कर सकता है।

2. यह प्रतीत होता है कि याचीगण/डिक्री धारकों ने अभिधान वाद सं॰ 79 वर्ष 1992 में पारित डिक्री के निष्पादन के लिए एक आवेदन दाखिल किया था उसमें वाद-सम्पत्तियों से निर्णीत-ऋणी को बेदखल करने और उन्हें इसका खास कब्जा देने की प्रार्थना करते हुए। यह प्रतीत होता है कि उक्त आवेदन निष्पादन केस सं॰ 17 वर्ष 2000 के तौर पर संस्थित किया गया था। उक्त निष्पादन मामले के लम्बित रहने के दौरान सि॰ प्र॰ सं॰ की धारा 151 के साथ पठित धारा 94 के अधीन एक अन्य आवेदन दाखिल किया गया था, उसमें यह कथन करते हुए कि निर्णित-ऋणी डिक्री-धारकों के अधिकार, अभिधान एवं हित के साथ हस्तक्षेप कर रहे हैं और वाद-भूमि पर धान की कृषि, बोआई एवं प्रत्यारोपण करने से उन्हें रोक रहे हैं। तद्नुसार, यह प्रार्थना की जाती है कि निर्णित-ऋणी के विरुद्ध यथोचित आदेश पारित किया जाय ताकि न्यायालय द्वारा पारित डिक्री का पूर्णरूपेण क्रियान्वयन किया जा सके।

3. यह भी प्रतीत होता है कि सि॰ प्र॰ सं॰ के आदेश XXI, नियम 32 के अधीन 19.9.2003 को एक अन्य आवेदन दाखिल किया गया था उसमें यह कथन करते हुए कि निर्णीत-ऋणी वाद-भूमि के उपर उनके अधिकार, अभिधान एवं हित के साथ हस्तक्षेप कर रहे थे और उन्हें धान की फसल की खेती एवं

बुआई करने नहीं दे रहे थे। अतएव निर्णीत-ऋणी की सम्पत्तियों को कुर्क कर दिया जाए और उन्हें सिविल कारावास भेज दिया जाय। विद्वान अवर न्यायालय ने पाया कि डिक्री अभिधान की घोषणा, कब्जे की संपुष्टि और स्थायी व्यादेश के लिए थी। इस प्रकार वर्तमान निष्पादन कार्यवाही में निर्णीत-ऋणी को वाद-सम्पत्तियों से बेदखल नहीं किया जा सकता, क्योंकि कब्जे की संपुष्टि के लिए वाद-सम्पत्तियों के उपर डिक्री-धारक का कब्जा होना होता है। अवर न्यायालय ने यह भी पाया कि सि॰ प्र॰ सं॰ की धारा 94 और आदेश XXI, नियम 32 के अधीन आवेदन पोषणीय नहीं है। तद्नुसार, निष्पादन मामला आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है।

4. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि आक्षेपित आदेश विधि में दोषपूर्ण है क्योंकि निर्णीत-ऋणी वर्तमान कार्यवाही में उपस्थित नहीं हुए थे और प्रतिवाद नहीं किया था। यह भी निवेदन किया गया है कि कब्जे के प्रदाय का रिट निर्गत करने से इन्कार करके विद्वान अवर न्यायालय ने इसके अधिकारिता का इस्तेमाल किया है जो इसमें निहित नहीं है। यह भी निवेदन किया गया है कि आक्षेपित आदेश दूषित है क्योंकि यह सुनिश्चित करना न्यायालय का दायित्व है कि स्थायी व्यादेश की डिक्री का निर्णीत-ऋणी द्वारा अनिवार्यत: अनुपालन किया जाय। यह निवेदन किया गया है कि अगर डिक्री धारक ने न्यायालय के ध्यान में कुछ तथ्य लाए हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि निर्णीत-ऋणी स्थायी व्यादेश के आदेश का उल्लंघन कर रहा है, तब न्यायालय निर्णीत-ऋणी के विरुद्ध सभी बाध्यकारी उपाय करने के लिए कर्त्तव्यबद्ध है। तदनुसार, यह निवेदन किया गया है कि आक्षेपित आदेश का इस पुनरीक्षण में पोषण नहीं किया जा सकता।

5. निवेदन को सुनकर, मैंने मामले के अभिलेख का अवलोकन किया है। जैसा कि ऊपर नोटिस किया गया है, याची/डिक्रीधारक ने निम्नांकित अनुतोषों के लिए एक वाद दाखिल किया था:—

(i) अनुसूची 'A' के उपर रैयतों के तौर पर अभिधान की घोषणा।

(ii) अनुसूची 'A' पर कब्जे की संपुष्टि या विकल्प में अगर वाद के लम्बित रहने के दौरान वादीगण को कब्जे से वंचित कर दिया जाए तब वाद भूमि से प्रतिवादीगण को बेदखल करके कब्जे की पुनःप्राप्ति हेतु एक डिक्री पारित की जाए।

(iii) दिनांक 20.11.1987 के आदेश द्वारा विलोपित।

(iv) प्रतिवादी सं० 1 से 4 और उनके आदमियों को वाद-भूमि पर आने से रोकने वाला या वादीगण के कब्जे के साथ हस्तक्षेप से रोकने वाला स्थायी व्यादेश।

(v) वाद का व्यय।

(vi) कोई अन्य या अतिरिक्त अनुतोष जिसे वादीगण पाने का अधिकारी पाया जाए।

पूर्वोक्त अभिधान वाद व्यय के साथ प्रतिवाद पर डिक्री किया गया। वाद भूमि के ऊपर वादीगण के अधिकार एवं अभिधान घोषित किया गया और इसपर उनके कब्जे को संपुष्ट किया गया। प्रतिवादी सं॰ 1 से 4 को वाद-भूमि पर जाने और वादीगण के कब्जे के साथ हस्तक्षेप करने से भी स्थायी रूप से निर्बंधित कर दिया गया।

6. इस प्रकार, अभिधान वाद में दावा किया गया अनुतोष के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि याची/डिक्री धाराक ने वाद-पत्र की अनुसूची-'A' में वर्णित वाद-भूमि एवं अभिधान की घोषणा एवं कब्जे की संपुष्टि के लिए प्रार्थना की थी। विद्वान 5वें सब-जज, हजारीबाग इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि याचीगण/डिक्रीधारकों का जमीन पर कब्जा है, अतएव उन्होंने याची/डिक्री धारक द्वारा यथा प्रार्थित उक्त कब्जे को संपुष्ट कर दिया, परन्तु आश्चर्यजनक रूप से वर्तमान मामले में याची/डिक्री धारक ने प्रार्थना की कि निर्णीत-ऋणी को वाद-पत्र की अनुसूची-'A' में उल्लिखित वाद-सम्पत्ति में बेदखल किया जाय

और तत्पश्चात उन्हें इसका खास कब्जा प्रदान कर दिया जाए। यह सुस्थापित है कि निष्पादन न्यायालय डिक्री से आगे नहीं जा सकता। अगर वाद-सम्पत्ति के कब्जे का प्रदाय लेने का प्रतिवादी/निर्णित-ऋणी को निर्देश देने वाली कोई डिक्री नहीं है, निष्पादन न्यायालय में निर्णित-ऋणी के विरुद्ध निष्कासन का कोई आदेश पारित करने की कोई शक्ति नहीं है। इस प्रकार, मैं पाता हूँ कि विद्वान अवर न्यायालय उचित ही इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि निष्पादन आवेदन में की गई प्रार्थना डिक्री से आगे जाकर है, अतएव यह इस मामले में प्रदान नहीं किया जा सकता। मैं अवर न्यायालय के पूर्वोक्त निष्कर्ष में कोई अवैधानिकता नहीं पाता हूँ।

7. यह प्रतीत होता है कि पूर्वोक्त निष्पादन मामले में याची/डिक्री धारक द्वारा दो अन्तर्वर्ती आवेदन दाखिल किए गए थे। मेरे विचार में, अगर मूल आवेदन को अपोषणीय बताते हुए खारिज कर दिया जाता है। तब उस स्थिति में मूल मामले में दाखिल अन्तर्वर्ती आवेदनों को भी खारिज किया जाना तय है। इससे भी बढ़कर, पूर्वोक्त अन्तर्वर्ती आवेदनों के परिशीलन से मैं पाता हूँ कि याची/डिक्री धारक ने अभिकथित किया था कि निर्णीत-ऋणी 26.7.2000 से वाद-भूमि पर उनके कब्जे के साथ हस्तक्षेप कर रहे थे और उन्हें धान की कृषि, बुआई या प्रत्यारोपण करने नहीं दे रहे थे। पूर्वोक्त अभिकथन अस्पष्ट प्रतीत होता है। यह उल्लेख करने योग्य है कि डिक्री में केवल प्रतिवादी सं॰ 1 से 4 के वाद-भूमि पर जाने और याचीगण/डिक्री धारकों के कब्जे के साथ छेड़छाड़ करने से रोका गया था। परन्तु पूर्वोक्त दोनों आवेदनों से याचीगण ने विनिर्दिष्ट रूप से इस संबंध में कुछ नहीं कहा है कि कौन से प्रतिवादियों ने वाद-भूमि पर उनके कब्जे के साथ छेड़-छाड़ किया था और धान की खेती करने, बुआई करने से उन्हें रोका था। यह उल्लेख करने योग्य है कि निष्पादन मामले में कुल मिलाकर 10 व्यक्तियों को प्रतिवादीगण/निर्णित-ऋणी के तौर पर दर्शाया गया है। इस प्रकार, विशिष्ट निर्णीत-ऋणी के विरुद्ध किसी विनिर्दिष्ट अभिकथन की अनुपस्थिति में उनकी सम्पत्तियां कुर्क नहीं की जा सकती न ही उन्हें सिविल कारावास में भेजा जा सकता है। इस बिन्दु पर भी पूर्वोक्त दोनों आवेदन पोषणीय नहीं है, अतएव, विद्वान अवर न्यायालय द्वारा उचित रूप से खारिज कर दिए गए थे।

8. परिणामत:, मैं इस सिविल पुनरीक्षण में कोई गुण नहीं पाता हूँ, यह तदनुसार खारिज किया जाता है।

माननीय प्रशान्त कुमार, न्यायमूर्ति

रमेश चन्द्र अरोड़ा (छाबरा)

बनाम

मुरलीधर कप्सिम एवं अन्य

Civil Revision No. 69 of 2007. Decided on 17th May, 2010.

बिहार भवन (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982 की धारा 14 (8) के अधीन एक आवेदन के मामले में।

(क) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—धारा 105—यदि अंतिम डिक्री के विरुद्ध अपील दाखिल की जाती है, तब अवैधता के आधार पर किसी आदेश को चुनौती देने के लिए अपीलार्थी को छूट होगी–विचारण के दौरान पारित कोई अंतर्वर्ती आदेश अंतिम आदेश के साथ सम्मिलित हो जाएगा, यदि अंतिम आदेश पारित करने के पहले पृथक रूप से अपील अथवा पुनरीक्षण में उक्त अंतर्वर्ती आदेश को चुनौती नहीं दी गयी है। (पैरा 15)

(ख) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश XXII, नियम 4 (4)—प्रतिस्थापन से छूट–उप-नियम (4) द्वारा आच्छादित मामलों में मृतक-प्रतिवादी के विरुद्ध वाद उपशमनित नहीं

होगा–न्यायालय मृत व्यक्ति के विरुद्ध भी निर्णय दे सकती है–इस निर्णय का वैसा ही प्रभाव होगा मानो वह उसके जीवन काल में पारित किया गया था। (पैरा 16)

(ग) हिन्दु विधि–पारिवारिक व्यवस्थापन–जब एक बार उपहार विलेख निष्पादित और रजिस्टर्ड किया जाता है, आदाता उपहार में दी गई संपत्ति का पूर्ण स्वामी बन जाएगा–वादीगण का प्रतिवाद कि यह पारिवारिक व्यवस्थापन है, स्वीकार नहीं किया जा सकता है।(पैरा 21)

(घ) अभिधृति विधि–बेदखली–बेदखली का मामला विनिश्चित करने के लिए पश्चातवर्ती घटनाओं को विचार में लिया जा सकता है–वाद संपत्ति में अस्पष्टता के आधार पर बेदखली डिक्री पारित नहीं की जा सकती है। (पैरा 22 एवं 23)

निर्णयज विधि.–2000 (3) PLJR 675—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. V. Shivnath, Mr. D. C. Ghosh, For the Petitioner; Mr. Manjul Prasad, For the Opp. Parties.

प्रशान्त कुमार, न्यायमूर्ति.–यह सिविल पुनरीक्षण बेदखली वाद सं० 8 वर्ष 1995 में सब-जज-II, कोडरमा द्वारा पारित क्रमश: दिनांक 14.9.2007 और 27.9.2007 के निर्णय एवं डिक्री के विरुद्ध दाखिल किया गया है जिसके द्वारा एवं जिसके अधीन याची और प्रोफॉर्मा विपक्षी पक्षकारों के विरुद्ध वाद डिक्री किया गया है।

2. मूल वादी श्रीमती शकुंतला देवी वाद परिसर जिसका विवरण वाद पत्र के अनुसूची-A में दिया गया है की स्वामिनी/भूस्वामिनी थी। आगे कथन किया गया है कि वर्ष 1971 में 221/-रुपया मासिक किराया पर वाद परिसर याची को पट्टे पर दिया गया था। आगे कथन किया गया है कि अभिधृति के सृजन के समय मूल याची का पति जीवित था और किराया रसीद जारी किया करता था और मूल वादी की ओर से याची से किराया संग्रह किया करता था। मूलवादी का आगे मामला यह है कि याची और प्रोफॉर्मा विपक्षी पक्षकारगण संयुक्त पारिवारिक संपत्ति के सदस्य हैं और वाद परिसर में छाबरा स्वीट हाऊस के नाम एवं शैली में संयुक्त पारिवारिक व्यवसाय चला रहे है। आगे कथन किया गया है कि मूलवादी की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र सत्यनारायण प्रसाद अभिधृति के प्रसंगों की देखभाल कर रहा था और वह मूल वादी की ओर से प्रतिवादी से किराया संग्रह किया करता था और किराया रसीद जारी किया करता था। आगे कथन किया गया है कि वर्ष 1973 से उसे किराया रसीद प्रोफॉर्मा विपक्षी पक्षकार सुरेन्द्र सिंह छाबरा के नाम में जारी की जाती थी जबकि दिनांक 20.6.1980 से किराया रसीद प्रोफॉर्मा विपक्षी पक्षकार अशोक कुमार छाबड़ा के नाम में जारी की जाती थी।

3. मूल वादी शकुन्तला देवी का आगे मामला यह है कि उसके चार पुत्र अर्थात् सत्यनारायण प्रसाद, मुरलीधर प्रसाद, मनोहर प्रसाद और गौरीशंकर प्रसाद थे। आगे कथन किया गया है कि राकेश कुमार कप्सिम सत्यनारायण प्रसाद का पुत्र है, विशाल कुमार मनोहर प्रसाद का पुत्र है और भवेश कुमार और विकास कुमार मुरलीधर प्रसाद के पुत्र हैं। आगे कथन किया गया है कि मूलवादी के पूर्वोक्त पौत्र शिक्षित, वयस्क और बेरोजगार है जो निष्क्रिय बैठे हुए है। कथन किया गया है कि मूलवादी के पूर्वोक्त चार पौत्र क्रमश: दवा दुकान, किराना दुकान, हार्डवेयर दुकान और खुदरा वस्त्र दुकान शुरू करना चाहते थे। आगे कथन किया गया है कि वाद परिसर शहर के बीचो-बीच राँची-पटना रोड पर स्थित है। अत: पूर्वोक्त दुकानों को खोलने के लिए यह सर्वाधिक उपयुक्त है। तद्नुसार, अपनी व्यक्तिगत आवश्यकता हेतु मूलवादी ने याची और प्रोफॉर्मा विपक्षी पक्षकारों को दुकान खाली करने को कहा। यह कथन किया गया है कि जब याची एवं अन्य प्रोफॉर्मा विपक्षी पक्षकारों ने इसे खाली करने से इंकार कर दिया, वाद परिसर को खाली कराने के लिए उन पर वकील की नोटिस तामील की गयी थी किन्तु इसके बावजूद याची और प्रोफॉर्मा विपक्षी पक्षकारों ने उसकी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया और इसलिए याची और प्रोफॉर्मा विपक्षी पक्षकारों की बेदखली के लिए वर्तमान वाद दाखिल किया गया है।

4. यह प्रतीत होता है कि वर्तमान वाद के लंबित रहने के दौरान मूल वादी ने रजिस्टर्ड उपहार विलेख निष्पादित करके वाद परिसर का कुछ अंश श्रीमती आशा देवी, पत्नी सत्यनारायण प्रसाद श्रीमती सुषमा देवी, पत्नी गौरी शंकर प्रसाद और श्रीमती पुष्पा देवी, पत्नी मनोहर प्रसाद को अंतरित कर दिया। उक्त घटना की दृष्टि में, वाद पत्र संशोधित किया गया है और मूलवादी की पूर्वोक्त तीन बहुओं को क्रमश: वादी सं॰ 2, 3 और 4 के रूप में वाद में पक्ष बनाया गया है। आगे प्रतीत होता है कि वाद पत्र के पैराग्राफ सं॰ 8 में संशोधन द्वारा यह भी कहा गया है कि पूर्वोक्त उपहार विलेख मूल वादी की मृत्यु के बाद परिवार के सदस्यों के बीच जटिलता से बचने के लिए किया गया असल में पारिवारिक व्यवस्थापन है। यह कथन भी किया गया है कि मूल वाद पत्र में उल्लेखानुसार वादी की निजी आवश्यकता नए जोड़े गए वादीगण की भी है क्योंकि उनके पुत्रों के लिए बेदखली का दावा किया गया है।

5. यह प्रकट करता है कि याची और प्रोफॉर्मा विपक्षी पक्षकारों को समन जारी किए गए थे किन्तु नोटिस प्राप्त करने के बाद केवल याची न्यायालय में उपस्थित हुआ और लिखित कथन दाखिल करके वाद का प्रतिवाद किया। अत: प्रोफॉर्मा विपक्षी पक्षकारों के विरुद्ध वाद एकपक्षीय रूप से चला।

6. याची ने अपने लिखित कथन में स्वीकार किया कि मूल वादी वाद परिसर की स्वामिनी/भूस्वामिनी थी। वह आगे स्वीकार करता है कि वह वाद परिसर का अभिधारी है और अपने भाइयों अर्थात् सुरेन्द्र सिंह छाबरा, अशोक कुमार छाबरा और प्रदीप छाबरा के पिता कृष्ण लाल छाबरा और सतीश छाबरा के साथ संयुक्त रूप से वाद परिसर की अभिधृति धारित करता है। आगे स्वीकार किया गया है कि याची मेसर्स छाबरा स्वीट हाऊस के नाम और शैली में वाद परिसर में संयुक्त पारिवारिक व्यवसाय चला रहा है। आगे यह कहा गया है कि वाद दाखिल करते समय कारोबार परिसर का नाम मेसर्स छाबरा स्वीट्स हाउस के तौर पर परिवर्तित कर दिया और प्रदीप कुमार छाबरा का नाम विक्रय कर विभाग में स्वत्वधारी के तौर पर दर्ज किया गया। आगे कथन किया गया है कि वादीगण-विरोधी पक्षकारों द्वारा प्रदीप कुमार छाबरा को वाद परिसर के अभिधारी के रूप में मान्यता दी गयी है जो मूलवादी द्वारा याची और प्रोफार्मा विपक्षी पक्षकारों के विरुद्ध जारी नोटिस से प्रकट होगा। यह कथन किया गया है कि प्रदीप कुमार छाबरा और सतीश छाबरा आवश्यक पक्ष हैं किन्तु वादीगण ने उन्हें प्रतिवादीगण के रूप में पक्ष नहीं बनाया है, अत: वाद आवश्यक पक्षों के कुसंयोजन के लिए दोषपूर्ण है। याची का आगे मामला यह है कि वाद दाखिल करने के समय मूलवादी के तीन पौत्र अर्थात् राकेश कुमार कप्सिम, भवेश कुमार और विकास कुमार बेकार नहीं बैठे थे क्योंकि उनके पास रोजगार था। यह कथन किया गया है कि राकेश कुमार कप्सिम आर॰ के॰ सत्तू के नाम और शैली में सत्तू का व्यवसाय कर रहा था जबकि भवेश कुमार और विकास कुमार मसाला और आटा चक्की का व्यवसाय कर रहे थे। आगे कथन किया गया है कि मूल वादी का एक अन्य पौत्र अर्थात् विशाल कुमार वाद दाखिल किए जाते समय अवयस्क था और स्थानीय महाविद्यालय का छात्र था। अत: निवेदन किया गया है कि वादीगण साफ-सुथरे ढंग से न्यायालय के समक्ष नहीं आए हैं और तात्विक तथ्यों को न्यायालय से छुपाया है, अत: निजी आवश्यकता के आधार पर वाद परिसर की जरूरत युक्तियुक्त और सद्भावपूर्व नहीं है। याची द्वारा यह कथन भी किया गया है कि वाद के लंबित रहने के दौरान, वाद परिसर वादी सं॰ 2, 3 और 4 को अंतरित कर दिया गया था, अत: उस तिथि से मूल वादी सहित वाद परिसर के चार स्वामी थे। यह कथन किया गया है कि स्वामित्व के परिवर्तन के बाद वाद पत्र की अनुसूची-A संशोधित नहीं की गयी है। आगे कथन किया गया है कि वाद परिसर के स्वामित्व के परिवर्तन के बाद, मूल वाद हेतुक गायब हो गया, अत: वर्तमान वाद पूर्व बाद हेतुक और वाद परिसर के अस्पष्ट वर्णन के आधार पर जारी नहीं रह सकता है। तद्नुसार कथन किया गया है कि वाद खारिज करने योग्य है।

7. यह प्रतीत होता है कि पक्षों के परस्पर विरोधी अभिवाकों पर विचार करने के बाद विद्वान अवर न्यायालय ने विनिश्चय के लिए निम्नलिखित विवाद्यकों को विरचित किया था:-

"1. क्या अपने वर्तमान स्वरुप में वाद पोषणीय है?

2. क्या वाद के लिए वादीगण के पास वैध वाद हेतुक है?

3. क्या वादीगण को सद्भावपूर्वक अपनी निजी आवश्यकता हेतु वाद परिसर की जरूरत है?

4. क्या प्रतिवादीगण की अंशतः बेदखली वादीगण की जरूरतों को पूरा करेगी?

5. क्या दावा किए गए अनुतोष/अनुतोषों के लिए वादीगण हकदार है?

6. क्या आवश्यक पक्षों के कुसंयोजन के चलते वाद दोषपूर्ण है?

8. आगे प्रतीत होता है कि अपने मामलों के समर्थन में पक्षों ने मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य दिए हैं। आगे प्रतीत होता है कि पक्षों के अधिवक्ताओं को सुनने के बाद और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर विचार करने के बाद विद्वान अवर न्यायालय ने एकपक्षीय के तौर पर याची के विरुद्ध और प्रोफार्मा विपक्षी पक्षकारों के विरुद्ध भी प्रतिवाद पर वाद डिक्री किया।

9. अवर न्यायालय के आक्षेपित निर्णय का विरोध करते हुए विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री वी० शिवनाथ निवेदन करते हैं कि वाद के लंबित रहने के दौरान प्रतिवादी सं० 2 अर्थात् सुरेन्द्र सिंह छाबरा की मृत्यु हो गयी लेकिन उनके उत्तराधिकारियों को प्रतिस्थापित नहीं किया गया है। इस प्रकार, उसके विरुद्ध वाद उपशमनित हो गया किन्तु विद्वान अवर न्यायालय ने उसके विरुद्ध एकपक्षीय डिक्री पारित किया। यह निवेदन किया गया है कि मृत व्यक्ति के विरुद्ध डिक्री नास्ति है और इसलिए केवल इसी आधार पर आक्षेपित निर्णय और डिक्री को अपास्त किया जा सकता है। आगे निवेदन किया गया है कि विद्वान अवर न्यायालय इस निष्कर्ष पर आया है कि वाद दाखिल करते समय, पौत्रों में से एक अर्थात् राकेश कुमार बेरोजगार नहीं था और आर० के० सत्तू के नाम और शैली में सत्तू का व्यवसाय कर रहा था निवेदन किया गया है कि उस निष्कर्ष के बावजूद विद्वान अवर न्यायालय ने निष्कर्षित किया कि वादीगण-विरोधी पक्षकारों की जरूरत युक्तियुक्त और सद्भावपूर्व है। आगे निवेदन किया गया है कि याची ने यह दर्शाने के लिए प्रदर्श-A श्रृंखला दाखिल किया कि वाद के लंबित रहने के दौरान वाद परिसर के आसपास के कई दुकानों को वादीगण द्वारा विभिन्न व्यक्तियों को पट्टे पर दी गयी हैं जो दर्शाता है कि वादीगण के पास कोई सद्भावपूर्ण आवश्यकता नहीं थी। निवेदन किया गया है कि यदि वादीगण को सद्भावपूर्ण आवश्यकता थी और यदि मूल वादी के चारों पौत्र बेरोजगार हैं और वादीगण उन्हें किसी भी व्यवसाय में स्थापित करना चाहते हैं, तब उन्हें परिसर में व्यवसाय शुरू करना चाहिए था जो वर्तमान वाद के लंबित रहने के दौरान पट्टे पर दिए गए थे। निवेदन किया गया है कि पूर्वोक्त परिस्थितियाँ यह भी दर्शाती है कि वादीगण-विपक्षी पक्षकारों की जरूरत युक्तियुक्त और सद्भावपूर्ण नहीं है। निवेदन किया गया है कि पूर्वोक्त पहलू को विचार में लेने में विद्वान अवर न्यायालय विफल रहा और इस निष्कर्ष पर गलत आया कि वादीगण-विपक्षी पक्षकारों की जरूरत युक्तियुक्त और सद्भावपूर्ण है। आगे निवेदन किया गया है कि प्रदीप कुमार छाबरा, जो अभिधारी है और संयुक्त परिवारिक व्यावसाय का स्वामी है, को पक्ष नहीं बनाया गया है। उक्त प्रदीप कुमार छाबरा एक आवश्यक पक्ष है किन्तु उसे वाद में प्रतिवादी के रूप में पक्ष नहीं बनाया गया है। इस प्रकार, आवश्यक पक्ष के कुसंयोजन के चलते भी वाद दोषपूर्ण है।

10. दूसरी ओर, विपक्षी पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री मंजुल प्रसाद निवेदन करते है कि चूँकि सुरेन्द्र सिंह छाबरा ने लिखित कथन दाखिल करके वाद का प्रतिवाद नहीं किया है, अत: विद्वान अवर न्यायालय ने आदेश XXII, नियम 4 (4) के अधीन अंतर्विष्ट प्रावधानों के मुताबिक

उसके विधिक उत्तराधिकारियों को प्रतिस्थापित करने से वादीगण को सही छूट दिया है। वह आगे निवेदन करते हैं कि जब एकबार पूर्वोक्त छूट दी जा चुकी है, तब उसकी मृत्यु के बावजूद सुरेन्द्र सिंह छाबरा के विरुद्ध निर्णय पारित करने की छूट न्यायालय को है और उक्त निर्णय और डिक्री को वही बल है मानो इसे मृत्यु के पहले पारित किया गया हो। आगे निवेदन किया गया है कि बेदखली वाद में, वाद दाखिल किए जाने की तिथि पर वादीगण की युक्तियुक्तता और सद्भाव देखा जाना अपेक्षित है। पश्चातवर्ती घटना अर्थात् प्रदर्श-A श्रृंखला द्वारा सृजित विभिन्न अभिधृति को यह अभिनिर्धारित करने के लिए कि निजी आवश्यकता के आधार वाद परिसर की वादीगण की जरूरत सद्भावपूर्व नहीं है, विचार में नहीं लिया जा सकता है। निवेदन किया गया है कि विद्वान अवर न्यायालय इस निष्कर्ष पर सही आया कि निजी जरूरत के आधार पर वाद परिसर की वादीगण को आवश्यकता युक्तियुक्त और सद्भावपूर्व है। आगे निवेदन किया गया है कि मिठाई की दुकान खोलने के लिए करार निष्पादित करके याची को वाद परिसर पट्टे पर दिया गया है। निवेदन किया गया है कि वादीगण नहीं जानते हैं कि उक्त व्यवसाय करने के लिए याची द्वारा आंतरिक व्यवस्था की गयी थी। अत: वे सारे व्यक्ति, जो व्यावसाय करने के लिए याची की सहायता कर रहे हैं, आवश्यक पक्ष नहीं हैं। अत: यह प्रतिवाद कि प्रदीप कुमार छाबरा आवश्यक पक्ष है, ग्रहण नहीं किया जा सकता है। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि आवश्यक पक्ष के कुसंयोजन के चलते वाद दोषपूर्ण नहीं है।

11. वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन में पक्षों के अधिवक्ता को सुनने के बाद मैं पाता हूँ कि विनिश्चय के लिए निम्नलिखित बिन्दु उद्भूत हुए:-

(i) क्या आक्षेपित निर्णय और डिक्री आरंभ में ही नास्ति एवं शून्य है क्योंकि इसे मृत व्यक्ति के विरुद्ध पारित किया गया है?

(ii) क्या निजी जरूरत के आधार पर वाद परिसर की वादीगण की आवश्यकता युक्तियुक्त और सद्भावपूर्व है?

(ii) क्या प्रदीप कुमार छाबरा आवश्यक पक्ष है और क्या आवश्यक पक्ष के कुसंयोजन के लिए वाद दोषपूर्ण है क्योंकि उसको वाद में पक्ष नहीं बनाया गया है?

बिन्दु सं० (i).—क्या आक्षेपित निर्णय और डिक्री आरंभ से ही नास्ति एवं शून्य है क्योंकि इसे मृत व्यक्ति के विरुद्ध पारित किया गया है?

12. यह स्वीकृत स्थिति है कि प्रतिवादी सं० 2 सुरेन्द्र सिंह छाबरा ने लिखित कारण दाखिल करके वाद का प्रतिवाद नहीं किया है। दिनांक 12.8.2005 के आर्डर-शीट के परिशीलन से प्रतीत होता है कि यह प्रकट करते हुए याची ने अवर न्यायालय के समक्ष आवेदन दाखिल किया कि सुरेन्द्र सिंह छाबरा की मृत्यु दिनांक 19.9.2003 को हो गयी थी किन्तु उसके उत्तराधिकारियों को परिसीमा की अवधि के भीतर प्रतिस्थापित नहीं किया गया है और इसलिए आदेश XXII, नियम 4(3) के अधीन अंतर्विष्ट प्रावधानों के मुताबिक समस्त वाद उपशमनित हो जाता है। यह प्रकट करता है कि वादीगण-विपक्षी पक्षकार उपस्थित हुए और विद्वान अवर न्यायालय के समक्ष निवेदन किया कि चूँकि प्रतिवादी सं० 2 सुरेन्द्र सिंह छाबरा ने लिखित कथन दाखिल करके वाद का प्रतिवाद नहीं किया था, अत: आदेश XXII, नियम 4(4) के अधीन अंतर्विष्ट प्रावधान की दृष्टि में प्रतिवादी सं० 2 के विधिक उत्तराधिकारियों को प्रतिस्थापित करने से वादीगण को छूट दिया जा सकता है। यह प्रतीत होता है कि विद्वान अवर न्यायालय ने वादीगण विपक्षी पक्षकारों के अभिवाक् को स्वीकार किया और सुरेन्द्र सिंह छाबरा के विधिक प्रतिनिधियों का प्रतिस्थापित करने से उन्हें छूट दी।

13. श्री शिवनाथ द्वारा निवेदन किया गया है कि परिसीमा अधिनियम के अधीन विहित परिसीमा की अवधि के अवसान के बाद श्री सुरेन्द्र सिंह छाबरा के विरुद्ध वाद स्वत: उपशमनित हो जाएगा। निवेदन किया गया है कि वाद के उपशमनित होने के बाद, आदेश XXII, नियम 4(4) के अधीन अंतर्विष्ट प्रावधान लागू नहीं होते हैं। तब निवेदन किया गया है कि छूट की प्रार्थना, जैसा आदेश XXII, नियम 4 (4) के अधीन प्रावधानित किया गया है, उपशमन पूर्व किया जाना अपेक्षित है। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि दिनांक 12.8.2005 का आदेश गैर-कानूनी है और इसलिए इस न्यायालय द्वारा इसे संपोषित नहीं किया जा सकता है।

14. श्री मंजुल प्रसाद निवेदन करते हैं कि आदेश XXII, नियम 4 (4) के अधीन छूट की प्रार्थना निर्णय की उद्घोषणा के पहले किसी भी समय की जा सकती है और वाद के उपशमन के बाद भी न्यायालय द्वारा उक्त शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। आगे निवेदन किया गया है कि विद्वान अवर न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 12.8.2005 के आदेश को सिविल पुनरीक्षण दाखिल करके प्रतिवादी द्वारा चुनौती नहीं दी गयी है और इसलिए उक्त आदेश अंतिमता प्रकट करता है। वह निवेदन करते हैं कि इसकी शुद्धता को इस चरण पर चुनौती नहीं दी जा सकती है।

15. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 105 के मुताबिक यदि अंतिम डिक्री के विरुद्ध अपील दाखिल की जाती है, तब मामले के निर्णय को प्रभावित करने वाले अवैधता और अनियमितता के आधार पर किसी आदेश को चुनौती देने की छूट अपीलार्थी को है बशर्तें अपील के मेमोरेन्डम में वर्णित आधार आपत्ति के आधार के रूप में वर्णित किया गया हो। वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन में पैराग्राफ सं० 14 (B) पर याची ने विनिर्दिष्ट आधार लिया है कि वाद के लंबित रहने के दौरान, सुरेन्द्र सिंह छाबरा की मृत्यु हो गयी और उसके उत्तराधिकारियों को प्रतिस्थापित नहीं किया गया है, अतः डिक्री मृत व्यक्ति के विरुद्ध पारित की गयी है। अतः पूर्वोक्त आधारों पर याची ने डिक्री को चुनौती दी है। यह सुनिश्चित है कि विचारण के दौरान पारित कोई अंतर्वर्ती आदेश अंतिम आदेश में विलीन हो जाएगा, यदि अंतिम आदेश पारित किए जाने के पहले अपील अथवा पुनरीक्षण में उक्त अंतर्वर्ती आदेश को चुनौती नहीं दी गयी है। वर्तमान मामले में, यह स्वीकृत स्थिति है कि सिविल पुनरीक्षण एवं/या रिट आवेदन दाखिल करके याची द्वारा दिनांक 12.8.2005 के आदेश को चुनौती नहीं दी गयी है। अतः वर्तमान मामले में विलय का सिद्धान्त लागू होता है। अतः मैं पाता हूँ कि दिनांक 12.8.2005 का आदेश अंतिम निर्णय में विलीन हो गया है। अतः इसे वर्तमान पुनरीक्षण में चुनौती दी जा सकती है। तद्नुसार, मैं पाता हूँ कि श्री मंजुल प्रसाद द्वारा उठायी गयी आपत्ति कि दिनांक 12.8.2005 का आदेश अंतिम हो गया है और इसे इस चरण पर इसे चुनौती नहीं दी जा सकती है, भ्रामक है और इसलिए अस्वीकार किया जाता है।

16. अब, मैं यह विनिश्चिय करने की कार्यवाही करता हूँ कि क्या वाद के उपशमन के बाद प्रतिवादी के विधिक प्रतिनिधियों को प्रतिस्थापित करने से वादीगण को छूट देने की शक्ति न्यायालय को है। पूर्वोक्त प्रश्न माननीय पटना उच्च न्यायालय द्वारा 2000 (3) PLJR 675 में प्रकाशित निर्णय में पहले ही सुनिश्चित किया जा चुका है। उक्त निर्णय में आदेश XXII, नियम 4 (4) के अधीन अंतर्विष्ट प्रावधानों की व्याख्या करते हुए माननीय न्यायाधीशों ने अभिनिर्धारित किया:-

> *''उक्त प्रावधान हमें इस व्याख्या की ओर ले जाते हैं कि उपशमन के प्रभावशील हो जाने पर भी किसी चरण पर उसमें उल्लिखित शर्त की पूर्ति पर छूट की शक्ति का प्रयोग करना होगा। उप-नियम (4) उप-नियम (3) का अपवाद है और उप-नियम (4) द्वारा आच्छादित मामलों में मृतक प्रतिवादी के विरुद्ध वाद उपशमनित नहीं होगा और न्यायालय किसी मृत व्यक्ति के विरुद्ध भी निर्णय दे सकता है और इस निर्णय का वही प्रभाव होगा मानो यह उसके जीवनकाल में दिया गया हो। दूसरे शब्दों में, उप-नियम (4) उप-नियम (3) द्वारा नियंत्रित नहीं होता है, दूसरी ओर उप-नियम (4) द्वारा आच्छादित मामलों पर उप-नियम (3) लागू नहीं होता है, तद्द्वारा जिसका अर्थ है कि उस स्थिति में वाद मृतक प्रतिवादी के विरुद्ध उपशमनित माना नहीं जाएगा।''*

17. माननीय पटना उच्च न्यायालय की पूर्वोक्त खंडपीठ के निर्णय की दृष्टि में, श्री वी० शिवनाथ का प्रतिवाद निराधर है। वर्तमान मामले में, यह स्वीकृत स्थिति है कि प्रतिवादी सं० 2 अर्थात् सुरेन्द्र सिंह छाबरा ने लिखित कथन दाखिल करके वाद का प्रतिवाद नहीं किया था। यह भी निर्विवादित है कि विद्वान अवर न्यायालय के निर्देश के मुताबिक उस पर समन तामील किया गया था। इस प्रकार, आदेश XXII, नियम 4 (4) के अधीन प्रावधानों को लागू करने के लिए अपेक्षित शर्त की पूर्ति कर दी गयी है। अतः मैं पाता हूँ कि वादीगण/विपक्षी पक्षकारों के विद्वान अवर न्यायालय ने प्रतिवादी सं० 2 अर्थात् सुरेन्द्र सिंह

छाबरा के विधिक उत्तराधिकारियों को प्रतिस्थापित करने का उचित अधिकार दिया था। अत: प्रतिवादी सं० 2 के विरुद्ध पारित निर्णय का वही प्रभाव होगा मानो यह उसके जीवनकाल में पारित किया गया हो। अत: श्री वी० शिवनाथ का प्रतिवाद यह है कि आक्षेपित आदेश और डिक्री विधि की दृष्टि में आरंभ से ही नास्ति एवं शून्य है, स्वीकार नहीं किया जा सकता है। अत: बिन्दु सं० (i) याची के विरुद्ध विनिश्चित किया जाता है।

बिन्दु सं० (ii).—क्या निजी आवश्यकता के आधार पर वाद परिसर की वादीगण की जरूरत युक्तियुक्त और सद्‌भावपूर्व है?

18. मूल वादी ने कथन किया कि उसके पौत्र अर्थात् राकेश कुमार कप्सिम, भवेश कुमार, विकास कुमार और विशाल कुमार बेरोजगार हैं और बेकार बैठे हैं। आगे कथन किया गया है कि मूल वादी के पूर्वोक्त पौत्र क्रमश: अपना दवा दुकान, किराना दुकान, हार्डवेयर दुकान और खुदरा वस्त्र दुकान शुरू करना चाहते हैं। आगे कथन किया गया है कि वाद परिसर शहर के बीचों-बीच राँची-पटना रोड पर स्थित है और पूर्वोक्त व्यावसाय शुरू करने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। वादीगण को निजी जरूरत के लिए वाद परिसर की आवश्यकता है। कथन किया गया है कि मूल वादी ने याची और प्रोफॉर्मा विपक्षी पक्षकार को नोटिस दिया पर इसके बावजूद उन्होंने वाद परिसर खाली नहीं किया है। अत: वर्तमान वाद दाखिल किया गया है।

19. दूसरी ओर, याची-प्रतिवादी सं० 1 ने कथन किया कि अभिकथित निजी आवश्यकता के लिए वाद परिसर का वादीगण की आवश्यकता युक्तियुक्त एवं सद्‌भावपूर्व नहीं है। कथन किया गया है कि मूल वादी के पौत्र अर्थात् राकेश कुमार कप्सिम, भवेश कुमार, विकास कुमार वाद दाखिल किए जाते समय बेरोजगार नहीं थे। कथन किया गया है कि वाद दाखिल किए जाते समय राकेश कुमार कप्सिम आर० के० सत्तू के नाम एवं शैली में सत्तू का व्यवसाय कर रहा था जबकि भवेश कुमार और विकास कुमार मसाला और आटा चक्की का व्यवसाय कर रहे थे। आगे कथन किया गया है कि वाद दाखिल किए जाते समय मूल वादी का चौथा पौत्र अर्थात् विशाल कुमार अवयस्क था।

20. मैंने मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है। वर्तमान मामले में यद्यपि वादीगण और वादीगण के गवाहों ने कथन किया है कि राकेश कुमार कप्सिम, भवेश कुमार, विकास कुमार और विशाल कुमार बेरोजगार थे किन्तु प्रदर्श-B, प्रदर्श-G और प्रदर्श-H के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि राकेश कुमार कप्सिम आर० के० सत्तू के नाम और शैली में सत्तू मिल चला रहा था और इस उद्देश्य से उसने वजन एवं माप विभाग से लाइसेन्स सं० 2916 वर्ष 1982 भी प्राप्त किया था। स्वीकृत रूप से, मामला वर्ष 1995 में दाखिल किया गया था। अत: वाद दाखिल किए जाते समय राकेश कुमार कप्सिम बेरोजगार व्यक्ति नहीं था। जहाँ तक भवेश कुमार का संबंध है, वादीगण के सभी गवाहों को सुझाया गया था कि वह भवेश मसाला उद्योग के नाम एवं शैली में मसाला का व्यवसाय कर रहा है। प्रतिवादी की ओर से परीक्षित किए गए गवाहों ने भी इस तथ्य का समर्थन किया है कि इस तथ्य के संबंध में प्रति-परीक्षण नहीं किया गया है। प्रदर्श-L दर्शाता है कि भवेश मसाला उद्योग के नाम से स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, झुमरी तिलैया में चालू खाता भी खोला गया था। ये यह भी दर्शाता है कि भवेश कुमार भी व्यावसाय कर रहा था, अत: वह बेरोजगार नहीं था। प्रतिवादी गवाहों ने अपने अभिसाक्ष्य में कथन किया था कि विकास कुमार आटा और तेल मिलों का व्यावसाय कर रहा है। इस तथ्य का कथन अ० सा० 8 द्वारा पैराग्राफ सं० 31 पर भी किया गया है। उसने पक्के तौर पर कथन किया है कि विगत कई दिनों से विकास कुमार के पास आटा और तेल मिल है। अत: विकास कुमार भी बेरोजगार नहीं है। जहाँ तक विशाल कुमार का संबंध प्रदर्श-J दर्शाता है की उसकी जन्मतिथि 1.3.1978 है। अत: वाद दाखिल किए जाने की तिथि पर उसकी आयु 17 वर्ष थी। पूर्वोक्त परिस्थितियों के अधीन, वादीगण का बयान कि वाद दाखिल किए जाने की तिथि पर विशाल कुमार वयस्क था, सही नहीं है। अभिलेख पर उपलब्ध पूर्वोक्त साक्ष्य की दृष्टि में, मैं पाता हूँ कि वादी ने अपनी निजी आवश्यकता की युक्तियुक्तता के संबंध में सही तथ्य नहीं दिया था।

21. वादीगण द्वारा स्वीकार किया गया है कि वाद के लंबित रहने के दौरान, मूल वादी शकुन्तला देवी ने वाद संपत्ति अपनी तीन बहुओं अर्थात वादी सं॰ 2, 3 और 4 को उपहार में दे दिया था। उपहार दिए जाने के बाद वाद पत्र में एक संशोधन किया गया था जिसमें कथन किया गया है कि उपहार संपूर्ण नहीं है, बल्कि यह एक पारिवारिक व्यवस्था है और यह कथन भी किया गया है कि मूलवादी की तीनों बहुओं को बाद की बेदखली के लिए वही निजी आवश्यकता है जो मूलवादी को थी। मेरी दृष्टि में, जब एक बार उपहार विलेख रजिस्ट्रार के समक्ष निष्पादित और रजिस्टर्ड किया जाता है, आदाता उपहार में दी गयी संपत्ति का पूर्ण स्वामी बन जाता है और इसलिए वादीगण का कथन कि यह एक पारिवारिक व्यवस्था है, स्वीकार नहीं की जा सकती है। इसके अतिरिक्त, वादी गवाह सं॰ 3 सुषमा देवी ने पैराग्राफ-38 पर स्वीकार किया था कि उपहार विलेख के मुताबिक सभी आदाता उनको उपहार में दे दिए गए अंश के स्वामी बन गए हैं। इस प्रकार, सुषमा देवी का पूर्वोक्त बयान वादीगण के मामले का समर्थन नहीं करता है कि पूर्वोक्त उपहार विलेख असल में पारिवारिक व्यवस्था है।

22. यह उल्लिखित करना भी प्रासंगिक है कि मूल वादी शकुन्तला देवी के चार पुत्र थे अर्थात् सत्यनारायण प्रसाद, मुरलीधर प्रसाद, मनोहर प्रसाद कप्सिम और गौरीशंकर प्रसाद। यह उल्लिखित करना भी प्रासंगिक होगा कि वादी सं॰ 2, 3 और 4 क्रमशः सत्यनारायण प्रसाद, मनोहर प्रसाद और गौरीशंकर प्रसाद की पत्नियाँ हैं। यह उल्लेखनीय है कि विकास कुमार मुरलीधर प्रसाद का पुत्र है। कोई विनिर्दिष्ट अभिवाक् नहीं है कि विकास कुमार के उद्देश्य के लिए वादी सं॰ 2, 3 और 4 प्रतिवादीगण के निष्काषण की भी ईप्सा कर रहे थे। संशोधन के जरिए वादपत्र के पैराग्राफ सं॰ 8 पर वादी सं॰ 2, 3 एवं 4 ने कथन किया था कि चूँकि उनके पुत्रों को दुकान खोलने के लिए वाद परिसर की आवश्यकता थी, अतः उनकी निजी आवश्यकता एक ही है। चूँकि विकास कुमार वादी सं॰ 2, 3, 4 का पुत्र नहीं है, अतः यह सुरक्षापूर्वक अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि मूलवादी और वादी सं॰ 2, 3 और 4 की निजी जरूरत भिन्न है। उक्त परिस्थितियों के अधीन जब तक वाद परिसर का वर्णन, जैसा वाद पत्र के अनुसूची-'A' में उल्लिखित है, संशोधित नहीं किया जाता है, यह स्पष्ट नहीं है कि वादीगण में से कौन वाद संपत्ति के किस भाग से प्रतिवादीगण को बेदखल करना चाहता है। अतः मेरी दृष्टि में, वाद संपत्ति की अस्पष्टता के आधार पर बेदखली का डिक्री पारित करना संभव नहीं है।

23. यह विधि का सुनिश्चित सिद्धान्त है कि बेदखली का मामला विनिश्चित करने के लिए बाद की घटना को विचार में लिया जा सकता है। वर्तमान मामले में प्रदर्श A/5 दर्शाता है कि राकेश कुमार कप्सिम ने दवा की दुकान खोलने के लिए दिनांक 12.12.2005 को झुमरी तिलैया नगरपालिका (वार्ड सं॰ 7) के उपेन्द्र कुमार दयाल के पक्ष में दुकान पट्टा पर दिया। इस संबंध में यह उल्लिखित करना प्रासंगिक होगा कि वाद परिसर झुमरी तिलैया नगरपालिका के वार्ड सं॰ 7 में अवस्थित है। यह भी उल्लेखनीय है कि वादीगण ने अपने वादपत्र के पैराग्राफ 8 पर कथन किया है कि राकेश कुमार कप्सिम दवा की दुकान का व्यावसाय शुरू करना चाहता है। अतः यदि राकेश कुमार कप्सिम दवा दुकान का व्यावसाय शुरू करना चाहता है, उसे अपने द्वारा पट्टे पर दिए गए परिसर में दुकान खोलनी चाहिए थी क्योंकि पूर्वोक्त उपेन्द्र कुमार दयाल ने दवा दुकान खोलने के लिए उक्त परिसर लिया था। यह दर्शाता है कि वादीगण को वाद परिसर की जरूरत युक्तियुक्त और सद्भावपूर्व नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के अनेक निर्णायों द्वारा यह सुनिश्चित किया जा चुका है कि युक्तियुक्त आवश्यकता का विनिश्चय वस्तुपरक तरीके से किया जाना होगा न कि इच्छा मात्र के आधार पर। यदि भूस्वामी यह स्थापित करने में विफल रहता है कि वाद परिसर की उसकी जरुरत सद्भावपूर्ण है, उच्च न्यायालय द्वारा बेदखली डिक्री अपास्त किया जा सकता है।

24. मैं पाता हूँ कि मूल वादी ने सही तथ्य दबाया है कि वाद दाखिल किए जाते समय राकेश कुमार कप्सिम, भवेश कुमार और विकास कुमार अपना व्यावसाय कर रहे थे। उसने यह भी गलत कथन किया कि वाद दाखिल किए जाते समय विशाल कुमार वयस्क था। अतः निजी जरूरत की युक्तियुक्तता दर्शाता

वाद पत्र में दिया गया बयान सही नहीं है। अत: वादीगण की जरूरत सद्‌भावपूर्व नहीं है। बाद की घटनाएँ अर्थात् राकेश कुमार कप्सिम सहित वादीगण द्वारा विभिन्न व्यक्तियों को दुकानों को पट्टे पर देना, दर्शाती है कि वादी की निजी जरूरत जारी नहीं थी। उक्त परिस्थिति के अधीन मैं निष्कर्षित करता हूँ कि वादी की जरूरत सद्‌भावपूर्व और युक्तियुक्त नहीं है। तद्‌नुसार, मैं बिन्दु सं॰ (ii) याची के पक्ष में और वादीगण-विपक्षी पक्षकारों के विरुद्ध विनिश्चित करता हूँ।

बिन्दु सं॰ (iii).—क्या प्रदीप कुमार छाबरा आवश्यक पक्ष है और चूँकि उसे प्रतिवादी के रूप में पक्ष नहीं बनाया गया है, आवश्यक पक्ष के कुसंयोजन के लिहाज से वाद दोषपूर्ण है:

25. वादीगण ने कथन किया कि छाबरा स्वीट्स के नाम और शैली में प्रतिवादीगण का व्यावसाय उनका संयुक्त परिवारिक व्यावसाय है और वे वाद परिसर में व्यावसाय कर रहे हैं। प्रदर्श-5 के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि वाद परिसर को खाली करने की नोटिस प्रदीप कुमार छाबरा और सतीश कुमार छाबरा को भी दी गयी थी जो स्व॰ कृष्ण छाबरा (प्रतिवादी सं॰ 1 का भाई) के पुत्र है। प्रदर्श N, O, P श्रृंखला से आगे प्रतीत होता है कि प्रदीप कुमार छाबरा, छाबरा स्वीट्स का अनुज्ञप्तिधारी है। अत: प्रदर्श-5 से प्रतीत होता है कि वादीगण ने प्रदीप कुमार छाबरा और सतीश कुमार छाबरा को अभिधारी के रूप में मान्यता दी है, अत: वाद परिसर खाली करने के लिए उनको नोटिस दिया गया था किन्तु आश्चर्यजनक रूप से प्रदीप कुमार छाबरा और सतीश कुमार छाबरा को वाद में पक्ष नहीं बनाया गया था। उक्त परिस्थिति के अधीन मैं पाता हूँ कि आवश्यक पक्ष के कुसंयोजन के लिए वाद दोषपूर्ण है। तद्‌नुसार, बिन्दु सं॰ (iii) याची के पक्ष में और वादीगण-विपक्षी पक्षकारों के विरुद्ध विनिश्चित किया जाता है।

26. बिन्दु सं॰ 2 और 3 पर मेरे निष्कर्षों की दृष्टि में, मैं निष्कर्षित करता हूँ कि आक्षेपित निर्णय और डिक्री तात्विक अवैधता और अनियमितता से पीड़ित है और इसलिए इसे संपोषित नहीं किया जा सकता है।

27. परिणामस्वरुप, यह सिविल पुनरीक्षण अनुज्ञात किया जाता है। आक्षेपित निर्णय और डिक्री को अपास्त किया जाता है। मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में पक्षों को अपना व्यय स्वयं वहन करना होगा।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

बासुकीनाथ यादव

बनाम

लालधारी यादव एवं अन्य

W.P. (C) No. 3955 of 2009. Decided on 4th May, 2010.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश XLI नियम 27—अतिरिक्त साक्ष्य–आवेदन की अस्वीकृति–न्यायालय को इस बात का मूल्यांकन करना चाहिए था कि याची एवं साथ ही प्रत्यर्थीगण को जो पहली बार न्यायालय के समक्ष उपस्थित हो रहे हैं, अपने दस्तावेजों को प्रस्तुत करने की अनुमति दी जानी चाहिए थी जो कि रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख के रूप में है–तृतीय पक्षकारों को ऐसे दस्तावेजों को प्रस्तुत करने की अनुमति देकर मूल वादी पर कोई प्रतिकूल प्रभाव कारित नहीं होने जा रहा है–आक्षेपित आदेश अपास्त–याचिका अनुज्ञात। (पैरा 6 एवं 7)

निर्णयज विधि.–AIR 2008 SC 579—Distinguished.

अधिवक्तागण.–M/s Rajiv Ranjan, Manish Mishra, For the Petitioner; Mr. Atannu Banerjee, For the Respondent No.1; M/s Vishal Kumar Trivedi, Manoj Kumar Choubey, For the Respondent No.2; Mr. Pradip Modi, For the Respondents 3, 4 & 5.

आदेश

वर्तमान रिट याची ने अभिधान अपील सं॰ 18 वर्ष 2008 में विद्वान जिला न्यायाधीश, साहेबगंज द्वारा दिनांक 4 मई, 2009 को पारित एक आदेश के विरुद्ध भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन दाखिल की है, जिसके द्वारा अतिरिक्त साक्ष्य पेश करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XLI नियम 27 के तहत वर्तमान याची एवं साथ ही प्रत्यर्थी सं॰ 3, 4 एवं 5 द्वारा दाखिल आवेदन को खारिज कर दिया गया था एवं इसलिए वर्तमान याची ने यह रिट याचिका दाखिल की है।

2. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि प्रत्यर्थी सं॰ 1 मूल वादी है जिसने दिनांक 11 नवम्बर, 2003 के विक्रय के एक अरजिस्ट्रीकृत करार के विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए अभिधान वाद सं॰ 3 वर्ष 2005 संस्थित की है। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि यद्यपि याची दिनांक 6 जून, 2005 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख द्वारा प्रश्नगत सम्पत्ति का मालिक बन गया है फिर भी याची को एक पक्षकार प्रतिवादी के तौर पर शामिल नहीं किया गया था। अंततः वाद को दिनांक 30 जुलाई, 2008 के आदेश के माध्यम से डिक्री किया गया था एवं इसलिए अन्य व्यक्तियों के साथ वर्तमान याची ने जो रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख के माध्यम से प्रश्नगत सम्पत्ति का स्वामी भी है एवं साथ ही मूल प्रतिवादी ने अभिधान अपील सं॰ 18 वर्ष 2008 दाखिल की है। इस प्रकार याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रखरता से निवेदन किया गया है याची को कभी भी एक पक्षकार प्रतिवादी के तौर पर शामिल नहीं किया गया था यद्यपि वह दिनांक 6 जून, 2005 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख द्वारा मालिक बन गया था। इसी प्रकार प्रत्यर्थी सं॰ 3, 4 एवं 5 भी दिनांक 3 जुलाई, 1995 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख द्वारा मालिक बन गये हैं, उनलोगों को भी पक्षकार प्रतिवादी के तौर पर शामिल नहीं किया गया था एवं इसलिए वर्तमान याची एवं साथ ही प्रत्यर्थी सं॰ 3, 4 एवं 5 तथा मूल वादी ने विद्वान जिला न्यायाधीश, साहेबगंज के समक्ष अभिधान अपील सं॰ 18 वर्ष 2008 दाखिल किया है और आवेदन सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XLI, नियम 27 के अधीन दाखिल किया गया था कि वे लोग अतिरिक्त साक्ष्य पेश करना चाहते हैं क्योंकि उन्हें विचारण न्यायालय के समक्ष पक्षकार नहीं बनाया गया था एवं रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेखों जिसके फलस्वरूप याची एवं साथ ही प्रत्यर्थी सं॰ 3, 4 एवं 5 प्रश्नगत सम्पत्ति के स्वामी बन गये हैं, को अपीलीय न्यायालय के समक्ष दस्तावेजों को पेश करने की अनुमति दी जानी चाहिए थी ताकि ये दस्तावेज पक्षों के बीच विवाद का सही निर्णय करने के लिए अपीलीय न्यायालय की सुकर बनाते। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे यह निवेदन किया गया है कि मूल प्रतिवादी ने अपने लिखित कथन के पैराग्राफ 5 में स्पष्टतः वर्णित किया है, कि अब वह प्रश्नगत सम्पत्ति का मालिक नहीं है एवं उसने सम्पत्ति बेच दी है। इस तथ्य के बावजूद, मूल वादी ने प्रश्नगत सम्पत्ति के क्रेताओं को प्रतिवादी के तौर पर शामिल करने पर ध्यान नहीं दिया। मूल प्रतिवादी द्वारा दाखिल लिखित कथन के उचित रूप से पठन के उपरान्त इन व्यक्तियों को प्रतिवादीगण के तौर पर शामिल किया जाना चाहिए था एवं, इसलिए वर्तमान याची एवं प्रत्यर्थी सं॰ 3, 4 एवं 5 द्वारा एक अपील दाखिल करने की ईप्सा की गयी थी जिसे विद्वान जिला न्यायाधीश, साहेबगंज द्वारा दिनांक 12 नवम्बर, 2008 के आदेश के माध्यम से मंजूर किया गया था जो याचिका के मेमो के परिशिष्ट 4 पर है। मूल वादी ने वाद के तृतीय पक्षकार द्वारा आवेदन दाखिल करने की इस अनुमति का विरोध कभी नहीं किया गया था यद्यपि, याची एवं साथ ही साथ प्रत्यर्थी सं॰ 3, 4 एवं 5 आवश्यक पक्षकार थे फिर भी उनलोगों को पक्षकार प्रतिवादी के तौर पर जानबूझकर शामिल नहीं किया गया था। तत्पश्चात्, वे लोग अवर अपीलीय न्यायालय के समक्ष उन दस्तावेजों को प्रस्तुत करने का अवसर पहली बार पा रहे हैं एवं, इसलिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XLI,

नियम 27 के अधीन दाखिल एक आवेदन को विचारण न्यायालय द्वारा अनुज्ञात किया जाना चाहिए था। विचारण न्यायालय ने इस तथ्य का उचित रूप से अधिमूल्यन नहीं किया है कि याची एवं प्रत्यर्थी सं॰ 3, 4 एवं 5 कभी भी विचारण न्यायालय के समक्ष पक्षकार नहीं थे एवं इसलिए दिनांक 6 जून, 2005 एवं 3 जुलाई, 1995 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेखों को प्रस्तुत नहीं किया जा सका था। याची एवं प्रत्यर्थी सं॰ 3, 4 एवं 5 के पास कोई अवसर था ही नहीं। मामले की इस पहलू की अनदेखी अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा की गयी है एवं इसलिए आक्षेपित आदेश अभिखंडित एवं अपास्त किये जाने योग्य है।

3. प्रत्यर्थी सं॰ 3, 4 एवं 5 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों को स्वीकार किया और निवेदन किया है कि प्रत्यर्थी सं॰ 3, 4 एवं 5 भी अभिधान वाद सं॰ 3 वर्ष 2005 में आवश्यक पक्षकार है। मूल प्रतिवादी द्वारा दाखिल लिखित कथन के पैराग्राफ 5 में बताये गये तथ्य के बावजूद विक्रय विलेख का स्पष्ट वर्णन है, अगर मूल वादी द्वारा सावधानी बरती गयी होती तो प्रत्यर्थी सं॰ 3, 4 एवं 5 को पक्षकार प्रतिवादी के तौर पर शामिल किया जाता। मामले के इस पहलू का भी उचित रूप से अधिमूल्यन अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा नहीं किया गया है एवं, इसलिए भी, आक्षेपित आदेश अभिखंडित एवं अपास्त किये जाने योग्य है।

4. मैंने प्रत्यर्थी सं॰ 2 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुना है जिन्होंने भी याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता और साथ ही प्रत्यर्थी सं॰ 3, 4 एवं 5 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत निवेदनों को अपनाया है और निवेदन किया है कि मूल प्रतिवादी को वाद सम्पत्ति में no axe to grind उसने 3 जुलाई, 1995 को वाद सम्पत्ति प्रत्यर्थी सं॰ 3, 4 एवं 5 को बेच दी है, इसी प्रकार, उसके भाई ने भी वाद सम्पत्ति को दिनांक 6 जून, 2005 को वर्तमान याची को बेच दी है। प्रत्यर्थी सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि वर्तमान याची और साथ ही प्रत्यर्थी सं॰ 3, 4 एवं 5 द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XLI, नियम 27 के अधीन दाखिल आवेदन को अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा अनुज्ञात किया जाना चाहिए था।

5. मैंने प्रत्यर्थी सं॰ 1 (मूलवादी) के विद्वान अधिवक्ता को सुना है जिन्होंने जोरदार निवेदन किया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XLI, नियम 27 के प्रावधान को देखते हुए वर्तमान याची द्वारा प्रस्तुत तथ्य सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XLI, नियम 27 में निर्दिष्ट किसी भी खण्ड में नहीं आ रहे हैं, इसलिए अवर अपीलीय न्यायालय ने याची एवं साथ ही प्रत्यर्थी सं॰ 3, 4 एवं 5 द्वारा दाखिल आवेदन को उचित रूप से खारिज कर दिया है एवं, इसलिए याचिका खारिज किये जाने योग्य है। प्रत्यर्थी सं॰ 1 (मूलवादी) की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने AIR 2008 SC 579 में प्रकाशित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है।

6. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनकर एवं मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करके मैं अभिधान अपील सं॰ 18 वर्ष 2008 में विद्वान जिला न्यायाधीश, साहेबगंज द्वारा दिनांक 4 मई, 2009 को पारित आदेश को विशेषतः वर्तमान याची जो की एक अपीलार्थी है, द्वारा दाखिल सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XLI, नियम 27 के अधीन आवेदन को मुख्यतः निम्नलिखित, तथ्यों एवं कारणों से एतद् द्वारा अभिखण्डित एवं अपास्त करता हूँ:-

(i) वर्तमान प्रत्यर्थी सं० 1 मूलवादी है जिसने अभिधान वाद सं० 3 वर्ष 2005 संस्थित की है। वाद को विक्रय के कुछ अरजिस्ट्रीकृत करार के आधार पर विनिर्दिष्ट अनुपालन हेतु दाखिल की गयी है। विक्रय का यह अरजिस्ट्रीकृत करार दिनांक 11 नवम्बर, 2003 का है।

(ii) यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी सं० 2 ने जो अभिधान वाद सं० 3 वर्ष 2005 में मूल प्रतिवादी है, विचारण न्यायालय के समक्ष अपना लिखित कथन पहले ही दाखिल

कर चुका है और लिखित कथन के पैराग्राफ 5 में यह स्पष्ट रूप वर्णित किया गया है कि मूल प्रतिवादी अब वाद सम्पत्ति का मालिक नहीं रह गया है। उसने काफी पहले वर्ष 1995 में ही सम्पत्ति बेच दी है। अगर मूलवादी द्वारा सावधानी बरती गयी होती तो प्रत्यर्थी सं० 3, 4 एवं 5 को पक्षकार प्रतिवादी के तौर पर शामिल कर लिया गया होता क्योंकि वाद सम्पत्ति को मूल प्रतिवादी द्वारा 3 जुलाई, 1995 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख द्वारा प्रत्यर्थी सं० 3, 4 एवं 5 को बेचा गया था परन्तु लिखित कथन पढ़ने के बाद भी प्रत्यर्थी सं० 3, 4 एवं 5 को अभिधान वाद सं० 3 वर्ष 2005 में पक्षकार प्रतिवादी के तौर पर शामिल नहीं किया गया था।

(iii) यह भी प्रतीत होता है कि इसी प्रकार वाद सम्पत्ति का शेष भाग मूल प्रतिवादी के भाई द्वारा दिनांक 6 जून, 2005 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख द्वारा वर्तमान याची को बेचा गया था। इस प्रकार सम्पूर्ण वाद सम्पत्ति मूलतः दो भाईयों की थी जिनमें से एक मूल प्रतिवादी था। दोनों भाइयों ने चार भिन्न-भिन्न रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेखों द्वारा सम्पत्तियाँ बेच दी है। मूल प्रतिवादी ने प्रत्यर्थी सं० 3, 4 एवं 5 को सम्पत्ति बेची है तथा मूल प्रतिवादी के भाई ने रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख द्वारा सम्पत्ति की वर्तमान याची को बेच दिया है। मामले के इस पहलू का भी अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा उचित रूप से अधिमूल्यन नहीं किया गया है। इन तथ्यों के बावजूद न तो याची को और न ही प्रत्यर्थी सं० 3, 4 एवं 5 को पक्षकार प्रतिवादी के तौर पर शामिल किया गया था एवं, इसलिए उनके पास रजिस्ट्रीकृत विक्रय अभिलेखों को प्रस्तुत करने का कोई अवसर नहीं था जो कि अवर न्यायालय के समक्ष उनके पक्ष में गया।

(iv) अंततः वाद को वाद सम्पत्ति के क्रेताओं को प्रतिवादीगण के तौर पर शामिल किये बगैर 30 जुलाई, 2008 को डिक्री किया गया था। मामले के इस पहलू का भी अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा उचित रूप से अधिमूल्यन नहीं किया गया है। वास्तव में याची एवं साथ ही प्रत्यर्थी सं० 3, 4 एवं 5 आवश्यक पक्षकार है।

(v) यह प्रतीत होता है कि विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश I, साहेबगंज द्वारा पारित दिनांक 30 जुलाई, 2008 के निर्णय एवं डिक्री से व्यथित एवं असंतुष्ट होकर सम्पत्ति के क्रेताओं अर्थात् वर्तमान याची एवं साथ ही प्रत्यर्थी सं० 3, 4 एवं 5 और मूल प्रतिवादी द्वारा अभिधान अपील सं० 18 वर्ष 2008 दाखिल किया गया था।

(vi) चूँकि याची और साथ ही प्रत्यर्थी सं० 3, 4 एवं 5 को कभी भी वाद में पक्षकारों के तौर पर शामिल नहीं किया गया था, अतः उन्होंने अपील दाखिल करने की अनुमति माँगते हुए एक आवेदन दाखिल किया है। इस आवेदन का विरोध मूल वादी द्वारा नहीं किया गया था। अपील दाखिल करने की अनुमति जिला न्यायाधीश, साहेबगंज द्वारा दिनांक 12 नवम्बर, 2008 के आदेश के माध्यम से दी गयी थी। इस प्रकार एक अपील दाखिल करने की अनुमति वाद के तृतीय पक्षकार को दी गयी थी।

(vii) अब, स्पष्ट रूप से प्रश्न यह होगा कि क्या उन व्यक्तियों को जिन्होंने अपील दाखिल करने की अनुमति पायी है एवं उन व्यक्तियों को जिन्हें वाद में पक्षकार नहीं बनाया गया था यद्यपि वे आवश्यक पक्षकार थे यद्यपि उनलोगों ने 3 जुलाई, 1995 एवं 6 जून, 2005 को रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेखों द्वारा वाद सम्पत्ति खरीदा है, वर्तमान मामले के तथ्यों में अवर अपीलीय न्यायालय के समक्ष अपने साक्ष्य पेश करने होंगे।

(viii) इसलिए यह प्रतीत होता है कि अपील दाखिल करने की अनुमति मिलने के बाद वर्तमान याची एवं प्रत्यर्थी सं० 3, 4 एवं 5 ने अभिधान अपील सं० 18 वर्ष 2008 दाखिल किया है। अपील अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया था। उनलोगों ने साक्ष्य पेश करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XLI, नियम 27 के अधीन एक आवेदन भी दाखिल किया है। अवर अपीलीय न्यायालय ने

इन तथ्यों को नजर अंदाज किया है कि इन पक्षकारों को पक्षकार प्रतिवादीगण के तौर पर शामिल नहीं किया गया था यद्यपि वे सीधे तौर पर वाद के नतीजे में हितबद्ध हैं। अवर न्यायालय ने इस तथ्य को भी नजर अंदाज किया है कि यद्यपि मूल प्रतिवादी द्वारा दाखिल लिखित कथन का पैराग्राफ 5 वर्ष 1995 में सम्पत्ति के विक्रय को निर्दिष्ट करता था अतः क्रेताओं को प्रतिवादीगण के तौर पर शामिल किया जाना चाहिए। इन व्यक्तियों को पक्षकार प्रतिवादीगण के तौर पर शामिल नहीं किया गया था। इसलिए विचारण न्यायालय के समक्ष रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेखों को प्रस्तुत करने का अवसर उनके पास नहीं था। न्यायालय को अधिमूल्यन करना चाहिए था कि याची एवं साथ ही प्रत्यर्थी सं० 3, 4 एवं 5 को जो पहली बार न्यायालय के समक्ष उपस्थित हो रहे हैं, उनके दस्तावेज प्रस्तुत करने देने की अनुमति दी चाहिए थी जो कि रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख के रूप में है। अवर अपीलीय न्यायालय ने इस तथ्य को भी नजर अंदाज किया है कि तृतीय पक्षकारों द्वारा इन दस्तावेजों को प्रस्तुत करने की अनुमति देकर मूल वादी को कोई प्रतिकूल प्रभाव कारित नहीं होने जा रहा है जिसको जिला न्यायाधीश, साहेबगंज ने अपील दाखिल करने की अनुमति पहले ही दे दी है। वर्तमान याची का मामला सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XLI, नियम 27(1) (b) के अन्तर्गत आता है। रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेखों को जिसके द्वारा वाद सम्पत्ति को वर्ष 1995 एवं वर्ष 2005 में पहले ही बेचा जा चुका है, न्याय के हित में अभिलेख पर लाने की अनुमति दी जानी चाहिए थी। किसी भी विषय का विनिश्चय यांत्रिक रूप से नहीं किया जाना चाहिए था। मामले के इस पहलू का भी अधिमूल्यन अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा नहीं किया गया है। जब कुछ व्यक्ति को पक्षकार प्रतिवादी के तौर पर शामिल नहीं किया जाता है यद्यपि वह वाद दाखिल करने से काफी पहले से ही प्रश्नगत वाद सम्पत्ति का स्वामी है तो उसे अपील दाखिल करने की अनुमति दी जाती है। पक्षकारों को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XLI, नियम 27 के तहत अपने दस्तावेज प्रस्तुत करने की अनुमति दी जानी चाहिए थी।

(ix) वर्तमान याची एवं साथ ही प्रत्यर्थी सं० 3, 4 एवं 5 को अभिधान वाद सं० 3 वर्ष 2005 में पक्षकार प्रतिवादीगण के तौर पर शामिल नहीं किया गया था यद्यपि मूल प्रतिवादी के लिखित कथन का पैराग्राफ 5 यह स्पष्ट करता है कि वाद सम्पत्ति को पहले ही वर्ष 1995 में बेच दिया गया था एवं इसलिए जिला न्यायालय, साहेबगंज द्वारा वाद के तृतीय पक्षकार को अपील दाखिल करने की अनुमति दी गयी थी। ये सारे तथ्य वर्तमान मामले को AIR 2008 SC 579 में प्रकाशित मामले के तथ्यों से भिन्न बनाते हैं, एवं इसलिए उक्त निर्णय का निर्णयाधार वर्तमान मामले के तथ्यों में लागू नहीं होता है।

7. उपरोक्त तथ्यों एवं कारणों के संचयी प्रभाव के तौर पर, मैं अभिधान अपील सं० 18 वर्ष 2008 में दिनांक 4 मई, 2009 को विद्वान जिला न्यायाधीश, साहेबगंज द्वारा पारित आदेश को एतद् द्वारा अभिखंडित एवं अपास्त करता हूँ। जिसके द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XLI, नियम 27 के तहत वर्तमान याची एवं प्रत्यर्थी सं० 3, 4, 5 और साथ ही मूल प्रतिवादी द्वारा आवेदन दाखिल किया गया है। मैं एतद् द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XLI, नियम 27 के तहत दाखिल आवेदन को अनुज्ञात करता हूँ, जो याचिका के मेमो के परिशिष्ट-5 पर है। प्रश्नगत दस्तावेजों को अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा अभिलेख पर लाया जाएगा एवं मैं अभिधान अपील सं० 18 वर्ष 2008 को यथा सम्भव तथा व्यावहारिक रूप से शीघ्र सुनने और निस्तारित करने का भी निर्देश एतद् द्वारा अवर अपीलीय न्यायालय को देता हूँ जो अधिमानतः 30 अप्रैल, 2011 को अथवा पहले का हो।

8. इस प्रकार रिट याचिका को अनुज्ञात एवं निस्तारित किया जाता है।